कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति तथा हिन्दू

रामनारायण बी० ए० आनरेरी आर्यप्रचारक

कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति तथा हिन्दू

(प्रथम-द्वितीय भाग)

लेखक

रामनारायण बी०ए० आनरेरी आर्यप्रचारक

रोहतक (पूर्वी पंजाब)

प्रकाशक :

सत्यधर्म प्रकाशन

प्राप्ति स्थान :

(हरयाणा)

सम्पर्क : 09812560233, 09213326552

16
रामना-का

प्रकाशक : सत्यधर्म-प्रकाशन
प्राप्तिस्थान :
चलभाष : 09812560233

प्राप्ति स्थान :

१. हरयाणा साहित्य संस्थान
महाविद्यालय, गुरुकुल झज्जर
हरयाणा-१२४१०३

२. आर्यसमाज मन्दिर काकरिया
रायपुर दरवाजे के बाहर, अहमदाबाद (गुजरात)

३. कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, चोटीपुरा
जिला ज्योतिषनगर (मुरादाबाद), उत्तरप्रदेश

४. आर्यसमाज मन्दिर सहजपुर बोघा
अहमदाबाद (गुजरात)

५. दयानन्दमठ दीनानगर
जिला गुरदासपुर (पंजाब) फोन-09417336676

तृतीय संस्करण : नवम्बर २००९

मूल्य : १६०.०० रुपये

मुद्रक : सुवीरा मुद्रणालय
सुखपुरा बाईपास, रोहतक-124001
दूरभाष : 01262-276674
चलभाष : 09729090111, 09254052111

दो शब्द

स्वराज्य मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' के अष्टम समुल्लास में लिखा है, "जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है—अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय व दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।" प्रत्येक आर्य हिन्दू अपने देश को स्वतन्त्र कराना अपना कर्तव्य समझता है। कांग्रेस ने इस निमित्त जो कार्य किया है, वह अत्यन्त सराहनीय है। किन्तु इस सच्चाई से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि हिन्दुओं को कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति से बहुत हानि पहुंची है। इसी को बतलाने के लिये यह पुस्तक रची गई है। लाहौर के ९ सितम्बर सन् १९२९ के 'हिन्दू' समाचार-पत्र में मैंने एक लेख छपवाया था जिसमें मुसलमानों के बढ़ते हुए अत्याचारों का वर्णन करते हुए लिखा था—"क्या हिन्दू कांग्रेस में अपने अधिकार सुरक्षित समझ सकते हैं, कदापि नहीं। हिन्दू स्वराज्य चाहते हैं। अपने लिये वे कोई विशेष अधिकार नहीं चाहते और न वो यह सहन करना चाहते हैं कि अन्य पड़ोसी समुदायों को अनुचित अधिकार दिये जावें। उनकी यह हार्दिक इच्छा है कि प्रत्येक कार्य योग्यता व न्याय के आधार पर हो। समानता का व्यवहार हो। राजपूतों, मरहटों व सिक्खों आदि अनेक हिन्दू वर्गों ने समय-समय पर भारतवर्ष को इस्लामी शासन से मुक्त कराने के लिये अपना बलिदान चढ़ाया है और आर्यसंस्कृति व सभ्यता की रक्षा की है। इसी प्रकार अब भी आर्य हिन्दू अपना कर्तव्य समझ रहे हैं।" मैंने यह सुझाव पेश किया

था, "हिन्दुओं को विशाल सम्मेलन करके यह घोषणा कर देनी चाहिये कि हिन्दू अधिकारों के सम्बन्ध में कांग्रेस को किसी भी समुदाय से बातचीत व समझौता करने का अधिकार नहीं है क्योंकि कांग्रेस अपने आपको हिन्दुओं का प्रतिनिधि नहीं मानती।" वीर सावरकर जी के नेतृत्व में हिन्दू महासभा ने इसी मार्ग का अवलम्बन किया है यह सन्तोषजनक है। कांग्रेस की अनेक मुस्लिम पोषक घटनाओं के कारण और अपने पुत्र सुरेशचन्द्र मन्त्री हिन्दूसभा रोहतक के प्रोत्साहन से मैं इस पुस्तक को लिखने में समर्थ हुआ हूं। इस पुस्तक को तैयार करने में मेरी पुत्री लीला 'प्रभाकर' तथा विमला 'प्रभाकर' ने जो सहायता दी है वह प्रशंसनीय है। इसी सम्बन्ध में मैं श्री पं० रवीन्द्रनाथ जी शास्त्री व न्यायतीर्थ का भी कृतज्ञ हूं।

यह संशोधित संस्करण आपकी सेवा में रखा जाता है। आशा है पाठकजन इसे पढ़कर अनुगृहीत करेंगे।
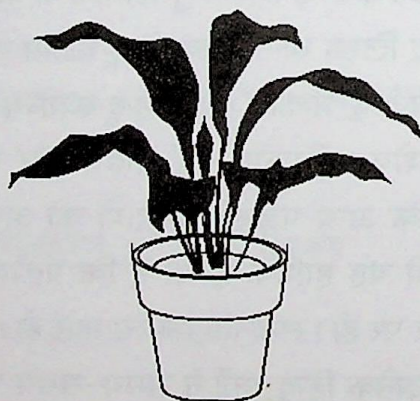
विषय-सूची

(प्रथम भाग)

❑❑❑

(१)

कांग्रेस की स्थापना से

कांग्रेस की स्थापना

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस की स्थापना सन् १८८५ में भारत सरकार के एक पेंशनर अफसर मि० ह्यूम द्वारा हुई थी। भारत सरकार भारतवासियों के राजनैतिक विचारों व कार्यों को जानने के लिये कोई संस्था चाहती थी और वह विचार कांग्रेस-स्थापना द्वारा पूरा हुआ। मि० ह्यूम के पत्र से, जो उन्होंने सर ऑकलेण्ड कोलीविन लेफटिनेंट गवर्नर यू०पी० के नाम लिखा था, यह बात भली प्रकार स्पष्ट हो जाती है। उनके पत्र में निम्नलिखित शब्द मिलते हैं—

"A safety valve for the escape of great & growing forces generated by the British connection was urgently needed & no more efficacious valve than the Congress could be devised." बहुत वर्षों तक कांग्रेस का केवल कार्यक्रम प्रतिवर्ष भारतवर्ष के किसी न किसी स्थान पर अधिवेशन करके कुछेक प्रस्ताव भारत सरकार की सेवा में भेजना था। महर्षि स्वामी दयानन्द के उपदेशों से तथा उनके कुछ समय के पश्चात् महाराज तिलक के स्वतन्त्रता प्रासि के आन्दोलनों से देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न होने लगी। आर्यसमाजों के प्रचार से आर्य (हिन्दुओं) के अन्दर देश व जाति का पूर्व गौरव सम्मुख उपस्थित हुआ, जिस कारण भारतीयों में उत्साह और जागृति के चिह्न दिखलाई देने लगे। इनके अतिरिक्त अन्य कई कारणों से देश को दासता की बेड़ियों से मुक्त कराने का विचार उत्पन्न होने लगा। कांग्रेस का इन भावों से प्रभावित होना अनिवार्य था। फलस्वरूप अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस शनैः-शनैः वास्तविक रूप में समस्त देश की सर्वोत्तम राजनैतिक-क्रान्तिकारी संस्था बनने लगी, जिसका रूप वर्तमान-काल में प्रत्येक के सम्मुख उपस्थित है।

कांग्रेस के सभासद

कांग्रेस के आरम्भिक काल में सम्मिलित होने वाले प्रायः हिन्दू ही

थे। मुसलमानों ने कई कारणों से अपने को इससे पृथक् ही रक्खा। सबसे बड़ा कारण सर सैय्यद अहमद साहब का आदेश था। उनके विचारानुकूल भारत में चूंकि मुस्लिम राज्य की पुनःस्थापना की कोई आशा न थी, इसलिये मुसलमानों का लाभ इसी में था कि वह अंग्रेजों की कृपा के पात्र बनें। सर सैयद अहमद साहब ने यह जतलाने के लिये कि अंग्रेजों के मित्र मुसलमान ही हैं, १ दिसम्बर १८८७ को लखनऊ और १६ मार्च सन् १८८८ को मेरठ में भाषण दिये। इनका उल्लेख मौलाना मोहम्मदअली ने कोकनाड़ा कांग्रेस अधिवेशन में विस्तारपूर्वक किया है।

अलीगढ़ सभा

दिसम्बर १८९३ में अलीगढ़ में एक सभा बनाई गई जिसका नाम "Muhammadon Anglo-Oriental Defence Council of Upper India." रखा गया।

अर्थात् उत्तरी भारत के हिन्दुस्तानी अंग्रेज और मुसलमानों की रक्षा समिति।

मुस्लिम कॉलेज अलीगढ़ के प्रिंसिपल Mr. Beck इस सभा के मंत्री नियुक्त हुए। इस सभा के उद्देश्यों में २ उद्देश्य बड़े चुभने वाले हैं।

1. To support measures that would strengthen British Rule in India.

"भारतवर्ष में बरतानवी शासन को दृढ़ करने वाले साधनों का पोषण करना।"

2. To prevent the spread of political agitation among the muslims.

"मुसलमानों में राजनैतिक आन्दोलन के फैलाव को रोकना।"

Mr. Beck कालेज पत्र के सम्पादक भी थे। उन्होंने एक लेख में लिखा—

"It is imperative for the muslims and the British to write a view to fighting those agitators (Hindus) and prevent the introduction of democratic form of Govt. We therefore advocate loyalty to the Govt & Anglo muslim collaboration."

उन (हिन्दू) क्रान्तिकारियों से युद्ध करने और प्रजातन्त्र ढंग से शासन विधान को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि अंग्रेज़ और

मुसलमानों का गठजोड़ हो। इसलिये हम सरकार के प्रति राजभक्ति और अंग्रेज मुस्लिम सहकार्य्यता का प्रचार करते हैं।

इसी कालेज के निकले हुए विद्यार्थियों से तथा उनसे प्रभावित मुसलमानों से यह आशा रखना कि वह सद्भावना और लगन से देश के काम में जुट जावेंगे कांग्रेसी हिन्दुओं की सरलता या लघुदर्शता को दर्शाने वाली बात है।

सर सैय्यद अहमद साहब तथा उन जैसे मुस्लिम नेताओं ने कांग्रेस से पृथक् रहने और यथासम्भव उसका विरोध करने की जिस नीति को निश्चित किया है, उसी के अनुसार कुछ मुसलमानों को छोड़कर, शेष सभी मुसलमान उस नीति का अनुकरण कर रहे हैं, पूर्वीय बंगाल के लेफ्टिनेंट गवर्नर Sir Banpfylde Fuller ने एक भाषण में कहा था—"भारतवर्ष में बर्तानियां शासन की दो बीवीयें हैं—एक हिन्दू दूसरी मुस्लिम। और मुस्लिम बीवी गवर्नमेंट की 'चाहती' बीवी है।"

मुसलमानों को मिलाने का प्रथम प्रयास

किसी देश की उन्नति के लिये उस देश में सुदृढ़ राष्ट्र होना आवश्यक है। भारतवर्ष में आर्य (हिन्दू) जाति एक राष्ट्र के रूप में विद्यमान है, अन्य सब जन साम्प्रदायिक रूप में रहते हैं—परन्तु कांग्रेस सबको मिलाकर एक नवीन हिन्दुस्तानी-राष्ट्र बनाने की आयोजना करना चाहती। इस कारण मुसलमानों को कांग्रेस में करने के लिए सन् १८९३ में कांग्रेस ने लाहौर अधिवेशन के अवसर पर यह प्रस्ताव पास किया "गवर्नमेंट से प्रार्थना की जावे कि मुसलमानों को विद्याप्राप्ति की ओर आकर्षित करने और आर्थिक-सुविधा देने के लिये वज़ीफ़े प्रदान किये जावें।" श्री भाई परमानन्द जी ने अपनी पुस्तक "स्वराज्य-संग्राम" में लिखा है—"उपरोक्त प्रस्ताव के पेश होने पर पंजाब के कुछ दूरदर्शी हिन्दुओं ने कहा था कि कांग्रेस की यह नीति, किसी भांति मुसलमानों को अपने साथ मिलाया जाये, कुछ समय पाकर हिन्दुओं को दुर्बल बनायेगी तथा एक राष्ट्रीयता के बनाने में बाधक होगी।"

अंग्रेज शासकों की नीति

कांग्रेस के एक हिन्दुस्तानी राष्ट्र बनाने के प्रयत्न को गवर्नमेंट ने अपने लिये अहितकर समझा। इस्लामी तथा अन्य विदेशी आक्रमणों से भारत को स्वतन्त्र रखने के लिये आर्य-हिन्दू अपना रक्त बहाते रहे हैं

और अब भी अपने देश को ब्रिटिश-साम्राज्य के आधिपत्य से मुक्त कराना अपना ध्येय मानते हैं। ब्रिटिश-शासन ने भारत को अपने अधिकार में रखने के लिये 'Divide & Rule' (अर्थात् विभक्त करो राज्य करो) की राजनैतिक नीति को सफल बनाने के निमित्त एक ऐसे सम्प्रदाय की आवश्यकता अनुभव की—जो उनकी कृपा दृष्टि का पात्र रहने में ही अपना गौरव समझे। मुसलमानों ने अंग्रेजों के हाथों इस कार्य के लिये सौंप दिया। इसका प्रथम कारण तो यह है कि मुसलमान भारत देश को अपना देश नहीं समझते। द्वितीय सर सैयद अहमद जैसे मुस्लिम नेताओं ने मुसलमानों को उपदेश दिया—''इंग्लिश नेशन हमारे मफ़तह मुल्क में आई, मगर मिस्ल एक दोस्त के न कि बतौर एक दुश्मन के। हमारी ख्वाहिश है कि हिन्दुस्तान में इंग्लिश हकूमत सिर्फ़ एक ज़माना-ए-दराज़ तक ही नहीं बल्कि इटर्नल (सदैव) होनी चाहिये। हमारी यह ख्वाहिश इंगलिश कौम के लिये नहीं है बल्कि अपने मुल्क के लिये है। हमारी यह आरजू अंग्रेजों की भलाई या उनकी खुशामद की वजह से नहीं है बल्कि अपने मुल्क की भलाई व बेहतरी के लिये है। पस कोई वजह नहीं है कि हम में और उन में (Sympathy) सहानुभूति न हो। सिम्पथी तांबे के बरतन पर चांदी के मुलम्मे से ज्यादह कुछ वक़अत नहीं रखती। उसका असर दोनों (फ़रीक़) के दिलों में कुछ नहीं होता। एक फ़रीक़ जानता है कि वह तांबे का बरतन है, दूसरा फ़रीक़ समझता है कि वह झूठे मुलम्मे की क़लई है। सिम्पथी से मेरी मुराद बिरादराना व दोस्ताना सिम्पथी से है।''

लार्ड ओलीवर

१८ जुलाई सन् १९२७ के लाहौर के अंग्रेजी समाचार-पत्र "People" में 'लण्डन टाइम्स' के नाम लार्ड ओलीवर भारत-मन्त्री के एक पत्र की कुछ पंक्तियां छपी थीं वह निम्नलिखित हैं।

"No one with a close acquaintance with India affairs will be prepared to deny that on the whole there is a predominant bias in British officialdom in favour of the Muslim community partly on the ground of closer sympathy but more largely as a make weight against Hindu nationalism." अर्थात् भारतवर्ष की समस्याओं से परिचित कोई भी मनुष्य इस सत्यता को नहीं झुठला सकता कि बर्तानवी अफ़सरान मुस्लिम सम्प्रदाय की ओर बहुत अधिक झुकाव रखते हैं। कुछ तो

इसलिये कि उनका मुसलमानों के साथ गहरा लगाव है, परन्तु अधिकतर इसका कारण हिन्दू राष्ट्रपिता के विरोध में एक मुकाबले की शक्ति खड़ी कराना ही है।''

लार्ड कर्ज़न

इसी नीति के आधीन वायसराय महोदय लार्ड कर्जन ने सरहद के पांच जिलों को पंजाब से पृथक् कर दिया और बंगाल को दो भागों में विभक्त कर दिया। पंजाब में मुस्लिम जमींदारों के लाभार्थ ''इन्तकाल-आराजी'' का कानून बना दिया। अम्बाला डिवीजन के कुछ हिन्दुओं को भी थोड़ा-बहुत लाभ हुआ हो तो इसकी गणना ही क्या। एक पुस्तक ''मुस्लिमों का रोशन-मुस्तक़बिल'' अज़ मि० तुफैल अहमद में लिखा है, ''तक़सीम-बंगाल से उनका मक़सद सिर्फ यह न था कि बंगाल की गवर्नमेंट के इन्तज़ामी बार को हल्का किया जाये बल्कि एक इस्लामी सूबा बनाना था जिसमें मुसलमानों का ग़लबा हो।'' बंगाल के विभक्त करने पर समस्त देश में हलचल मच गई। अनेक नवयुवक फांसी के तख्ते पर लटकाये गये, अनेक को आजन्म कारावास हुआ। पंजाब में लाला लाजपतराय व सरदार अजीतसिंह जी को देश निर्वासन दिया गया। समस्त देश में स्वदेशी आन्दोलन की लहर दौड़ गई।

मुस्लिम लीग

इस आन्दोलन का प्रतिरोध करने के विचार से ढाके के नवाब मि० सलीम-उल्ला खां के प्रयत्न से १९०६ में मुस्लिम लीग की नींव डाली गई। एक मुस्लिम प्रोफेसर मि० हुमायूं कबीर ने अपनी पुस्तक "Muslim Politics" में लिखा है—

"Founded in 1906 by a Group of well-to-do aristocratic musalmans, it was intended to keep the muslim Intelligentsia & middle classes away from the dangerous politics into which the Indian National Congress was just then embarking. It raised the cry of special Muslim interest & pleaded that these could not be safeguarded except by co-operation with the British, as in its opinion. Musalmans were as yet educationally, economically incapable of defending their own interests."

लार्ड मिण्टो

१ अक्तूबर सन् १९०६ को मि० आगाखां (अब सर) के नेतृत्व में मुसलमानों के एक वफद (सभ्यमण्डल) ने लार्ड मिण्टो वायसराय हिन्द की सेवा में उपस्थित होकर कोन्सिलों आदि में मुसलमानों के लिये विशेष अधिकारों की मांग पेश की। लार्ड मिण्टो ने इन मांगों से सहानुभूति प्रकट करके मुसलमानों की इच्छाओं को उत्तेजित कर दिया। सन् १९०९ में मिण्टो मार्ले स्कीम के अनुसार भारतीय शासन पद्धति में परिवर्तन हुआ। तदनुसार मुसलमानों को उनके अधिकार से अधिक अधिकार दिये गये। फलतः वजीरे हिन्द की कौन्सिल में जो दो हिन्दुस्तानी सभासद लिये गये, उनमें एक मुसलमान था—अर्थात् एक चौथाई आबादी वाले सम्प्रदाय को ५० प्रतिशत नुमाइन्दगी दी गई। इसके अतिरिक्त कौन्सिलों में साम्प्रदायिक चुनाव की रीति प्रारम्भ की गई। सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने अपनी पुस्तक "A Nation in Making" में लिखा—

"India owes to Lord Minto the system of communal representation for the Legislative Councils, from the meshes of which it will take her many long years to emerge."

सन् १९११ में एक हिन्दू सदस्य ने कौन्सिल में प्रस्ताव पेश किया कि "मुसलमानों को साम्प्रदायिक आधार पर अधिकार न दिये जावें। गवर्नमेंट ने उत्तर दिया—चूंकि सरकार ने मुसलमानों के साथ ऐसा करने का वचन दिया हुआ है, इसलिए इसके विपरीत कुछ नहीं हो सकता।" परिणामस्वरूप मुसलमान अंग्रेजों की ओर झुकते चले गये और भारत को स्वतन्त्र कराने के आन्दोलन में बाधक होने लगे।

इटली-टर्की युद्ध और मुसलमान

इसी समय योरुप में इटली और टर्की में युद्ध हुआ, अंग्रेजों ने इटली से सहानुभूति प्रकट की—इससे मुसलमानों को दुःख हुआ। अतः मुस्लिम लीग की १९१३ की सभा में यह प्रस्ताव पास किया गया—"मुसलमानों का आदर्श भारत में ऐसे स्वराज्य की प्राप्ति होगी जो हिन्दुस्तान की दशा के अनुकूल हो।" इस प्रस्ताव से मुसलमानों का उद्देश्य कांग्रेस को अपनी ओर करके गवर्नमेंट पर दबाव डालना था जिससे टर्की के विरुद्ध कुछ न किया जावे। श्री भाई परमानन्द जी ने

अपनी पुस्तक "स्वराज्य संग्राम" में लिखा है—"मुसलमानों को मजहब से बढ़कर कोई बात अपील नहीं करती। देश के नाम पर जितने आन्दोलन हिन्दुस्तान में किये गये उनका मुसलमानों पर कुछ असर नहीं हुआ वह विरोध करते या चुप रहे। परन्तु जब उनको अपने मजहब पर चोट होती दिखाई दी तो उनके दिलों में हिन्दुस्तान के लिये स्वराज्य की इच्छा उत्पन्न हुई।"

लखनऊ कांग्रेस

उपरोक्त प्रस्ताव ने कांग्रेसी हिन्दुओं को विशेष रूप से मुसलमानों की ओर झुकाया। सन् १९१६ में लखनऊ के वार्षिक अधिवेशन में कांग्रेस ने अंग्रेजी सरकार प्रचलित की हुई पृथक् अधिकारों की शैली को अपनी ओर से स्वीकार करके स्वयम् एक हिन्दु-मुस्लिम समझौता (लखनऊ पैक्ट) तैयार किया जिसके अनुसार मुसलमानों का उस समय प्रत्येक प्रान्त में निम्नलिखित प्रतिनिधि भेजने का अधिकार माना गया—

आबादी मुस्लिम	**पंजाब**	**यू.पी.**	**बिहार**	**मद्रास**	**बंगाल**
प्रतिशत	५५	१४	१०	६.७	५६
मुसलमानों के प्रतिशत अधिकार	५०	३०	२५	१५	४०

कांग्रेस ने साम्प्रदायिक चुनाव को स्वीकार करके भारत के अन्दर साम्प्रदायिक बंटवारा व पाकिस्तान की इच्छाओं को उत्तेजित किया तथा अंग्रेजी सरकार के हाथों को मजबूत कर दिया। जिस समय ये समझौता तैयार हुआ उस समय सिन्ध को अलग सूबा बनाने का, मस्जिदों के सामने बाजा न बजाने का, गाय को मारने की आजादी का या अन्य किसी भी प्रकार का प्रश्न न था, परन्तु लखनऊ समझौते ने मुसलमानों के हृदयों में नई से नई भावनाएँ उत्पन्न कर दीं। जिनका समय-समय पर वर्णन किया जायेगा।

प्रथम योरुप महायुद्ध व खिलाफ़त

सन् १९१८ में योरुप का महायुद्ध समाप्त हुआ। बर्तानियां व उसके साथी देशों ने अपने विरोधी मुलकों के टुकड़े-टुकड़े किये और इसी कारण टर्की की राजनैतिक सत्ता को भी छिन्न-भिन्न कर दिया। टर्की के बादशाह को समस्त संसार के मुसलमान अपना खलीफ़ा मानते थे और राजनैतिक सत्ता को 'खिलाफत' के लिये जरूरी समझते थे। इस

कारण हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने खिलाफत को खतरे में देखकर शोर मचाना प्रारम्भ किया। खिलाफत-आन्दोलन को सफल बनाने के लिए कांग्रेस को सम्मिलित करना आवश्यक था। इसलिये मुसलमानों ने कांग्रेस में भाग लेना आरम्भ किया। यह हिन्दुस्तान के लिये स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये नहीं वरन् खिलाफत को आजाद कराने के लिए था। इसके समर्थन में निम्नलिखित हवाला काफ़ी है—१ जौलाई १९२३ को डाक्टर अन्सारी व कुछ अन्य मुसलमानों ने एक घोषणा पत्र में लिखा, "मुसलमानों को स्वराज्य की प्राप्ति के लिये काम करना चाहिये अगर वे जजीरत-उल-अरब को आजाद कराना चाहते हैं।"

१५ सितम्बर सन् १९२३ को देहली में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन का सभापतित्व करते हुए मौलाना अब्बुल-कलाम आजाद ने अधिक चतुरता के साथ कहा, "हिन्दुस्तान को जजीरत-उल-अरब की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये अपने इरादे की दृढ़ता को प्रकट करना चाहिये, इसकी आवश्यकता केवल इसलिये नहीं है कि यह मुसलमानों के धार्मिक विश्वास का अंग है बल्कि इसलिये है कि हिन्दुस्तान की आजादी के साधन जजीरत-उल-अरब की आजादी के साथ बन्धे हुए हैं।"

उपरोक्त डाक्टर अन्सारी के बयान के अनुसार मुसलमानों को खिलाफत के लिये कांग्रेस में हिस्सा लेना चाहिये, वहाँ मौलाना साहिब ने जजीरत-उल-अरब की स्वतन्त्रता को हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता के लिये आवश्यक साधन बताकर मुसलमानों को बिल्कुल बीच में से निकालकर खिलाफत के आन्दोलन को हिन्दुस्तान के लाभार्थ बताया।

खिलाफत केवल धार्मिक प्रश्न था। मुसलमान जजीरत-उल-अरब पर किसी गैर मुस्लिम का अधिकार सहन नहीं कर सकते थे। इस बात को मुसलमानों ने उस अर्जी में जो उन्होंने १९ जनवरी १९२० को वायसराय महोदय की सेवा में खिलाफत के मामले पर दी स्पष्ट रूप से प्रकट किया है। इसी अर्जी में उन्होंने यह भी लिखा, "जजीरत-उल-अरब पर गैर मुस्लिम के अधिकार का विरोध इस्लामी जोश के कारण नहीं बल्कि इस्लामी विश्वास के कारण है।"

मुसलमानों से भी बढ़कर तन मन धन से खिलाफत के लिये कार्य करते हुए हिन्दुओं ने यह न सोचा कि आखिर वह भी तो गैर मुस्लिम

ही हैं। जिस जगह उनके अधिकार का कोई प्रश्न ही नहीं उस जगह से उनको क्या लाभ हो सकता है। परन्तु कांग्रेसी हिन्दुओं के सामने तो यह प्रश्न उपस्थित ही नहीं होता।

हिन्दुओं ने सम्पूर्ण बल सहित खिलाफत आन्दोलन को चलाया। इस पुस्तक का यह विषय नहीं है कि खिलाफत के विषय को विस्तृत रूप से लिखा जावे। केवल एक-दो बात लिखकर यही बताना है कि कांग्रेस ने (जिसके विरुद्ध इस समय बहुत से मुसलमान नेता विष उगलना अपना धर्म समझते हैं) किस प्रकार मुसलमानों को सहयोग दिया। खिलाफत कमेटी ने २८ मई १९२० को सरकार ने असहयोग का प्रस्ताव पास करके १ अगस्त १९२० को हिन्दुस्तान में हड़ताल कराई जिसमें सारे हिन्दुओं ने साथ दिया। इसके अतिरिक्त कलकत्ते के कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में श्री लाला लाजपतराय के प्रधान पद में यह प्रस्ताव पास हुआ "प्रत्येक गैर मुस्लिम हिन्दुस्तानी का यह फर्ज है कि वह हर उचित उपायों से मुसलमान भाइयों को उनके ऊपर आई हुई धार्मिक विपत्तियों के दूर कराने में सहायता दें।" सन् १९२० के नागपुर के वार्षिक अधिवेशन में इसी प्रस्ताव को दोहराया गया और समय-समय पर इसी भांति कांग्रेस कार्य करती रही। उधर टर्की को नये सिरे से जन्म देने वाले मिस्टर कमाल पाशा ने खिलाफत की उपस्थिति को टर्की के प्रजातन्त्र शासन के लिये हानिकारक समझकर उड़ा दिया और खलीफा अब्दुलमजीद को देश निकाला दे दिया। यह बात मि० कमालपाशा के उस तार से सिद्ध होती है जो उन्होंने भारतीय मुसलमानों के उत्तर में भेजा था।

तार के शब्द यह थे, "The existence of a seperate Khilafat within the Turkish Republic proved to be disturbing to the foreign and international political union of Turkey."

अर्थ—टर्की के राज्य में अलग खिलाफत के पद की सत्ता टर्की के बाहरी व भीतरी राजनैतिक संघ के लिये गड़बड़ उत्पन्न करने वाली साबित हुई है।

इस प्रकार खिलाफत का कार्य बन्द होते ही मुसलमानों ने अपने कार्यक्रम का पहलू बदला। मौलाना मोहम्मद अली १९२३ में कोकनाडा कांग्रेस के प्रधान बने। उन्होंने महात्मा गांधी के प्रति अपने भाषण में कहा—"खिलाफत आन्दोलन को निःस्वार्थ भाव से चलाना निःसन्देह

उनकी उदारता व हितकारी कार्य था। परन्तु वह स्वयं कहा करते थे कि वह मुसलमानों की गौ अर्थात् उनकी खिलाफत को बचाने की कोशिश कर रहे थे, ताकि कृतज्ञ-परायण मुस्लिम-जाति बदले में उनकी अपनी गऊओं की रक्षा करने को उद्यत हो जाये।'' भारतवर्ष में मुसलमानों ने गऊओं की कितनी रक्षा की है अथवा उनको जिबह करने के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता व सुविधा प्राप्त करने के लिए कितना आन्दोलन किया है, इसका ब्यौरा गाय व बाजे के अध्याय में दिया गया है। यह तो सर्वसिद्ध ही है कि गऊओं का मारा जाना मुसलमानों की ओर से घटने के स्थान पर बढ़ा ही है।

खिलाफत ने मुसलमानों में क्या-क्या नई इच्छाएं पैदा कीं और उन्होंने भारत में अपने अस्तित्व को बढ़ाने और अपने अधिकारों को अधिक से अधिक जमाने के लिये क्या-क्या किया यह बहुत कुछ अगले अध्यायों को पढ़ने से पाठक जान लेंगे। यहां इतना कहना आवश्यक है कि मुसलमानों ने अपनी नई इच्छाओं और मांगों को स्वीकार कराने के लिये प्रत्येक अवसर पर अमानुषिक दंगे व फिसाद किये ताकि कांग्रेसी हिन्दू-मुस्लिम समझौते के लिये मुसलमानों की मांगों के पक्ष में वायुमण्डल पैदा करने के लिये बाधित हो।
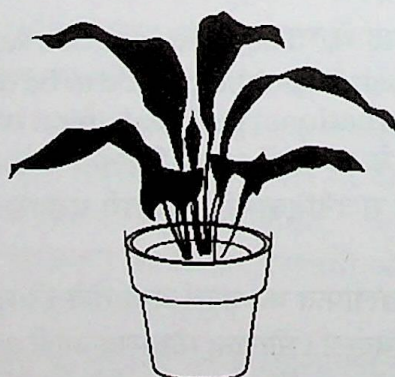
(२)
गाय और बाजा

गाय का महत्त्व आर्य (हिन्दुओं) की दृष्टि में सदैव से और अब तक कितना रहा है इसके वर्णन की मैं आवश्यकता नहीं समझता। अनेक मुसलमान बादशाहों ने गाय की उसके दूध की उपयोगिता और खेती-बाड़ी के लिये उसकी आवश्यकता को अनुभव किया था। और अपने राज्य में गऊ-बध को रोकने के लिए आज्ञायें जारी की थीं। बाबर, अकबर आदि के नाम इस सम्बन्ध में लिये जा सकते हैं। अब न ही मुसलमान इस देश के शासक हैं और न ही हिन्दू प्रजा। दोनों ही एक विदेशी राज्य के आधीन हैं। इस नाते प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य उन कार्यों को करना है। जिनसे भारतवर्ष की उन्नति हो और जनता में प्रेम भाव बढ़े। हिन्दुओं ने इसी नीति का पालन करते हुए केवल मुसलमानों के प्रति सद्भावना प्रकट करने के लिए ही खिलाफत आन्दोलन में जोर-शोर से भाग लिया—यद्यपि इस आन्दोलन का सम्बन्ध किसी प्रकार भी उनके धर्म से अथवा भारत देश से नहीं था। परन्तु मुसलमानों ने हिन्दुओं के इस त्याग और कार्य को किस भाव से देखा ब्यौरा निम्नलिखित बातों से होता है।

कोकनाडा कांग्रेस व मौलाना मोहम्मदअली

खिलाफत का कार्य समाप्त होते ही मौलाना मोहम्मदअली प्रधान कोकनाडा कांग्रेस ने अपने भाषण में कहा, "लेकिन कितना ही मैं ज्यादा कहूं कि खुराक के वास्ते साल भर के अन्दर गौ का मारा जाना बिल्कुल जाता रहे या कम-से-कम बहुत थोड़ी मात्रा में रह जाय तो भी मैं इस बात को अनुभव करता हूं कि मेरी अपनी इच्छाओं की शीघ्र पूर्ति के स्वप्न के पूरा होने की आशा रखना आशा के विरुद्ध है।......भारतवर्ष के मुसलमान जो बकरी के मंहगे मांस को खरीद सकते हैं वह किसी-किसी मौके पर गाय का गोश्त खाते हैं लेकिन गरीब मुसलमानों के लिये वर्तमान स्थिति में गाय का मांस न्यूनाधिक आर्थिक जरूरत के अनुसार है।" फिर उन्होंने कहा, "जब स्वराज्य गवर्नमेंट का बजट तैयार होगा

उस समय गऊकशी को कम करने के लिये बकरी के गोश्त को सस्ता करने के लिये बजट में एक विशेष रकम बकरियों की नसल को बढ़ाने के लिये रक्खी जाएगी।''

उपरोक्त शब्द महात्मा गांधी जी को बापू कहने वाले मौलाना साहब के हैं। न ही सब मुसलमान प्रतिदिन गोश्त खाते हैं। और न ही यह कि वह बिना गोश्त खाये जीवित नहीं रह सकते। भारतवर्ष के हित के लिये कांग्रेस के प्रधान की पदवी रखने वाले सज्जन भी खुराक के लिये गऊकशी बन्द करने का उपदेश नहीं दे सकते तो फिर उनसे क्या आशा हो सकती है? मुसलमानों के लिए गाय की कुर्बानी कोई धार्मिक कर्त्तव्य नहीं है।

सर आगाखां व मुसलमानों की कान्फ्रेंस

सर आगाखां ने ३१ दिसम्बर १९३८ को मुसलमानों की बहुत बड़ी कांफ्रेंस के प्रधान पद से यह स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया कि गाय की कुर्बानी मुसलमानों के लिये धार्मिक दृष्टिकोण से आवश्यक नहीं है। और इस सच्चाई की तरफ ध्यान दिलाकर कहा कि अरब के अन्दर हज करने वाले गाय की कुर्बानी नहीं करते। फिर हिन्दुस्तान में मुसलमान गऊकशी पर क्यों इतने आरूढ़ हैं?

उपरोक्त विचार कितने युक्तियुक्त हैं परन्तु जब मुसलमानों के हृदय में भारतवर्ष की भलाई का कोई ख्याल नहीं केवल उन्हें मुस्लिम सत्ता जमाने की ही चिन्ता हो तो वे हिन्दुओं की भावनाओं का सम्मान करके क्यों गऊकशी को बन्द करें?

जैसा कि मैंने पहिले निवेदन किया है मौलाना मोहम्मदअली ने खिलाफत के प्रति हिन्दुओं के कार्य की निस्स्वार्थ भावना की प्रशंसा नहीं की और उल्टा यह कह दिया कि यह हिन्दुओं का स्वार्थ था कि उन्होंने अपनी गाय को बचवाने के लिए खिलाफत में हमारा साथ दिया। उसी रीति पर अमल करते हुये मुसलमानों ने गाय के सवाल के साथ मस्जिदों के सामने बाजा बन्द करने का झगड़ा खड़ा कर दिया।

साम्प्रदायिक दंगों के कारण इन विषयों पर समझौता करने के लिये कांग्रेस ने अनेक समझौते किये। परन्तु प्रत्येक समझौते के प्रयत्न ने मुसलमानों की इच्छाओं व आकांक्षाओं को उत्तेजित करके हिन्दू अधिकारों के विरुद्ध वायुमण्डल पैदा किया। सन् १९२३ में अमृतसर, सिन्ध, मुरादाबाद, मेरठ, मुलतान व अन्य कई स्थानों पर दंगे हुये।

इण्डियन नेशनल पैक्ट

सन् १९२३ में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन देहली में हुआ। हिन्दू-मुस्लिम समझौता तैयार करने के लिये एक कमेटी बनाई गई, जिसके सभासद ला० लाजपतराय, सरदार महताबसिंह व डॉक्टर अन्सारी नियुक्त हुए। इस कमेटी के बनाये हुए समझौते को 'इंडियन-नेशनल पैक्ट' (Indian National Pact.) कहते हैं। इस समझौते में गाय व बाजा के बारे में निम्नलिखित विचार उपस्थित किये गये।

गाय—(अ) कौमी इत्तहाद को प्राप्त करने के लिये और हिन्दू साथियों की धार्मिक भावनाओं का लिहाज करते हुए हिन्दुस्तान के मुसलमान आत्मसमर्पण के पवित्र भाव से प्रेरित होकर ईद के अवसर को छोड़कर गऊकशी छोड़ने के लिये अपने आपको बाधित करते हैं।

(आ) ईद के अवसर पर गऊकशी इस प्रकार करेंगे कि हिन्दुओं के हृदयों को चोट न पहुंचे।

बाजा—सामूहिक (Public) भक्ति के लिये शान्तिमय वायुमण्डल उत्पन्न करने व स्थिर रखने के लिये यह घोषणा की जाती है कि सामूहिक आराधना करने के स्थानों के सामने ऐसे समय जिसको वहां की स्थानिक व मिश्रित बोर्ड नियत करे—बाजा न बजाया जाये।

बंगाल पैक्ट—इसी समय कांग्रेस की एक स्वराज्य पार्टी बनी। कलकत्ते में १६-१७ दिसम्बर १९२३ को इस पार्टी की बैठक हुई। मुसलमानों को अपनी ओर मिलाने के लिये पार्टी के नेता मि० सी० आर० दास ने हिन्दू-मुस्लिम समझौते के लिये "बंगाल हिन्दू-मुस्लिम मुहायदा" के नाम से एक-एक पैक्ट तैयार किया।

गाय—गाय के विषय में निश्चय किया गया कि धार्मिक रवादारी क़ायम रखने के लिए निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

(अ) धार्मिक कुर्बानियों के लिये गऊकशी में हस्ताक्षेप न किया जाये।

(आ) कौन्सिल में खुराक के निमित्त गऊ को मारने के सम्बन्ध में कोई कानून न बनवाया जाए।

(इ) गऊकशी ऐसे ढंग से की जावे जिससे हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं को आघात न पहुंचे।

बाजा—मज़हबी रवादारी स्थिर रखने के लिये मस्जिद के सामने जलूस का बाजा न बजाया जावे।

उपरोक्त दोनों समझौतों को ध्यान से पढ़कर पाठकगण यह जान लेंगे कि ''इण्डियन नेशनल पैक्ट'' ने जहां हिन्दुओं के प्रति कुछ न्याय का बर्ताव किया, वहां मि० सी० आर० दास ने बंगाल मुहायदा बनाकर हिन्दुओं के प्रति अन्याय पूर्ण एवं अत्यन्त घातक नीति का प्रयोग किया। इण्डियन नेशनल पैक्ट ने बाजे के सम्बन्ध में मन्दिर, गुरुद्वारा, गिरजा व मस्जिद को एक समान स्थान देकर सबके सामने बाजा बजाने की केवल उस समय मनाही की जो सामूहिक रूप से पूजा करने का हो। और समय भी वह हो जिसको स्थानिक रूप से पूजा करने का हो। और समय भी वह हो जिसको स्थानिक हिन्दू-मुस्लिम आदि सज्जनों का बोर्ड नियत करे। परन्तु बंगाल मुहायदे के अनुसार केवल मस्जिद के सामने ही बाजा बन्द करने का निश्चय हुआ और वह भी हर समय के लिये। गाय के विषय में ''इण्डियन नेशनल पैक्ट'' ने गऊकशी के सम्बन्ध में कोई राय प्रकट न करके मुसलमान मेम्बरों के विचारों को प्रकाशित करना पर्याप्त समझा। इसके विपरीत बंगाल मुहायदे ने यह फैसला किया कि गऊकशी रोकने के लिये गौ भक्त न कोई कानून बनवाने की योजना कर सकते हैं तथा न किसी अन्य रीति से बाधा डाल सकते हैं अतः बंगाल मुहायदे में तो गऊकशी बन्द करने में मुसलमानों की तनिक इच्छा का आभास भी नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त यह निवेदन करना भी अनुचित न होगा कि ''इण्डियन नेशनल पैक्ट'' ने भी अपनी मुस्लिम पोषक नीति को दर्शाया था। गाय के सम्बन्ध में अपनी ओर से कोई बन्दिश न लगाते हुए इस पैक्ट ने भी बाजा बन्द करने की घोषणा करदी थी।

कोकनाडा कांग्रेस व मुहायदे

उपरोक्त दोनों मुहायदे १९२३ की कोकनाडा कांग्रेस में विचारार्थ पेश हुए। बंगाल मुहायदा कांग्रेस के किसी प्रस्ताव के भी आधीन तैयार न हुआ था, इसलिये मि० श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने उपरोक्त अनियमितता के आधार पर इसका विरोध करते हुए कहा—''इससे हिन्दू-मुस्लिम मेल खतरे में पड़ जायेगा। वह मुसलमानों को रियायत देने के विरुद्ध नहीं, परन्तु मुसलमानों के हृदयों में यह विचार उत्पन्न नहीं होना चाहिये कि जब तक हिन्दू उनसे उनकी रुचि अनुसार सौदा नहीं करेंगे, उस समय तक मुसलमान स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भाग न लेंगे।'' अन्य कई

सज्जनों ने भी मि० चक्रवर्ती का समर्थन किया, परन्तु इन विचारों का कुछ ख्याल न करते हुए मिसिज़ सरोजनी नायडू, श्री राजगोपालाचार्य तथा पं० मोतीलाल नेहरू ने भरसक प्रयत्न करके निश्चय करा दिया कि कांग्रेस बंगाल समझौते पर विचार करे। कांग्रेस के एक मुसलमान मेम्बर मि० टी०के० शेरवानी ने मि० चक्रवर्ती के विचारों पर टीका टिप्पणी करते हुए कहा, "इससे प्रत्येक मुसलमान पर यह प्रभाव पड़ेगा कि हिन्दू सज्जन उस आवश्यक प्रस्ताव पर जिसके अन्दर मुसलमानों को उनके यथार्थ अधिकार प्रदान करने का निर्णय किया गया है विचार करने के भी विरुद्ध है।" उपरोक्त बातों से पाठकगण भलीभांति जान लेंगे कि बंगाल समझौते में हिन्दुओं के प्रति किये गये घातक निर्णय को एक कांग्रेसी मुसलमान तो मुसलमानों के लिये यथार्थ निर्णय कह सकता है परन्तु पं० मोतीलाल नेहरू जैसे कांग्रेसी हिन्दू इतना साहस नहीं दिखला सकते कि इसका विरोध करें बल्कि एक पग आगे बढ़ जाते हैं और मुसलमानों की अप्रसन्नता के भय से पैक्ट को नियम विरुद्ध होते हुए भी कांग्रेस के सामने विचारार्थ रख लेते हैं।

महात्मा गांधी का व्रत व देहली समझौता

सन् १९२४ में महात्मा गांधी ने देहली में २१ दिन का उपवास किया। उस स्थान पर एक बहुत बड़ी मिलाप कांफ्रेंस हुई, इस कांफ्रेंस के प्रस्ताव नं० ४ का सम्बन्ध गाय तथा बाजे से है। उस स्थान में यह निर्णय किया गया कि किसी कानून व अदालत के हुक्म से या लोकल बोडी के प्रस्ताव से न हिन्दू मुसलमानों को गऊकशी के अधिकार से रोक सकते हैं और न मुसलमान हिन्दुओं को बाजा बजाने के अधिकार से वंचित रख सकते हैं। यह केवल परस्पर प्रीति से हो सकता है। साथ ही यह भी निर्णय किया गया कि इस प्रस्ताव से किसी स्थानीक प्रथा पर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

इतना कुछ हो जाने पर जब गवर्नमेंट ने भी यह देख लिया कि हिन्दू गाय व बाजे के विषय में मुसलमानों को रियायत देने के लिये तत्पर हैं तो उसने भी अपनी नीति को इस भांति बदला कि मुसलमानों ने निर्विघ्न रूप से गऊओं के अनेक स्थानों पर जलूस निकाले। सरकार ने मस्जिदों के सामने बाजे भी बन्द करा दिये।

मुसलमानों ने इस विषय में वायुमण्डल को अपने अनुकूल बनाने के लिये सन् १९२६ से १९२८ तक देहली, गुलबर्गा, कोहाट, लखनऊ,

शाहजहांपुर, इलाहाबाद, कलकत्ता, जबलपुर, रावलपिण्डी, पटना, ढाका आदि में दंगे किये।

गोहाटी कांग्रेस व नया समझौता

इन झगड़ों को शान्त करने के लिये सन् १९२६ में गोहाटी में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन पर निर्णय किया गया कि "हिन्दू-मुस्लिम समझौते के लिये नये सिरे से एक मुहायदा तैयार किया जावे।" इस सम्बन्ध में १६ सितम्बर सन् १९२७ से २२ सितम्बर १९२७ तक शिमले में एक कांफ्रेंस हुई। और एक कमेटी बनाई गई, उसके सभासद पं० मदनमोहन मालवीय, डॉ० मुञ्जे, श्रीमान् जयरामदास, रायसाहब लाला केदारनाथ, प्रिं० दीवानचन्द, सरदार शार्दूलसिंह, हकीम अजमलखां, डॉ० अन्सारी, मौलाना अब्बुलकलाम आज़ाद, मौ० मोहम्मदअली, डॉ० किचलू बनाये गये। इस कमेटी में अनेक प्रस्ताव पेश हुए परन्तु किसी न किसी सज्जन के विरोध करने से कमेटी असफल रही।

मिलाप कान्फ्रेंस कलकत्ता

फिर कांग्रेस ने कलकत्ते में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की मीटिंग की, और २७ अक्तूबर सन् १९२७ को एक और इतहाद सभा हुई। गाय व बाजे पर निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुए।

(१) "हिन्दुओं को अपने धार्मिक व सामाजिक जलूस मसजिदों के सामने हर समय ले जाने व बाजा बजाने की सुविधा हो। परन्तु मसजिदों के सामने जलूसों को ठहरने व कोई विशेष दिखावा करने की आज्ञा नहीं है। भजन कीर्तन आदि इस रीति से न किया जावे और न ही बाजा इस ढंग से बजाया जावे जिससे मसजिदों के अन्दर भक्ति करने वालों को दुःख हो या कोई रुकावट हो या दिल दुखावा हो।"

उपरोक्त प्रस्ताव में भक्ति करने वालों के स्थान में 'नमाज़ अदा करने वालों' का वर्णन होता तो हमें कोई आक्षेप न था। क्योंकि भक्ति करने वाले मस्जिदों में हर समय मिलते हैं या मिल सकते हैं। नये स्थानों पर नई मस्जिदें खड़ी हो सकती हैं। इसलिये हिन्दुओं का जलूस उपरोक्त प्रस्ताव अनुसार किस जगह खड़ा हो यह समझ में नहीं आता। मुसलमानों के केवल नमाज के समय ही बाजा बन्द करने की मांग आरम्भ में उपस्थित की थी परन्तु २७ अक्तूबर के उल्लिखित प्रस्ताव से हर समय बाजे के बन्द करने की सम्भावना हो गई।

(२) गाय पर इसी कान्फ्रेंस में यह निर्णय किया गया कि "मुसलमान साहेबान अपने अधिकारों के आधार पर गऊवध अपने गांव या कस्बे में प्रत्येक स्थान पर कर सकते हैं। परन्तु वह स्थान आम सड़क न हो और न किसी मन्दिर के समीप हो तथा न ही जनता की दृष्टि के सामने हो। वध करने वाली गऊ का न जलूस हो और न दिखावा हो।"

गऊ-वध के विषय में हिन्दुओं की गहरी व पुरानी भावनाओं का आदर करते हुए मुस्लिम सम्प्रदाय से अपील की जाती है कि गऊ-वध ऐसे ढंग से करें जिससे हिन्दुओं का दिल न दु:खे।

पाठकगण उपरोक्त प्रस्ताव से जान लेंगे कि गऊ-वध की आज्ञा प्रत्येक स्थान पर देकर सर्वथा ऐसे स्थानों का भी विचार न रखा गया जहां गोवध पहले से ही बन्द था। खेद है इस प्रस्ताव में मुसलमानों से यह भी अपील न की गई कि भारतवर्ष के लाभ के लिये या हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये गऊ-वध न करने का प्रयत्न करें।

मि० टी० प्रकाशम ने दोनों विषयों पर कुछ संशोधन पेश किये जिनका आशय यह था कि १९२२ से पहले की प्रथा व नियम आदि का ध्यान रक्खा जावे।

परन्तु उन संशोधनों पर कोई ध्यान देकर असली प्रस्ताव पास किया गया।

आर्य्य सम्मेलन देहली

४ नवम्बर १९२७ को "All India Aryan League" के नाम से आर्य्यों का एक बड़ा भारी सम्मेलन श्री महात्मा हंसराज जी की अध्यक्षता में देहली में हुआ। उक्त 'मिलाप कान्फ्रेंस' के प्रस्तावों के विरुद्ध अपना मत प्रकट करते हुए निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किये—

1. "It went even beyond the Muslim demand for undisturbed prayers at certain hours & prohibited all processions before old as well new mosques which may be ercted in future."

अर्थात् "मिलाप कांफ्रेंस का प्रस्ताव मुसलमानों की इस मांग से भी आगे बढ़ गया कि नमाज़ में कोई बाधा न होने के लिये विशेष समयों पर बाजा न बजाया जावे। इसने पुरानी तथा आगामी काल में बनने वाली नई मसजिदों के सामने प्रत्येक जलूस पर प्रतिबन्ध लगा दिया।"

2. "It permitted Cow slaughter in the Holy places of Hindus & it removed all municipal & sanitary restrictons on the slaughter of animals by permitting every muslim House to be converted into a slaughter house, not only during the Bakr-Id but during the ordinary days as well."

अर्थात् "इसने हिन्दुओं के धार्मिक स्थानों में गऊ-वध की छुट्टी दे दी है और पशुओं के वध करने पर लागू होने वाले तमाम मियुन्सिपल व स्वास्थ्य के नियमों की इस प्रकार उपेक्षा करदी है कि उसने प्रत्येक मुस्लिम घराने को वध-स्थान में परिवर्तन करने की आज्ञा न केवल 'बकरा-ईद' के दिन के लिये बल्कि साधारण दिनों के लिये भी प्रदान कर दी है।"

श्री महात्मा हंसराज जी जैसे शान्तिप्रिय व गम्भीर नेता की अध्यक्षता में कांग्रेस की ओर से की गई मिलाप कांफ्रेंस के प्रस्तावों का उपरोक्त ढंग से विरोध किया जाना एक बड़े महत्त्व की बात है। यदि मिलाप कांफ्रेंस के प्रस्ताव हिन्दुओं के लिये घातक न होते तो 'आर्य्य लीग' से उक्त प्रस्तावों का स्वीकार होना असम्भव था।

इस सीमा पर पहुंचकर मुसलमानों ने अपनी दूसरी इच्छाओं की ओर ध्यान देना आरम्भ किया और हिन्दू-मुस्लिम एकता के रंगमंच पर कौंसिलों में चुनाव आदि के प्रश्न खड़े कर दिये।
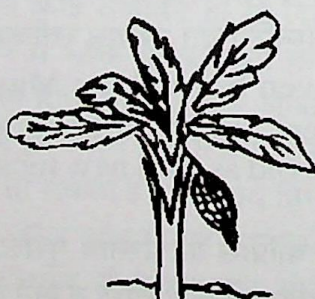
(३)
चुनाव

देश में अंग्रेजी शासन पद्धति के अन्दर भारतवर्ष में उत्तम शासन चालू करने के निमित्त जब से आन्दोलन आरम्भ हुआ है और सरकार ने मत–अधिकार के आधार पर शासन पद्धति में परिवर्तन करने का विचार किया है उसी समय से मुसलमानों ने इस ओर अपना ध्यान लगाया है। सन् १९०६ में लीग स्थापना के पश्चात् मुसलमानों का ध्येय यही रहा है कि किसी न किसी प्रकार इस देश में इस्लामी प्रभुत्व स्थापित किया जावे। लार्ड मिण्टो वायसराय हिन्द के समय में सबसे पहले चुनाव की समस्या भारतीय राजनैतिक रंगमंच पर उपस्थित हुई।

लार्ड मिन्टो व मुसलमानों का नियुक्त मण्डल

लार्ड मिण्टो के सामने मुसलमानों के एक मंडल ने १९०६ में निम्नलिखित मांगें उपस्थित कीं :-

(१) जिला व नागरिक (म्युनिसिपल) संस्थाओं में साम्प्रदायिक आधार पर मुसलमानों का प्रतिनिधित्व उनकी जन-संख्या, सामाजिक अवस्था तथा स्थानीय प्रभाव के अनुकूल हो।

(२) विश्वविद्यालयों की प्रबन्धक समितियों में मुस्लिम प्रतिनिधियों को लिये जाने का मुसलमानों को विश्वास दिलाया जावे।

(३) प्रान्तीय धारा सभाओं में प्रतिनिधित्व साम्प्रदायिक हो। निर्वाचन के लिये ऐसे नियोजक दल हों जिनमें मुसलमान जमींदार, वकील, व्यापारी, आवश्यक हितों के प्रतिनिधि, विश्वविद्यालयों के नियत पदवी के स्नातक और जिला तथा नागरिक सभाओं के सदस्य सम्मिलित हों।

(४) केन्द्रीय धारा सभा में मुसलमान प्रतिनिधियों की संख्या उनकी जनसंख्या पर आश्रित न हो। इसके अतिरिक्त मुसलमान कभी भी प्रभाव रहित लघु संख्या में न रक्खे जावें। यथासम्भव वे चुनाव द्वारा निर्वाचित किये जावें। चुनाव ऐसे समूह द्वारा हों जिनमें मुसलमान

जमींदार, वकील, व्यापारी, धारा सभाओं के सदस्य और विश्वविद्यालयों के सदस्य शामिल हों।

उपरोक्त मांगों से चलकर पाकिस्तान की मांग तक आ जाना मुसलमानों की आकांक्षाओं का एक रहस्यपूर्ण इतिहास है। इसको जानकर यह समझना सरल है कि वह किस स्थान पर पहुंचना चाहते हैं।

मिण्टो-मोर्ले सुधार

सन् १९०९ में एक्ट १९०९ के नाम से मिंटो मौर्ले सुधार के अनुसार भारतवर्ष में नया शासन विधान प्रचलित हुआ। मुसलमानों की मांगों के सम्बन्ध में निम्नलिखित निश्चय हुआ—

(१) मुसलमानों को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार होगा।

(२) मुसलमानों को अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार पृथक् नियोजकगण द्वारा होगा।

(३) सर्व सामान्य नियोजकगण में भी मुसलमानों को मत अधिकार प्राप्त होगा।

(४) मुसलमानों को अपने जनगणना के आंकड़ों के हिसाब से भी अधिक प्रतिनिधित्व का अधिकार होगा।

उपरोक्त आयोजना में मुसलमानों को दोहरा मत अधिकार मिला, अर्थात् जहां उनको अपने सम्प्रदाय के उम्मीदवारों को राय देने का अधिकार मिला, वहां उनको सर्व सामान्य चुनाव में भी मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ। यह ब्रिटिश राज्य की पक्षपातपूर्ण नीति का एक साधारण-सा उदाहरण है।

मिंटो मोर्ले सुधार को चालू करने के समय ही कांग्रेस को यह चाहिये था कि इसका घोर विरोध करती जिससे मिंटो मौर्ले की प्रचलित शासन-पद्धति परिवर्तित हो जाती और यदि ऐसा न होता तो कम-से-कम इस विष-वृक्ष को फलने-फूलने का अवसर न मिलता। स्वयम् भारत-मंत्री लौर्ड मौर्ले भी साम्प्रदायिक चुनाव के विरुद्ध थे, जैसा कि उन्होंने लौर्डमिंटो वायसराय हिन्द को ६ दिसम्बर १९०९ को, एक पत्र में लिखा था—

"I won't follow you again in our Mohammadan dispute, only I respectfully remind you, once more, that it was your early speech about their extra claims that first started the Muslim hare." (Morley's Collections Vol. II Page 325).

अर्थ—"मैं मुसलमानों के सम्बन्ध में आपकी युक्ति नहीं मानता। मैं केवल नम्रता के साथ एक बार फिर आपको याद दिलाता हूं कि यह आपका एक बहुत पहले का एक भाषण था जिसने सबसे पहिले मुसलमानों के कान खड़े किये।"

मिन्टो-मोर्ले सुधार के अनुसार भारतवर्ष की धारा सभाओं में मुसलमानों व अन्य जातियों को जो प्रतिनिधित्व दिया गया उसका ब्यौरा निम्नलिखित सूची से विदित होगा—

नाम प्रान्त	निर्वाचित सदस्य			सरकार के अधिकारी तथा उसके द्वारा नियुक्त	योग
	गैरमुस्लिम	मुस्लिम	योग		
केन्द्रीय सभा	२२	५	२७	४१	६८
मद्रास	१९	२	२१	२८	४९
बम्बई	१७	४	२१	२८	४९
बंगाल	२३	५	२८	२६	५४
बिहार	१७	४	२१	२४	४५
संयुक्त प्रान्त	१७	४	२१	२९	५०
पंजाब	८	०	८	१९	२७
आसाम	९	२	११	१५	२६

L6 RAM-C

नोट—(१) मध्य प्रान्त में उस समय कोई धारा सभा नहीं थी। यहां धारा सभा १९१४ में स्थापित हुई।

(२) इस आयोजना में पंजाब के मुसलमानों को कोई संरक्षण नहीं दिया गया क्योंकि उनके बहुसंख्या में होने के कारण आवश्यक नहीं समझा गया।

अक्तूबर १९१९ में केन्द्रीय धारा सभा के कुछ सदस्यों ने वायसराय महोदय लौर्ड चैम्सफोर्ड की सेवा में एक पत्र भेजकर शासन विधान में सुधार किये जाने की प्रार्थना की। इसकी गन्ध पाकर मुसलमानों ने भी अपनी मांगें पेश कर दीं—

(१) साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त पंजाब और मध्य प्रान्त में लागू किया जावे।

(२) केन्द्रीय व प्रान्तीय धारा सभाओं में मुस्लिम प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित करदी जावे।

(३) "कोई ऐसा संरक्षण हो जिसके कारण ऐसा कोई नियम या कानून न बन सके जो मुस्लिम जनता पर, उनके मजहब पर या उनके मज़हबी रस्मो-रिवाज पर बाधा डालने वाला हो।"

मुसलमानों को यह मालूम था कि यूरोप के महायुद्ध के पश्चात् कोई न कोई नया शासन आवेगा, इसलिये एक ओर तो उन्होंने ब्रिटिश सरकार के सामने अपनी मांगें रक्खीं और दूसरी ओर वे हिन्दुओं व कांग्रेस के प्रति मित्रता का भाव दर्शाने लगे। उन्होंने यह प्रयत्न किया कि कांग्रेस के द्वारा अपनी मांगों को स्वीकृत करवाकर सरकार से कहा जावे कि या तो वह मुसलमानों की मांगें पूरी करें अन्यथा वे कांग्रेस के साथ होकर देश को स्वतन्त्र कराने के आन्दोलन में जुट जावेंगे। कांग्रेसी हिन्दुओं को इतनी सूझ ही नहीं थी कि वे मुसलमानों की मनोवृत्ति को जांच सकें।

लखनऊ पैक्ट

मुसलमानों के ऊपरी प्रेम से प्रभावित होकर कांग्रेसी हिन्दुओं ने मुसलमानों को पूर्णतया अपने साथ मिलाने के लिये १९१६ में लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर ऐतिहासिक "लखनऊ हिन्दू-मुस्लिम समझौता" तैयार किया। इस समझौते की एक धारा के अनुसार निम्न निश्चय हुआ—

१. "कोई गैर सरकारी सदस्य किसी धारा सभा में ऐसा कोई बिल या उसका कोई अंग या कोई ऐसा प्रस्ताव उपस्थित नहीं कर सकेगा, यदि उस धारा सभा में उस सम्प्रदाय के तीन चौथाई सभासद उस बिल अथवा प्रस्ताव के विरुद्ध हों। इस बात का निर्णय कि किसी बिल अथवा प्रस्ताव का प्रभाव उस सम्प्रदाय पर पड़ेगा वा नहीं, उस सम्प्रदाय के धारा सभाओं के सदस्यों की सम्मति पर निर्भर होगा।"

इस धारा के होते हुए अछूतों की दशा को सुधारने वाला अथवा हिन्दुओं के सामाजिक सुधार का कोई बिल अथवा प्रस्ताव भी मुसलमानों की दृष्टि में खटक सकता है। मुसलमानों की मनोवृत्ति को देखते हुए क्या यह संभव नहीं है कि मुसलमान इन प्रस्तावों को अपने सम्प्रदाय की संख्या वृद्धि के लिये हानिकारक बतला कर यह कहदें कि समझौते की इस धारा के अनुसार ऐसा प्रस्ताव पेश नहीं हो सकता।

यह निवेदन करना भी आवश्यक है कि इस धारा से पूर्व मुसलमानों की ऐसी कोई मांग न थी। परन्तु समय पाकर यही धारा मुसलमानों की १९२९ की १४ मांगों में से एक मांग (संख्या नम्बर ८) बन गई।

लखनऊ समझौते की दूसरी धारा का सम्बन्ध केन्द्रीय धारा सभा से है। इसके अनुसार केन्द्रिय धारा सभा के लिये यह निश्चय हुआ—

"भारतवर्ष के निर्वाचित सदस्यों में मुसलमानों का भाग एक तिहाई होगा। वे भिन्न-भिन्न प्रान्तों से पृथक् लोकमत द्वारा यथासम्भव उसी अनुपात से चुने जावेंगे जिस अनुपात में पृथक् मुस्लिम नियोजक गण के द्वारा वे प्रान्तीय धारा सभाओं में चुने गये हों।"

लार्ड मिंटो के सामने मुसलमानों का केवल यह अनुरोध था कि केन्द्रीय धारा सभा में उनका प्रतिनिधित्व ऐसा न हो कि उनका कोई प्रभाव न रहे। लखनऊ पैक्ट ने इसकी व्याख्या करके एक तिहाई निश्चित कर दिया। एक्ट १९०९ में केन्द्रीय धारा में निर्वाचित मुसलमान सदस्यों की संख्या २७ में से ५ थी। परन्तु लखनऊ पैक्ट का आश्रय लेकर मुसलमानों ने सन् १९२९ की १४ मांगों में से एक मांग (संख्या-४) यह रक्खी कि केन्द्र में उनका प्रतिनिधित्व एक तिहाई हो। इसको अंग्रेजी सरकार ने 'साम्प्रदायिक निर्णय' द्वारा पूरा कर दिया।

लखनऊ पैक्ट के द्वारा प्रान्तीय धारा सभाओं में मुसलमानों को निर्वाचित सदस्यों में निम्नलिखित प्रतिनिधित्व दिया गया।

नाम प्रान्त	प्रतिशत मुस्लिम आबादी	निर्वाचित भारतीय सदस्यों में मुसलमानों का प्रतिशत
पंजाब	५५.२	५०
बंगाल	५४.६	४०
बिहार व उड़ीसा	१०.९	२५
मध्य प्रान्त	४.४	१५
मद्रास	६.७	१५
बम्बई	१९.८	३३१/३
संयुक्त प्रान्त	१४.३	३०
आसाम	३२.३	निश्चित नहीं किया

इस समझौते ने एक्ट १९०९ में प्रदान किये हुए दोहरी रायों के अधिकार को स्वीकार नहीं किया।

सन् १९१९ में मौण्टेग्यू-चैम्सफोर्ड रिपोर्ट के आधार पर भारतवर्ष का नया शासन विधान बना। इसको "भारत सरकार एक्ट १९१९" कहते हैं। इस विधान में लखनऊ पैक्ट की दूसरी धारा को इस रूप में स्वीकृत किया गया कि भारतवर्ष के किसी सम्प्रदाय पर लागू होने वाला कोई बिल या प्रस्ताव गवर्नर-जनरल की आज्ञा के बिना किसी धारा सभा में विचारार्थ पेश नहीं हो सकता। पैक्ट का प्रतिनिधित्व वाला भाग साधारण परिवर्तन के बाद इस शासन विधान में सम्मिलित कर लिया गया।

इस विधान के अनुसार धारा सभाओं में निम्नलिखित सदस्य बनाए गए।

नाम धारा सभा	निर्वाचित सदस्य			सरकारी व सरकार के द्वारा नियुक्त	धारा सभा की कुल संख्या
	गैर मुस्लिम सिक्ख	मुस्लिम	योग		
केन्द्रीय धारा सभा	५५	३०	८५	४०	१२५+२० =१४५
कौन्सिल ऑफ स्टेट	२२	११	३३	२७	६०
मद्रास	८५	१३	९८	३४	१३२
बम्बई	५९	२७	८६	२८	११४
बंगाल	७५	३९	११४	२६	१४०
संयुक्त प्रान्त	७१	२९	१००	२३	१२३
पंजाब	३९	३२	७१	२३	९४
बिहार	५८	१८	७६	२७	१०३
मध्यप्रान्त	४८	७	५५	१८	७३
आसाम	२७	१२	३९	१४	५३

नोट—१. एक्ट में प्रान्तीय धारा सभाओं की संख्या कुछ न्यून थी, परन्तु वास्तव में कुछ अधिक प्रतिनिधित्व दिया गया था। उसी के अनुसार उपरोक्त संख्या दी गई है।

२. केन्द्रीय धारा सभा की १४५ की संख्या में २० की संख्या जागीर आदि हितों की है।

अब हमारे सामने मुसलमानों को दिये गये एवं स्वीकृत किये गए प्रतिनिधित्व के ३ नक्शे या विवरण हैं—

(१) एक्ट १९०९ का।

(२) एक्ट १९१९ का।

(३) कांग्रेस की ओर से स्वीकार किया हुआ लखनऊ समझौते का।

इन तीनों की एक-दूसरे से तुलना करके भली प्रकार विदित हो जाता है कि मुसलमानों की उनकी आबादी से अधिक प्रतिनिधित्व की मात्रा किस प्रकार हर बार बढ़ती चली जाती है। तीनों के तुलनात्मक आंकड़े नीचे दिये जाते हैं—

नाम प्रान्त	मुस्लिम आबादी प्रतिशत १९२१ की जनगणना के अनुसार	मुस्लिम प्रतिनिधियों की संख्या प्रतिशत		
		१९०९ में	१९१९ में	लखनऊ पैक्ट में
केन्द्रीय धारा सभा	२४	१८.५	२०.८	३३.३
कौन्सिल ऑफ स्टेट	÷	+	३३.३	उस समय यह सभा नहीं थी
मद्रास	६.७	९.५	१३	१५
बम्बई	१९.८	१९	३१.४	३३.३
बंगाल	५४.६	१७.८	३४	४०
पंजाब	५५.२	+	४५	५०
बिहार	१०.९	१९	२४	२९
मध्यप्रान्त	४.४	+	१२.७	१५
संयुक्त-प्रान्त	१४.३	१९	२९	३०
आसाम	३२.३	१८	३०.८	×

+ पंजाब में मुसलमानों को पृथक् अधिकार देना सरकार ने आवश्यक न समझा।

+ मध्य प्रान्त में उस समय कोई धारा सभा नहीं थी।

× आसाम प्रान्त के लिये कोई निर्णय किया मालूम नहीं होता।

उपरोक्त नक्शे से मालूम होगा कि अंग्रेजी सरकार ने भी मुसलमानों को निर्वाचित सदस्यों में इतनी संख्या नहीं दी जितनी कांग्रेस ने प्रदान करदी। दूसरी बात यह है कि पंजाब और बंगाल में मुसलमानों को उनकी आबादी से कम प्रतिनिधित्व दिया गया। इसका कारण हिन्दुओं के साथ प्रेम नहीं था किन्तु यह तो लखनऊ पैक्ट बनाने के लिये एक साधारण-सी अड़चन को दूर करने के लिये किया गया था। इसका वृत्तान्त पढ़ने से हमको मुसलमानों की दूरदर्शिता और कांग्रेसी हिन्दुओं की अनुचित उदारता या दुर्बल राजनीतिज्ञता दीख पड़ती है।

यह कहा जाता है कि लखनऊ समझौते के लिये यह सिद्धान्त स्थिर किया गया था कि किसी प्रान्त में भी बहुसंख्यक सम्प्रदाय पृथक् नियोजक गण द्वारा प्रतिनिधित्व का पक्ष उपस्थित नहीं कर सकता। केवल वही सम्प्रदाय संरक्षण का अधिकार मांग सकता है जो लघु संख्या में हो।

पंजाब और बंगाल में मुसलमान बहु-संख्या में होने के कारण इन प्रान्तों में पृथक् चुनाव का सिद्धान्त लागू नहीं करवा सकते थे जब तक कि वह लघुसंख्यक अवस्था में जाना स्वीकार न कर लेते।

हिन्दुओं ने इन प्रान्तों में लघुसंख्यक अवस्था में होते हुए भी ऐसी कोई मांग उपस्थित नहीं की जैसी कि मुसलमान कर रहे थे। इसलिये मुसलमान अपने आपको लघुसंख्यक के रूप में समझे जाने के लिये सहमत न होते तो पृथक् लोकमत और पृथक् प्रतिनिधित्व का प्रश्न इन प्रान्तों में चालू नहीं होता। मुसलमान इसको सहन नहीं कर सकते थे। इसलिये उन्होंने यही उचित समझा कि अपने आपको लघु संख्या में समझे जाने के लिये पेश करदें। इस प्रकार इन प्रान्तों में पृथक् लोकमत और पृथक् प्रतिनिधित्व का स्थान निश्चित हो गया।

पार्लियामेंट की ओर से गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया बिल १९१९ पर रिपोर्ट करने के लिये एक ज्वाइंट सिलैक्ट कमेटी नियुक्त की गई। उसके सामने गवाही देते हुए प्रश्न नं० ३८०८ के उत्तर में मि० जिन्नाह ने कहा—

"The position of Bengal was this : In Bengal the muslims are in a majority and the argument was advanced that any section or any community which is in the majority

cannot claim a separate electorate. Separate electorate is to protect the minority. But the counter-argument was perfectly true that numerically we are in a majority but as voters we are in the minority in Bengal. because of poverty and backwardness and so on. It was said: Very well ! They fix 40% because if you are really put to test you will not get 40% because you will not be qualified as voters. Then we had the advantage in other provinces."

अर्थात् "बंगाल के बारे में स्थिति यह थी—बंगाल में मुस्लिम जनसंख्या बहुमत में थी और इसके लिये यह दलील उपस्थित की गई कि कोई वर्ग या कोई सम्प्रदाय जो बहुमत में है पृथक् निर्वाचन का अधिकार नहीं मांग सकता। पृथक् निर्वाचन केवल अल्पमत की सुरक्षा करने के लिये है किन्तु इसके विरोध में दी गई यह दलील भी बिल्कुल ठीक है कि हम संख्या के लिहाज से बहुमत में हैं सही, किन्तु मतदाता की हैसियत से हम अल्पमत में हैं जिसका कारण गरीबी तथा अन्य कारणों से पिछड़ा हुआ होना है। इस पर यह कहा गया—तो अच्छी बात है। आप ४० प्रतिशत निश्चित कर लीजिये क्योंकि यदि आपको वास्तव में चुनाव की कसौटी पर कसा गया तो आप ४० प्रतिशत सीट नहीं पा सकेंगे क्योंकि आपको मतदाता के रूप में इतने अधिकार प्राप्त नहीं होंगे। लेकिन हम इसकी अधिक परवाह नहीं करते क्योंकि हमें दूसरे प्रान्तों में लाभ मिलता था।"

लखनऊ पैक्ट के बाद मान्टेग्यू चैम्सफोर्ड सुधार के आधीन मुसलमानों ने निम्नलिखित अधिकार प्राप्त कर लिये—

(१) पृथक् प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त।

(२) प्रत्येक धारा सभा में मुसलमानों का निश्चित प्रतिनिधित्व,

(३) पंजाब और बंगाल को छोड़कर अन्य प्रान्तों में मुस्लिम आबादी के हिसाब से अधिक संख्या में प्रतिनिधित्व (Weightage) और इसके साथ-साथ पृथक् लोकमत का सिद्धान्त।

उपरोक्त बातें प्राप्त कर लेने के बाद मुसलमानों ने पंजाब और बंगाल में आबादी के अनुसार प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिये प्रयत्न आरम्भ कर दिये। उन्होंने लखनऊ पैक्ट की उपेक्षा करते हुए उस पर आक्षेप करने आरम्भ किये।

३० दिसम्बर १९२४ को मुस्लिम लीग कांफ्रेंस बम्बई के प्रधान मि० रजाअली ने अपने भाषण में कहा, "१९१६ के पैक्ट के विरुद्ध सबसे बड़ा आक्षेप यह है कि यह न्याय और आपसदारी के समस्त नियमों को काटता है, क्योंकि यह पंजाब और बंगाल के बहुसंख्यक सम्प्रदाय को उसका उचित अधिकार प्रदान नहीं करता।"

मि० रज़ाअली ने आगे चलकर कहा, "गम्भीरता से विचार करने पर विदित होगा कि १९१६ में पंजाब और बंगाल के मुसलमानों के साथ की गई गलती दूर करके और पैक्ट की अन्य बातों को पूर्णरूप से मानकर अन्य प्रान्तों में हिन्दू बहुसंख्यक जनता को कोई हानि न होगी।" इसके बाद चतुरता से हिन्दुओं को सान्त्वना देने के लिए कहा, "पंजाब और बंगाल में मुसलमानों को कुछ अधिक स्थान दिये जावेंगे, इससे हिन्दुओं को जो हानि होगी उसकी पूर्ति सिन्ध, सरहद व बलोचिस्तान के प्रान्तों में हिन्दुओं को उनकी आबादी से अधिक जगह देकर करदी जावेगी। मैं आशा करता हूं कि बहुत शीघ्र इन प्रान्तों में धारा सभाएं बन जाएंगी।"

मैं यह निवेदन कर दूं कि सिन्ध उस समय अलग प्रान्त नहीं था और न ही उस प्रान्त में अलग धारा सभा थी।

देहली मिलाप कान्फ्रेंस

२६ जनवरी १९२५ को देहली में मिलाप कान्फ्रेंस के अवसर पर मि० जिन्नाह ने अपने भाषण में कहा, "लखनऊ पैक्ट पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति की तरफ पहला आवश्यक पग बढ़ाने के लिए एक सुझाव रूप में तैयार किया था। यह स्थायी रूप से नहीं बनाया गया था। इसमें केवल अल्पसंख्यक वर्गों की रक्षा के लिये आवश्यक बुनियादी असूल को माना गया था।" इसी मिलाप कान्फ्रेन्स में श्री मालवीय जी ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "साम्प्रदायिक चुनाव और राष्ट्रीय शासन एक साथ नहीं हो सकते। लेकिन जब तक मुसलमान लखनऊ पैक्ट के अनुसार साम्प्रदायिक चुनाव से अपने आपको बाधित रखेंगे तब तक हिन्दू भी अपने वचन के सम्मान के लिये लखनऊ पैक्ट को मानते रहेंगे।"

इस मिलाप कान्फ्रेंस में हिन्दू-मुस्लिम समस्या को सुलझाने के लिये एक समझौता तैयार करने के लिये एक कमेटी बनाई गई। मौलाना मोहम्मद अली ने १९२३ में कोकनाडा कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर

साम्प्रदायिक चुनाव को बुरा ख्याल करते हुए भी कहा कि "मैं साफ तौर से कहना चाहता हूं कि मैं यह सम्भव नहीं समझता कि हम कुछ समय तक साम्प्रदायिक लोकमत की रीति को दूर कर सकते हैं।"

इण्डियन नेशनल पैक्ट में माना गया है कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों को प्रान्तिक व केन्द्रीय धारा सभाओं में पृथक्-पृथक् नुमाइन्दगी दी जावे।

बंगाल पैक्ट

बंगाल पैक्ट ने इस विषय में भी हिन्दुओं के प्रति अन्यायपूर्ण नीति को प्रयोग में लाते हुए यह आयोजना की कि "बहुसंख्यक सम्प्रदाय को ६० प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया जावे, चाहे उसकी आबादी ६० से कम हो और अल्पसंख्यक सम्प्रदाय को ४० प्रतिशत, अर्थात् बंगाल के ४५ प्रतिशत मुसलमानों को ६० प्रतिशत प्रतिनिधित्व का अधिकार दिया जावे और यू०पी० में १४ प्रतिशत मुसलमानों को ४० प्रतिशत का अधिकार दिया जावे।"

भारतवर्ष के कुछ विद्वानों ने एक बार यह आवाज़ उठाई थी कि "प्रत्येक सम्प्रदाय की नुमाइन्दगी की संख्या निश्चित करदी जावे और चुनाव सम्मिलित रायों से हो।" उसको मानने से मुसलमानों के अधिकारों में कोई बाधा न पड़ती, परन्तु यह भी इनको सहन न हुआ। लाहौर में २४ मई १९२४ को मुस्लिम लीग की मीटिंग में जोरदार शब्दों में इस विचार का विरोध किया गया और साम्प्रदायिक रीति से राय देने के ढंग को ही मुस्लिम झगड़ों को दूर करने का साधन बताया गया।

इसके बाद १९२६ में गोहाटी कांग्रेस में हिन्दू-मुस्लिम समस्या का पूर्णतया निपटारा करने के लिये कांग्रेस के प्रधान से यह प्रार्थना की गई कि भारत के अनेक स्थानों में जाकर विद्वानों के विचार मालूम किये जावें। अतएव उन्होंने भारतवर्ष का भ्रमण किया और स्थिति को जांचा।

यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपनी रिपोर्ट कांग्रेस कमेटी को दी होगी।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी १९२७

देहली में २१ मार्च १९२७ को कांग्रेस वर्किंग कमेटी की मीटिंग हुई। इस कमेटी के सम्मुख अपनी मांगों को रखने के लिए मुसलमानों ने २० मार्च १९२७ को देहली में एक सम्मेलन किया और निम्नलिखित मांगें निर्धारित की—

१. सिन्ध को बम्बई प्रान्त से अलग करके एक प्रान्त का रूप दिया जावे।

२. सीमा-प्रान्त को दूसरे प्रान्त की तरह नवीन शासन-विधान दिया जावे।

३. बंगाल और पंजाब में चुनाव आबादी के आधार पर हो।

४. केन्द्रीय धारा सभा में मुसलमानों की संख्या एक तिहाई हो।

मुसलमानों ने कहा कि उनकी उपरोक्त मांगों के स्वीकृत होने पर वे सम्मिलित राय देने की रीति को स्वीकार कर लेंगे।'' २१ मार्च १९२७ को कांग्रेस कमेटी ने इन मांगों को स्वीकार करते हुए यह प्रस्ताव पास किया, ''यह कमेटी मुस्लिम कान्फ्रेंस की ओर से सम्मिलित रूप से राय देने की स्वीकृति पाकर उन्हें हार्दिक बधाई देती है।'' इसी प्रस्ताव का समर्थन ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने बम्बई में १५ मई १९२७ को किया।

मुसलमानों ने ''सम्मिलित राय'' का टुकड़ा कांग्रेसी हिन्दुओं की मनोकामना को जानते हुए अपनी उपरोक्त मांगों को मनवाने के लिये फेंका और कांग्रेसी हिन्दुओं ने उनकी मांगों के भाव को न समझते हुए अपनी उदारता का परिचय हार्दिक धन्यवाद से दिया।

इन मांगों के सम्बन्ध में ''हिन्दुस्तान टाइम्स'' देहली ने भी ऐसा ही लिखा—''सम्मिलित चुनाव की स्थापना से सिन्ध की अलहदगी व बलोचिस्तान व सीमा प्रान्त में सुधार जारी करने का क्या सम्बन्ध है? मुसलमान यह सोचते हैं कि हिन्दुओं के कहने से सम्मिलित लोकमत को मान लेने से उनको इस स्वीकृति का मूल्य यह मिलना चाहिये कि सिंध बलोचिस्तान और सीमा प्रान्तों में जहां वह बहु-संख्या में हैं उन्हें विशेष अधिकार मिलें।''

हिन्दू महासभा, पटना के दसवें अधिवेशन में डॉ० मूञ्जे ने प्रधान पद के भाषण में मुस्लिम मनोवृत्ति का दिग्दर्शन कराते हुए कहा—

''जिस समय हिन्दुओं ने कहा कि स्वराज्य हिन्दू-मुस्लिम एकता के बिना नहीं हो सकता उसी समय वह एकता बाजार में बिकने वाली एक चीज होगई और इस पर अर्थशास्त्र के 'आमद' व 'खपत' के सम्पूर्ण नियम एकदम लागू हो गये।'' हिन्दुओं को चेतावनी देते हुए डाक्टर साहब ने कहा, ''हिन्दुओं को लखनऊ पैक्ट की चाहे वह

अच्छी भावना व नीयत से किया गया हो, गलतियों के कड़वे अनुभव से होशियार हो जाना चाहिये।''

नेहरू रिपोर्ट

इन दिनों हिन्दुस्तान के लिये नया शासन-विधान बनाने का विचार सर्वत्र उत्पन्न होने लगा। कांग्रेस ने भी भारतवर्ष के लिये शासन-विधान का एक ढांचा बनाने का निश्चय किया। इस कार्य के लिये कांग्रेस की ओर से एक कमेटी सन् १९२८ में बनाई गई। इसके प्रधान पं० मोतीलाल जी नियुक्त हुये। इस कमेटी की रिपोर्ट को ''नेहरू रिपोर्ट'' कहते हैं।

चुनाव के सम्बन्ध में अनेक सम्प्रदायों तथा सभाओं की मांगों का निरीक्षण करके इस कमेटी ने यह रिपोर्ट की।

(१) सारे भारत में चुनाव वाली सभाओं तथा प्रान्तीय धारा सभाओं के लिये सम्मिलित तथा मिश्रित नियोजक-गण होंगे।

(२) किसी प्रान्त में बहुसंख्यक सम्प्रदाय के लिये कौंसिलों में प्रतिनिधित्व नियत न होगा।

इस धारा को बनाते हुए इस रिपोर्ट ने युक्तियों के आधार पर यह निश्चय किया कि बंगाल और पंजाब में मुसलमान बहु-संख्या में हैं इस कारण मुसलमानों की यह मांग भी पूरी होगी कि पंजाब और बंगाल में उनको आबादी के अनुपात से प्रतिनिधित्व मिले। परन्तु हिन्दुओं की यह मांग कि अल्प संख्या में होने के कारण बंगाल और पंजाब में उनको विशेष अधिकार दिये जावें इस कमेटी की ओर से ठुकरा दी गई।

(३) मुसलमानों को उन प्रान्तों में जहां वह अल्पसंख्या में हैं आबादी के आधार पर स्थान मिलेंगे और हिन्दुओं के लिए यह नियम केवल सीमा प्रान्त में बरता जावेगा उसके साथ ही साथ इन प्रान्तों में अल्प-संख्यक सम्प्रदाय को अपने नियत अधिकारों के उपरान्त अन्य स्थानों के लिये खड़े होने का अधिकार होगा।

२८ अगस्त सन् १९२८ को एक सर्व दल सम्मेलन हुआ। उसमें नेहरू रिपोर्ट के अन्दर यह और जोड़ दिया गया, ''जब सिन्ध प्रान्त पृथक् हो जाये तो उस सूबे में अल्पसंख्यक सम्प्रदाय को अधिकार देने में उसी नीति का अवलम्बन होगा जो बंगाल व पंजाब के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में मुसलमानों के लिये बरती जाएगी।''

इसके साथ ही यह भी निश्चय किया गया कि जहां कुछ सीटों के सुरक्षित किये जाने की आज्ञा दी जायेगी वहां वह १० वर्ष के नियत समय के लिये होगी।

केन्द्रीय धारा सभा में मुसलमानों को उनकी आबादी के आधार पर प्रतिनिधित्व देकर यह और आयोजना कर दी कि वह अपने से अन्य स्थानों से भी खड़े हो सकते हैं।

उपरोक्त रिपोर्ट के अध्ययन करने से निम्नलिखित बातें दृष्टिगोचर होती हैं। (१) लखनऊ समझौते के आधीन कई प्रान्तों में मुसलमानों को आबादी से अधिक दिये गये अधिकारों को दूर कर दिया गया। (२) आबादी के आधार पर अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिये जगह नियत करके उनके अधिकारों को सुरक्षित कर दिया गया। (३) भद्र व सज्जन पुरुषों के लिये यह और अवसर दे दिया गया कि वे अपने सम्प्रदाय के नियत स्थानों के अतिरिक्त अन्य स्थानों के लिये भी खड़े हो सकते हैं।

इस रिपोर्ट के छपते ही मुसलमानों ने इसका विरोध आरम्भ कर दिया। मौलाना मोहम्मद अली ने कलकत्ते में २५ दिसम्बर सन् १९२८ के भाषण में कहा, "क्या यह सत्य नहीं है कि हिन्दू सम्प्रदाय बहुसंख्यक होने के कारण देश पर स्वयं शासन करना चाहता है ?" सर आगाखां के प्रधान पद में सब दलों के मुसलमानों की देहली में ३१ दिसम्बर सन् १९२८ को एक कांफ्रेंस हुई। इस अवसर पर मौलाना मोहम्मद अली जिन्नाह ने कहा—

"The Nehru report intended that although the universe may belong to God, and the country to the British, it was the Mahasabha who should rule."

अर्थ—"नेहरू रिपोर्ट की भावना यह है कि यद्यपि संसार परमात्मा का है और देश अंग्रेजों का, परन्तु शासन करेगी हिन्दू महासभा।"

इसी सम्मेलन में १ जनवरी १९२९ को नेहरू रिपोर्ट में वर्णित Dominion Status के ध्येय का विरोध करते हुये यह प्रस्ताव पास किया गया—

"भारतवर्ष की विशेष परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुये हमारी यह राय है कि इस देश के लिये फेडरल शासन प्रणाली सर्वोत्तम रहेगी।"

बाद में इन्हीं मुसलमानों ने १९३५ के शासन विधान में वर्णित फैडरेशन (संघ) का विरोध किया।

इनके पास किये हुए प्रस्तावों का कितना मूल्य है।

मुस्लिम लीग, बम्बई

११ अगस्त सन् १९२९ को बम्बई में सर सुलेमान के प्रधान पद में मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ। उसमें ३० मार्च के देहली के मुस्लिम लीग के अधिवेशन में निर्णय की गई १४ मई मांगों को दोहराया गया। इनमें से संख्या ३, ४, ५ व ६ मांगों का सम्बन्ध चुनावों से है।

मुस्लिम मांग संख्या ३—देश में तमाम धारा सभाएं व चुनाव की अन्य सभाएं इस नियम पर बनेंगी कि प्रत्येक प्रान्त में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व इस प्रकार से हो कि किसी प्रान्त में बहुसंख्यक सम्प्रदाय अल्पसंख्या में या समभाग में परिवर्तित न होने पावे।

मांग संख्या ४—केन्द्रीय धारा सभा में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व एक तिहाई से कम न हो।

मांग संख्या ५—चूंकि वर्तमान स्थिति में देश को भिन्न-भिन्न धारा सभाओं व अन्य चुनाव वाली सभाओं में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व साम्प्रदायिक रायों के आधार पर अनिवार्य है और चूंकि गवर्नमेंट ने मुसलमानों को इस अधिकार से वंचित न करने का वचन दिया हुआ है, इसलिये उनकी स्वीकृति के बिना यह अधिकार उनसे नहीं लिया जा सकता। जब तक मुसलमान संतुष्ट न हो जायें कि उनके अधिकार व लाभ उपरोक्त वर्णित आधार पर सुरक्षित हैं वह किसी भी शर्त पर बिना शर्त सम्मिलित लोकमत की रीति को स्वीकार नहीं करेंगे।

मांग संख्या ६—यदि किसी समय देश नये विभागों में विभक्त किया जाये तो बंगाल, पंजाब और सीमा प्रान्त में मुस्लिम सम्प्रदाय की बहुसंख्यक अवस्था पर कोई आघात न पहुंचेगा।

साइमन कमीशन

३ फरवरी १९२८ को अंग्रेजी सरकार की ओर से कुछ व्यक्ति भारतवर्ष के लिये शासन का नया ढांचा बनाने हेतु भारतवर्ष में आये। लार्ड साइमन इनके प्रधान थे इसलिये इस कमेटी को 'साइमन कमीशन' कहते हैं। भारतवासियों की भी एक समिति 'सेंट्रल कमेटी' के नाम से साइमन कमीशन के साथ काम करने के लिये बनाई गई। इस सेंट्रल

कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा—

१. सारे देश में यूरोपियनों को, मद्रास में ऐंग्लो इण्डियन व दलित जातियों को और बर्मा में हिन्दुस्तानियों को छोड़कर किसी वर्ग को साम्प्रदायिक चुनाव का अधिकार न होगा।

२. सम्मिलित चुनाव के विधान में लघुसंख्यक वर्गों को निश्चित प्रतिनिधित्व प्राप्त होने के अतिरिक्त यह अधिकार होगा कि वे अन्य स्थानों से भी खड़े हो सकें।

३. सम्मिलित चुनाव के विधान में लघुसंख्यक वर्गों को यह अधिकार होगा कि अपने प्रतिनिधित्व की संख्या निश्चित कराने के लिए चाहे वे अपनी जनगणना के आंकड़े को आधार बनालें अथवा अपने सम्प्रदाय के नियोजकगण (Electorate) की संख्या को अर्थात् इन दोनों में से जिसमें भी उन्हें लाभ दिखाई दे उस एक को वे आधार बना सकते हैं।

इस कमेटी के मुसलमान सदस्यों ने उपरोक्त बातों का विरोध किया। इस कारण एक प्रकार से यह रिपोर्ट भी हिन्दुओं की ओर से ही समझनी चाहिए। इनकी कृपा से एक नई बात यह उत्पन्न हुई कि लोगों को यह विदित हुआ कि किसी समुदाय की जनगणना के आंकड़ों में और नियोजक-गण (Electorate) की संख्या में भेद होता है। मुसलमानों ने अपनी संदेहजनक स्थिति को देखकर इस कमी को दूर कराने के लिए कार्य आरम्भ कर दिया। सन् १९३५ में केन्द्रीय धारा सभा में 'साम्प्रदायिक निर्णय' (Communal Award) के समर्थन का प्रस्ताव स्वीकार होने के बाद कांग्रेसी नेता बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने मिस्टर जिन्नाह से समझौते के लिये बातचीत की। यह बातचीत भी असफल रही। समाचार-पत्रों में वे मांगें प्रकाशित हुईं जो मुसलमानों की तरफ से रखी गई थीं। इनमें से एक मांग यह थी—

"Franchise to be so framed and adjusted as to reflect the proportion of the population of the various communities in the electoral rolls for the provinces and the centre and for that purpose differential franchise to be adopted whereever necessary."

अर्थात् "मताधिकार देने वाले नियमों की व्यवस्था इस प्रकार से की जावे जिससे विभिन्न प्रान्तों तथा केन्द्र के मतदाताओं की सूची वहां

के भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की जनसंख्या के पारस्परिक अनुपात को दर्शाने वाली हो। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जहां-जहां आवश्यक हो भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के लिये मताधिकार की शर्तों को पृथक् बनाया जावे।''

मुसलमानों की मांगों के सम्बन्ध में साइमन कमीशन ने अपना निम्न मत प्रकट किया था—

"It would be unfair that Muhammedans should retain the very considerable weightage they enjoy in the six provinces and that there should at the same time be imposed, in face of Hindu and Sikh opposition, a definite muslim majority in the Punjab and Bengal unalterable by any appeal to the electorate."

अर्थात् ''यह बहुत अनुचित होगा कि जिन ६ प्रान्तों में मुसलमान अपनी आबादी के अनुपात से बहुत अधिक प्रतिनिधित्व का उपभोग कर रहे हैं वह तो उन्हें मिला ही रहे और इसके साथ ही साथ हिन्दुओं व सिखों के विरोध के होते हुए भी पंजाब और बंगाल पर ऐसा निश्चित मुस्लिम बहुमत लाद दिया जावे जो नियोजकगण अथवा मतदाताओं को अपील करने से भी न बदल सके।''

परन्तु सरकार अंग्रेजी ने इस मत पर कोई ध्यान नहीं दिया।

साइमन कमीशन के सामने बयान देते हुए एक प्रश्न के उत्तर में सर मोहम्मद शफी ने कहा—''हिन्दुओं ने साम्प्रदायिक चुनाव का विरोध उस समय नहीं किया जब मिण्टो मौर्ले स्कीम के आधीन यह प्रचलित किया गया, प्रत्युत सन् १९१६ में लखनऊ में मुसलमानों को अलग चुनाव का अधिकार दिया गया। वास्तव में सन् १९२४ के अन्त में सबसे पहले चुनाव के विरुद्ध आन्दोलन खड़ा किया गया।''

यदि कांग्रेस मिण्टो मौर्ले स्कीम का विरोध करती और स्वयं १९१६ में इस विष वृक्ष को न बोती तो सर शफ़ी को कांग्रेस के साम्प्रदायिक चुनाव के वर्तमान विरोध पर इस प्रकार आक्षेप करने का साहस न होता। सर शफी ने यह न सोचा कि लखनऊ पैक्ट मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये हिन्दुओं ने अपने अधिकारों की बलि देकर भी बनाया था, फिर भी हिन्दू उससे पीछे नहीं हटे। यह मुस्लिम लीग की

स्वार्थपरता थी जिससे प्रेरित होकर मुसलमानों ने लखनऊ पैक्ट के विरुद्ध आवाज निकालकर साधारण हिन्दू जनता में बेचैनी उत्पन्न करदी।

साइमन कमीशन ने स्वयं माना है कि—

"We are faced as the authors of the Montague-Chelmsford Report were faced by the indisputable fact that the Muhammadan Community as a whole is not prepared to give up communal representation and would regard its abolition without the assent of that community, not only as the withdrawal of the security which it prizes, but as a concelling of assurances upon which it has relied."

अर्थात्—"जिस प्रकार की समस्या मांटेग्यू चैम्सफोर्ड रिपोर्ट तैयार करने वालों के सामने थी वैसी ही समस्या हमारे सामने है। वह यह कि समूचा मुसलमान सम्प्रदाय साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को छोड़ने को तैयार नहीं है और बिना उस सम्प्रदाय की स्वीकृति के साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को हटा देने का आशय न केवल उस जमानत को वापिस ले लेना समझते हैं बल्कि उसके साथ ही साथ उन वचनों को तोड़ना भी मानते हैं जिन पर वह इतना विश्वास करते रहे हैं।"

साइमन कमीशन, उसकी सेंट्रल कमेटी तथा नेहरू रिपोर्ट इस बारे में सहमत थे कि किसी प्रान्त में बहुसंख्यक समुदायों को निश्चित प्रतिनिधित्व न दिया जावे।

लाहौर कांग्रेस १९२९

कांग्रेस प्रत्येक मूल्य पर भी मुसलमानों को साथ रखना चाहती थी इसलिये मुसलमानों के विरोध का यह परिणाम हुआ कि कांग्रेस ने १९२९ के लाहौर अधिवेशन में नेहरू रिपोर्ट को रद्द कर दिया और एक प्रस्ताव द्वारा अपनी दब्बू नीति का प्रकाशन किया। प्रस्ताव निम्न-लिखित है—

"This Congress assures the Sikhs, the Muslims and other minorities that no solution there of in any constitution will be acceptable to the Congress that dose not give **full satisfaction** to the parties concerned."

अर्थ—"यह कांग्रेस सिक्खों मुसलमानों व अन्य अल्पसंख्यक सम्प्रदायों को विश्वास दिलाती है कि किसी आगामी विधान के अन्दर

इसका (साम्प्रदायिक समस्या का) कोई हल कांग्रेस को उस समय तक स्वीकार न होगा जब तक कि वह सब पार्टियों के लिये पूरा सन्तोषजनक न हो।''

यदि इसी तरह पर कार्य हो तो 'न नौ मन तेल हो न राधा नाचे' यदि अंग्रेज सरकार सब जातियों के समस्त मनुष्यों से रेल और नल के लिये आज्ञा मांगती तो कभी रेल और नल न लगे होते।

गोलमेज़ कान्फ्रेन्स लन्दन

इसके बाद लन्दन में गोलमेज कान्फ्रेंस का कार्य प्रारम्भ हुआ। हिन्दुस्तान से भी अनेक सज्जनों को सरकार ने बुलाया। कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी जी प्रतिनिधि बनकर गये। इस कान्फ्रेंस में भारतवर्ष के अनेक विचारशील पुरुषों व सभाओं ने अपनी मांगें तथा विचार लन्दन भेजे और सभाएं करके हिन्दुस्तान ने अपने विचारों को प्रकट किया।

डॉ० अन्सारी ने २७ जून सन् १९३१ को फरीदपुर में स्वतन्त्र विचार वाले मुसलमानों के जलसे में कहा—

''मुसलमानों की स्वतन्त्र विचार वाली पार्टी गत २० वर्ष के पृथक्-पृथक् राय देने की रीति के कड़वे अनुभव के पश्चात् और देश के राजनैतिक संगठन का ध्यान रखते हुए इस परिणाम पर पहुंची है कि भारतीय मुसलमानों का लाभ इसी में है कि भारत के आगामी राजनैतिक ढांचे में प्रतिनिधित्व सम्मिलित राय देने के आधार पर हो और प्रत्येक बालिग को राय देने का अधिकार हो।''

डॉ० महमूद ने २८ जुलाई सन् १९३१ को मेरठ में एक भाषण में हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों के अविश्वास भावों का खण्डन करते हुए कहा, ''हम हिन्दुओं से समानाधिकार ले सकते हैं, यदि हम पूर्णतया इस युद्ध में अपने आपको डाल लें।'' डॉ० महमूद ने इसी भाषण में कांग्रेसी हिन्दुओं की मनोवृत्ति के विषय में कहा—''कांग्रेस ने पृथक्-पृथक् राय देने की रीति की मांग को इसलिये स्वीकार नहीं किया क्योंकि हमने उसका विरोध किया।'' उनके निम्नलिखित अंग्रेजी के शब्दों से यह भाव विदित होता है।

"The Congress has not conceded the demands for separate electorates because we opposed it."

अगस्त सन् १९३२ को बंगाल कौंसिल ने आगामी शासन का विधान सम्मिलित राय देने की रीति पर निर्धारित किये जाने के लिये प्रस्ताव पास किया।

सर अली इमाम जैसे मुस्लिम नेताओं ने भी इसी पक्ष में अपनी सम्मतियां प्रकट कीं।

मैंने केवल मुसलमान सज्जनों की सम्मति ही लिखी है। क्योंकि हिन्दू तो प्रायः सभी सम्मिलित चुनाव व सम्मिलित लोकमत को रीति की ही चाल करना चाहते हैं। कुछ को छोड़कर प्राय सब ही मुसलमान साम्प्रदायिक राय देने की रीति को प्रचलित करना चाहते हैं। पाठकवृन्द यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि इन ही मुसलमानों की सभा मुस्लिम लीग के साथ कांग्रेस ने हर समय समझौता करने के लिए इसकी ओर जा-जाकर इसकी महत्ता को गवर्नमेंट की दृष्टि में तथा जनता की दृष्टि में बढ़ाकर न केवल भारतीय राजनैतिक वायुमण्डल में गड़बड़ पैदा करदी है बल्कि भिन्न विचार रखने वाले मुसलमानों की आवाज़ को भी कमजोर कर दिया है।

गोलमेज कान्फ्रेंस में महात्मा गांधी ने मुस्लिम लीग को ''ब्लैंक चैक'' अर्थात् कोरा कागज दिया, ताकि मुसलमान अपनी मनोवांछित शर्तें लिख लें—वे सब कांग्रेस को मंजूर होंगी। इसके बदले में केवल सम्मिलित राय देने की रीति को मुसलमान स्वीकार करलें। परन्तु मुसलमानों ने यह भी स्वीकार न किया और अन्त में प्रधानमन्त्री का दिया हुआ ''साम्प्रदायिक निर्णय'' आ गया।

(४)
साम्प्रदायिक निर्णय

साम्प्रदायिक निर्णय

गोलमेज कांफ्रेंस के अवसर पर हिन्दुस्तानी सदस्य साम्प्रदायिक उलझन को सुलझाने में असमर्थ रहे। इस असफलता पर हमें कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि मुसलमानों की मनोवृत्ति जैसी है उसके होते हुए इसके अतिरिक्त और क्या परिणाम निकल सकता था ? अंग्रेजी सरकार मुसलमानों को वह सब कुछ दे रही थी जिसको देने के लिये कांग्रेस केवल आशा ही दिला सकती थी। भारत को स्वतन्त्र कराने का भार मुसलमान अपने ऊपर रखते ही नहीं जो अंग्रेजी सरकार की ओर से प्रदान की हुई साधारण-सी बातों पर सन्तुष्ट न हों। लन्दन में क्या कुछ हुआ इस विवाद में पड़ना यहां असंगत है। हमारे लिये तो इतना जानना ही पर्याप्त है कि पारस्परिक समझौते के न होने पर इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री मि० मैकडोनल्ड ने १६ अगस्त १९३२ को 'कम्युनल अवार्ड' अर्थात् 'साम्प्रदायिक निर्णय' घोषित कर दिया।

इस निर्णय का सम्पूर्ण भारत में घोर विरोध हुआ। मि० एम० आर० जयकर ने कहा—

"यह अवार्ड भारत की राजनैतिक उन्नति में बाधक है, लखनऊ समझौते ने तो भारत को केवल हिन्दू और मुसलमानों में विभक्त किया था, परन्तु साम्प्रदायिक निर्णय भारतवर्ष में हिन्दू स्त्रियों तथा मुस्लिम स्त्रियों में, यूरोपियनों तथा एंगलो इण्डियनों में, गोरे ईसाई तथा काले ईसाइयों में, सवर्ण हिन्दुओं तथा दलित जातियों में और अन्ततः उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत में पारस्परिक भेद उत्पन्न कर देगा।"

कांग्रेसी नेता बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने कहा—

"यह सारा निर्णय सिरे से ही गलत है। यह इस तरह से बनाया गया है कि भारत में अनेक नए भेद खड़े कर दिये जावें ताकि बर्तानिया का आधिपत्य इस देश में बराबर बना रहे। इसका केवल मात्र ध्येय यह मालूम होता है कि एक सम्प्रदाय को दूसरे के विरुद्ध लड़ा दिया जाय। ताकि राजनैतिक मामले में एक सम्मिलित प्लेटफार्म बनना यदि असम्भव

नहीं तो कठिन अवश्य हो जाय।"

मौलाना अब्बुल कलाम आजाद ने लिखा—

"प्रधानमंत्री का दिया हुआ कम्युनल अवार्ड भारतवर्ष की राष्ट्रीयता के लिए सबसे अधिक खतरनाक चीज़ है।"

पूना पैक्ट

'साम्प्रदायिक निर्णय' में दलित जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या किसी प्रान्त में बहुत थोड़ी रखी गई थी और किसी में उनका सर्वथा अभाव था। 'पूना पैक्ट' से पूर्व प्रान्तीय धारा सभाओं में दलितों के प्रतिनिधियों की संख्या साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार इस प्रकार थी—

मद्रास,	बम्बई,	*बंगाल,	संयुक्त प्रान्त,	पंजाब,	बिहार,	मध्य प्रान्त,
१८	१०		१२	×	७	१०

आसाम,	सिन्ध,	सीमा प्रान्त,	योग
४	×	×	६१

*बंगाल के बारे में यह कहा गया था कि लगभग १० सभासद होंगे, परन्तु इसका निश्चय बाद में किया जावेगा।

यह संख्या बहुत थोड़ी और अनुचित थी। इसको ठीक करवाने के लिये श्री महात्मा गांधी जी ने पूना में व्रत किया जिसके परिणाम स्वरूप सर्व साधारण प्रतिनिधियों की संख्या में से कुछ सीटें निकालकर दलित जातियों को दिये जाने पर सरकार से समझौता हो गया। इसके अनुसार संख्या निम्न प्रकार निश्चित हुई—

मद्रास,	बम्बई,	पंजाब,	बिहार उड़ीसा,	मध्य प्रान्त,	आसाम
३०	१५	८	१८	२०	७

बंगाल,	संयुक्त प्रान्त,	योग
३०	२०	१४८

इसके बाद बिहार और उड़ीसा पृथक् कर दिये गए। उस समय बिहार के अन्दर १५ व उड़ीसा के अन्दर ७ जगह दलितों को दी गईं।

साम्प्रदायिक निर्णय में केन्द्रीय धारा सभा

'कम्युनल अवार्ड' में यह निर्णय नहीं किया गया था कि केन्द्रीय धारा सभा में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व क्या होगा। इसके लिये २४ दिसम्बर १९३२ को तीसरी गोलमेज कांफ्रेंस के अवसर पर वक्तव्य देते हुए भारतमन्त्री ने घोषणा करदी कि केन्द्र की धारा सभा में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व एक तिहाई होगा।

सरकार की ओर से मुसलमानों को आश्वासन

अंग्रेजी सरकार ने दलितों के बारे में महात्मा गांधी जी की बात मानकर जो थोड़ी-सी सहानुभूति दिखलाई इससे मुसलमानों को भय हुआ कि कहीं हिन्दुओं के आन्दोलन के कारण मुसलमानों के अधिकारों में भी कोई परिवर्तन न हो जाय। मुसलमानों के इस भय को शान्त करने के लिए भारत सरकार ने २ जुलाई १९३५ को घोषणा-पत्र निकाला जिसमें यह बतलाया गया कि भारतमन्त्री को यह अधिकार है कि एक्ट सन् १९३५ में परिवर्तन कर सकते हैं या कराने के लिये सुझाव पेश कर सकते हैं। परन्तु 'कम्युनल अवार्ड' के सम्बन्ध में यह स्थिति है कि—

"Within the range of Communal Award His Majesty's Government would not propose in the exercise of any power conferred by this clause, to recommend to Parliament any change unless such changes had been agreed to between the communities concerned."

अर्थ—"सम्राट् की सरकार उपरोक्त घोषणा में प्रदान किये हुए अधिकार को प्रयोग में लाते हुए 'साम्प्रदायिक निर्णय' के विषय में पार्लियामेंट के सामने किसी प्रकार की भी तबदीली कराने का प्रस्ताव पेश न करेगी। जब तक कि उस तबदीली को सम्बन्धित साम्प्रदायों ने पहले से स्वीकार न कर लिया हो।"

अगले पृष्ठों पर 'पूना पैक्ट' के बाद 'कम्युनल अवार्ड' के अनुसार धारा सभाओं में सभासदों की संख्या का विवरण दिया जाता है।

अगले विवरण पर दृष्टि डालने से विदित होगा कि अवार्ड में हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, यूरोपियन और एंगलो इण्डियन जातियों के अतिरिक्त व्यापार, दस्तकारी, मजदूर आदि विशेष दलों को भी प्रतिनिधित्व प्रदान हुआ है। यूरोपियनों को एक जाति के रूप में तो पृथक् प्रतिनिधित्व मिला ही है परन्तु इसके अतिरिक्त व्यापार, दस्तकारी आदि की सीटों में से भी उनके लिये अलग सीटें रक्खी गई हैं। उनकी सीटों को निकालकर व्यापार आदि की जो सीटें रह जाती हैं उनको हिन्दू-मुसलमानों को बराबर-बराबर विभक्त कर सकते हैं चूंकि हिन्दू और मुसलमान दोनों सभी प्रान्तों में व्यापार, उद्योग, मजदूरी आदि में समान रूप से लगे हुए हैं। इस प्रकार जो आंकड़े निकलेंगे उन्हें हिन्दू और मुसलमानों की उन सीटों की संख्या के साथ जोड़ दिया जावे जो उन्हें वर्गों के रूप में मिली हैं तो भिन्न-भिन्न प्रान्तीय धारा सभाओं में दोनों वर्गों के सभासदों की वास्तविक संख्या निकल आवेगी।

धारा सभाओं में

नाम प्रान्त	असेम्बली के सभासदों की कुल संख्या	जनरल			दलित	जनरल			जनरल दलित व सिखों का योग
		पुरुष	स्त्री	योग		पुरुष	स्त्री	योग	
मद्रास	२१५	११६	६	१२२	३०	०	०	०	१५२
बम्बई	१७५	९९	५	१०४	१५	०	०	०	११९
बंगाल	२५०	४८	२	५०	३०	०	०	०	८०
यू०पी०	२२८	१२०	४	१०४	२०	०	०	०	१४४
पंजाब	१७५	३४	१	३५	८	३१	१	३२	७५
बिहार	१५२	७१	३	७४	१५	०	०	०	८९
सी०पी०	११२	६४	३	६७	२०	०	०	०	८७
आसाम	१०८	४१	०	४१	७	०	०	०	४८
सरहद	५०	९	०	९	०	३	०	३	१२
सिन्ध	६०	१८	१	१९	०	०	०	०	१९
उड़ीसा	६०	४०	२	४२	७	०	०	०	४९

नोट—उपरोक्त नक्शे में जनरल सीट व विवरण पूना में

सभासदों का विवरण

मुसलमान			यूरोपियन	एंग्लो इंडियन पुरुष स्त्री	हिन्दुस्तानी ईसाई पुरुष स्त्री	तिजारत दस्तकारी	जागीरदार	यूनिवर्सिटी	मजदूर दल	पीछे रहा हुआ इलाका
पुरुष	स्त्री	योग								
२८	१	२९	३	२	९	६	६	१	६	१
२९	१	३०	३	२	३	७	२	१	७	१
११७	२	११९	११	४	२	१९	५	२	८	०
६४	२	६६	२	१	२	३	६	१	३	०
८४	२	८६	१	१	२	१	५	१	३	०
३९	१	४०	२	१	१	४	४	१	३	७
१४	०	१४	०	१	०	२	३	१	२	१
३४	०	३४	१	०	१	११	०	०	४	९
३६	०	३६	०	०	०	०	२	०	०	०
३३	१	३४	२	०	०	२	२	०	१	०
४	०	४	०	०	१	१२	२	०	१	२

दलितों के समबन्ध में किये गये परिवर्तन के अनुसार है।

कम्युनल अवार्ड में तिजारत व दस्तकारी को जो प्रतिनिधित्व मिला है उसका तथा उसमें यूरोपियनों की संख्या का जो अनुमान लगाया गया है उसको निकालकर हिन्दुस्तानियों की जो संख्या रह जाती है उसका विवरण निम्न प्रकार है।

तिजारत आदि के सभासदों की कुल संख्या

मद्रास	बम्बई	बंगाल	यू०पी०	पंजाब	बिहार	सी०पी०	आसाम	सरहद	सिन्ध	उड़ीसा
१९	१७	३४	१३	१०	१२	८	१५	२	५	४

यूरोपियनों की संख्या निकलकर शेष संख्या

मद्रास	बम्बई	बंगाल	यू०पी०	पंजाब	बिहार	सी०पी०	आसाम	सरहद	सिन्ध	उड़ीसा
१५	१३	२०	११	१०	१०	७	७	२	५	५

उपरोक्त शेष संख्या को हिन्दू और मुसलमानों में बराबर-बराबर बांट देना चाहिये। इन आंकड़ों को लेकर सब प्रान्तों का वर्णन न करते हुए मैं केवल चार ऐसे प्रान्तों को लेता हूं जिस में से मुस्लिम आबादी के लिहाज से दो बहुसंख्यक और दो अल्पसंख्यक हैं। इस विवरण से पाठक यह जान सकेंगे कि कम्युनल अवार्ड में मुसलमानों पर क्या कुछ कृपा की गई है।

सम्प्रदाय के आधार पर मुसलमानों की संख्या	पंजाब	बंगाल	यू०पी०	सी०पी०
	८६	११९	६६	१५
उपरोक्त नक्शे की आधी संख्या	५	१०	५	५
योग	९१	१२९	७१	१८
मुस्लिम आबादी प्रतिशत	५५	५४	१४	४
धारा सभाओं में सभासदों का प्रतिशत	५२	५१½	३०½	१६

पंजाब और बंगाल के मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों में मुसलमानों को प्रतिशत दो तीन स्थान कम दिये गये हैं, इसका विवरण हिन्दुओं को उनकी आबादी से अधिक जगह देना नहीं है बल्कि यूरोपियनों को और ईसाइयों को उनकी आबादी से अधिक नुमाइन्दगी देना है। हिन्दुओं के बहुसंख्यक प्रान्तों में हिन्दुओं को जिस तरह हानि पहुंचाई गई है उसका अनुमान पाठकगण यू०पी० और सी०पी० की धारा सभाओं से लगालें।

रांची सभा—

२ मई, १९३४ रांची (बिहार) में कांग्रेसी नेता एकत्रित हुए और यह प्रस्ताव पास किया—

''साम्प्रदायिक निर्णय में वर्णित प्रतिनिधित्व के ढंग व संख्या को स्वीकार करने या रद्ध करने के विषय पर उस समय विचार किया जावे जब विधान निर्माण समिति (Constituent Assembly) बन जाय।''

नोट—उस बात को अब बारहवां वर्ष बीत रहा है परन्तु अब तक यह ''विधान निर्माण समिति'' विचारों में ही स्थित है और यदि यह बनी तो इसके सामने नई ही बातें आवेंगी। पुरानी बातों को कौन उलट सकेगा।

इस प्रस्ताव ने समस्त देश में, विशेषतया हिन्दुओं में घोर आन्दोलन उत्पन्न किया। श्री मालवीय जी ने कांग्रेस से अपना त्याग-पत्र दे दिया। इन सब बातों से कांग्रेसी दल में बड़ी हलचल मची।

बम्बई सभा

कम्युनल अवार्ड पर पुनः विचार करने के लिये १७ जून, सन् ३४ को कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक बम्बई में हुई। उसमें यह प्रस्ताव पास किया गया—''कांग्रेस भारतीय राष्ट्र में सम्मिलित सब सम्प्रदायों का समान रूप से प्रतिनिधित्व करती है। और इसलिये सम्मतियों में मतभेद होने के कारण कांग्रेस कम्युनल अवार्ड का उस समय तक जब तक कि मतभेद है न स्वीकार कर सकती है न अस्वीकार कर सकती है।''

इसी प्रस्ताव के साथ यह भी पास हुआ कि—

"No solution that is not purely national can be propounded by the Congress. But the Congress is pledged to accept any solution falling short of the national which is agreed to by all the parties concerned and conversely, to

reject any solution which is not agreed to by any of the said parties."

अर्थ—"कांग्रेस कोई ऐसा विधान पेश नहीं कर सकती जो सर्वथा राष्ट्रीयता से पूर्ण न हो। परन्तु कांग्रेस ने इसके साथ ही यह भी शपथ ली हुई है कि यदि कोई ऐसा विधान न बन सका तो वह किसी भी ऐसे सुझाव को स्वीकार कर लेगी जो सब पार्टियों ने मिलकर स्वीकार किया हो। वह ऐसे सुझाव को स्वीकार न करेगी जो किसी भी पार्टी के द्वारा अस्वीकृत किया गया हो।"

परन्तु यदि किसी सुझाव एवं प्रस्ताव का हिन्दुओं की ओर से विरोध हुआ तो कांग्रेस ने उपरोक्त प्रस्ताव के अन्तिम भाग का पालन नहीं किया।

अधिक टीका टिप्पणी न करते हुये केवल एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा। कांग्रेस ने हिन्दुओं के विरोध के होते हुए भी सिन्ध को बम्बई प्रान्त से पृथक् कर दिया।

इस जगह यह निवेदन करना भी आवश्यक है कि वर्किंग कमेटी की बैठक से पूर्व डॉ० अन्सारी ने वीआना (यूरोप) से कमेटी के नाम तार भेजा कि रांची के फैसले में परिवर्तन न किया जावे। उस समय के समाचार-पत्रों में यह छपा था कि वर्किंग कमेटी रांची के फैसले में परिवर्तन करना चाहती थी, परन्तु डॉ० अन्सारी के तार ने उनको ऐसा न करने दिया।

कांग्रेस नेशनलिस्ट कांफ्रेंस

श्री मालवीय जी आदि ने कांग्रेस के इस व्यवहार को हिन्दुओं के अधिकारों पर आघात तथा राष्ट्रीय विरुद्ध समझकर उसका प्रतिरोध करने के लिए एक पृथक् पार्टी 'कांग्रेस नेशनलिस्ट' के नाम से बनाई। इस पार्टी की कांफ्रेंस १८ अगस्त सन् १९३४ को कलकत्ते में हुई। मालवीय जी ने भाषण देते हुए बतलाया कि रांची में उन्होंने यह पेश किया था कि यदि कांग्रेस कमेटी कम्युनल अवार्ड पर चुप रहने की नीति को छोड़ना नहीं चाहती तो कम से कम धारा सभाओं में कांग्रेस टिकट पर चुने जाने वाले सभासदों के लिये यह सुभीता दे दे कि या तो वे अपने-अपने हलके की आज्ञानुसार कम्युनल अवार्ड पर राय दे सकें

या वे अपनी ही सम्मति के अनुसार राय दे सकें। परन्तु यह भी कांग्रेस कमेटी ने स्वीकार न किया।

इण्डियन नेशनल कांग्रेस बम्बई

२७ अक्तूबर सन् १९३४ को बम्बई में इण्डियन नेशनल कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। डॉ० अन्सारी ने वर्किंग कमेटी बम्बई में प्रस्ताव को पेश करते हुए श्री पं० मालवीय जी आदि से अपील की कि वे कम्युनल अवार्ड की समस्या के निर्णय के निमित्त अपने कार्यक्रम पर दुबारा विचार करें और इसके साथ ही यह भी कहा कि कांग्रेस विदेशियों की सहायता को न लेकर ही साम्प्रदायिक समझौते का अन्तिम निर्णय करना चाहती है और यही देश भक्ति की सबसे अच्छी नीति है।

विदेशी शासन के प्रदान किये हुए जहरीले व राष्ट्रीयता के विरुद्ध कम्युनल अवार्ड को रद्द न करना कौन-सा न्याय और देशभक्ति की नीति है?

डॉ० अन्सारी द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव में श्री मालवीय जी ने एक संशोधन पेश किया जिसका आशय यह था कि कांग्रेस कम्युनल अवार्ड पर चुप रहने की नीति को छोड़कर इसके रद्द करने का प्रस्ताव पास करे। परन्तु कांग्रेस ने इस संशोधन को स्वीकार न किया और बम्बई वर्किंग कमेटी के प्रस्ताव को ही मान लिया।

केन्द्रीय धारा सभा में साम्प्रदायिक निर्णय

केन्द्रीय धारा सभा की 'कम्युनल अवार्ड' पर सम्मति लेने के लिये भारत सरकार ने इस विषय को सेंट्रल एसेम्बली में पेश किया। मि० भूलाभाई देसाई ने इस पर अपना जो प्रस्ताव रक्खा उसको दो भागों में विभक्त किया—पहले भाग में तो भारत शासन पद्धति के आगामी ढांचे की खराबी व न्यूनता को दिखलाते हुए ढांचे को अस्वीकार करना था। और दूसरे में यह था कि कम्युनल अवार्ड पर यह धारा सभा कोई सम्मति प्रकट न करे।

मि० जिन्नाह ने मि० भूलाभाई देसाई के प्रस्ताव के पहले भाग से सहमत होते हुए दूसरे भाग का विरोध किया और यह संशोधन पेश

किया कि "यह सेंट्रल धारा सभा कम्युनल अवार्ड के पक्ष में अपनी अनुकूल राय प्रकट करती है।" भाई परमानन्द आदि ने भी अपने संशोधन पेश किये कि यह धारा सभा कम्युनल अवार्ड को देश की राष्ट्रीयता व स्वतन्त्रता के लिए हानिकारक व बाधक समझती है।

कम्युनल अवार्ड पर मि० भूलाभाई देसाई के प्रस्ताव पर राय ली गई। परन्तु बहुसम्मति से यह प्रस्ताव गिर गया। जब मि० जिन्नाह के संशोधन पर राय ली गई तो मुसलमान तथा सरकारी मेम्बरों ने इसके पक्ष में और श्री भाई परमानन्द जैसे मेम्बरों ने इसके विरुद्ध राय दी तथा कांग्रेस मेम्बर चुप रहे। परिणाम स्वरूप मि० जिन्नाह का संशोधन १५ राय विरोध में और ६८ राय पक्ष में होने के कारण पास हो गया। अत एव भारतीय धारा सभा की ओर से पार्लियामेंट को यह सूचना दे दी गई कि भारत वर्ष कम्युनल अवार्ड के पक्ष में है और इसको स्वीकार करता है। इस आधार पर बर्तानिया गवर्नमेंट ने 'गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट, सन् ३५' के अन्दर कम्युनल अवार्ड को शामिल कर दिया।

साम्प्रदायिक निर्णय का परिणाम

इस निर्णय का परिणाम यह हुआ कि भारत में (१) साम्प्रदायिक राय देने की रीति स्थिर रही। (२) बहुसंख्यक मुस्लिम आबादी के प्रान्तों की धारा सभाओं में मुसलमानों को बहुमत प्रदान किया गया। (३) लघुसंख्यक प्रान्तों में मुसलमानों को उनके अधिकार से अधिक अधिकार दिये गये। इस भांति कांग्रेस के कम्युनल अवार्ड पर चुन रहने, मि० जिन्नाह को ब्लैंक चैक देने व हर समय इनके पीछे समझौते के लिये फिरने के कारण मुसलमानों ने अपनी इच्छा के अनुकूल चुनाव के विषय को हल कर लिया।

कांग्रेस के प्रसिद्ध नेता और एसेम्बली में कांग्रेस पार्टी के एक प्रकार के नेता मि० आसफ अली ने २३ मई १९३७ को मि० जिन्नाह के नाम एक पत्र में लिखा—

"In 10 out of 11 provinces the substance of your 14 points has been conceded and the percentage in services has been fixed. Is the Communal Award another bone of contention? The Congress is pledged to seek no alteration of it by invoking outside aid. When it is done, it must be

done by agreement among contending parties. The culture, language, script and religion of minorities are already guaranteed. What else is then."

"११ प्रान्तों में से दस के अन्दर आपकी १४ मांगों के तत्त्व को मान लिया है। नौकरियों में तनासुब भी निश्चित कर दिया गया है। क्या कम्युनल अवार्ड अब भी विवादास्पद विषय रह गया है? कांग्रेस ने किसी भी बाहरी सहायता से इसमें संशोधन न करने का वचन दिया हुआ है। यदि इसमें कोई परिवर्तन होगा तो वह आपस के समझौते से होगा। लघुसंख्यक सम्प्रदाय को उनके धर्म, भाषा, सभ्यता आदि की स्वतन्त्रता पहले ही प्रदान की हुई है फिर और रह ही क्या जाता है?"

डाक्टर सैयद महमूद बिहार के कांग्रेसी नेता ने १० अक्तूबर १९३७ को देहली में एक वक्तव्य देते हुए कहा—

"The Communal Award is there. No body has touched it and no body is going to touch it so long as the Muslims desire it. The Congress may not have accepted it in principle but it has practically accpted it in all its real effects and our community is quite free to reap the benefit of the Communal Award."

अर्थ—"कम्युनल अवार्ड मौजूद है किसी ने उसे अभी तक नहीं छुआ है और न ही कोई इसे उस समय तक छुयेगा जब तक कि मुसलमान इसे चाहते हैं। कांग्रेस ने नियमपूर्वक चाहे इसे नहीं माना है तो भी इसको वास्तविक रूप में मान लिया है, हमारी जाति इस कम्युनल अवार्ड के फल को भोगने में सर्वथा स्वतन्त्र है।"

फिर भी हिन्दुओं ने इसके विरुद्ध अपना आन्दोलन जारी रक्खा इस विरोध को शान्त करने के लिए मि० जिन्नाह ने क्या-क्या उपाय निकाले और कम्युनल अवार्ड के आधार पर निर्वाचित धारा सभाओं ने हिन्दुओं के साथ कितना अनुचित व अन्यायपूर्ण व्यवहार किया यह संक्षिप्त रूप से पाठकगण अगले पृष्ठों में पढ़ें।

(५)

सन् १९३५ का भारतीय शासन विधान

लखनऊ कांग्रेस १९३६ के अवसर पर

भारतवर्ष की शासन पद्धति का नया ढांचा १९३५ में प्रकाशित हुआ। कांग्रेस नेताओं ने अप्रैल सन् १९३६ के लखनऊ–अधिवेशन के अवसर पर इस नये शासन–विधान पर गम्भीर विचार और निरीक्षण करने के पश्चात् यह विचार प्रकट किये कि इसमें अनेक त्रुटियां और हानिकारक बातें देशहित के विरुद्ध हैं। और इन सब में साम्प्रदायिक निर्णय का विष सबसे अधिक दुःखदायक है। कांग्रेस की ओर से निश्चित सम्मति प्रकट करने के हेतु कार्यकारिणी समिति ने कांग्रेस के खुले अधिवेशन में पेश करने के लिये प्रस्ताव तैयार किया। जब वह प्रस्ताव जनता के सम्मुख उपस्थित हुआ, उस समय ज्ञात हुआ कि साम्प्रदायिक निर्णय का कोई वर्णन न था। कांग्रेसी सदस्य महाशय दिनेशचन्द्र चक्रवर्ती ने कम्युनल अवार्ड के सम्बन्ध में कुछ शब्द बढ़ाने के लिये संशोधन पेश किया। कार्यकारिणी सम्मति का प्रस्ताव तथा जिन शब्दों को बढ़ाने के लिये कहा गया, वे रेखांकित लिखित हैं।

"Where as the Govt. of India Act, 1935, which was based on the White Paper and the J.P.C. Report and *on anti-national, undemocratic separate communal electorate.* which is in many respects aven worse than the proposals contained in the White Report and the J.P.C. Report in no way represents the will of the nation and is designed to facilitate and perpetuate domination and exploitation of the peopel of India and *stereotype communal division* is imposed on the country. The Congress reiterates the rejection of the new constitution *including communal division* in its entirety."

नोट—जो शब्द दूसरे टाइप में लिखे गए हैं वह शब्द मि० दिनेशचन्द्र बढ़वाना चाहते थे।

अर्थात्—"गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट सन् १९३५ जो कि ह्वाइट पेपर और ज्वाइंट पार्लियामेंट्री रिपोर्ट और **प्रजातन्त्र सिद्धान्त व जातीयता शून्य साम्प्रदायिक चुनाव पर** निर्भर है और जो ह्वाइट पेपर तथा ज्वाइंट पार्लियामेंट के सुझाव से भी कई बातों में अधिक दोष युक्त है, किसी भी तरह जाति की इच्छाओं को प्रकट नहीं करता और देश के अन्दर जनता पर अपना प्रभुत्व व लूट मार करने की नीति को स्थिर करता है। **तथा देश के अन्दर भिन्न-भिन्न वर्ग उत्पन्न करता है।** कांग्रेस नये विधान को **साम्प्रदायिक निर्णय सहित** अस्वीकार करती है।"

पण्डित गोविन्द वल्लभ पन्त व सरदार पटेल ने इसका विरोध किया। सरदार पटेल ने विरोध करते हुए यहां तक कहा, "इस संशोधन को स्वीकार करने से साम्प्रदायिक स्थिति अधिक बिगड़ जाएगी। यदि वह अवार्ड का विरोध करना चाहते हैं तो उनको सरकार और मुसलमानों से युद्ध करने के लिये और इस वर्ष जो शान्ति स्थापित की है इसको नष्ट करने के लिये तैयार होना चाहिये।" अतएव संशोधन अस्वीकार हो गया।

क्या सरदार पटेल के उपरोक्त कथन का यह युक्तिसंगत अर्थ नहीं है कि यदि किसी समय अंग्रेजी सरकार मुसलमानों के मनोवांछित पाकिस्तान को स्वीकार करले या मौलाना अब्बुलकलाम आजाद के कथनानुसार मुसलमानों के हाथ में शासन सौंप दे तो भी कांग्रेस चुप रहेगी।

नई धारा सभाएं व कांग्रेस शासन

भारत सरकार ने नई शासन पद्धति को व्यवहार में लाने के लिये कम्युनल अवार्ड के आधार पर धारा सभाओं के लिये चुनाव की घोषणा की। कांग्रेस ने भी चुनाव संग्राम में भाग लिया। निम्नलिखित विवरण से मालूम होगा कि सन् १८८५ से लेकर अब तक मुसलमानों का अनुचित पक्ष करते हुए भी उन प्रान्तों में जहां कि हिन्दुओं ने खिलाफत आदि के लिये बहुत कुछ कार्य किया कांग्रेस के टिकट पर खड़े होने वाले तथा कांग्रेस की रीति पर अमल करने वाले मुसलमानों की संख्या कितनी है यह निम्न सूची से पता लगता है।

	मुसलमान		हिन्दू	
नाम प्रान्त	कुल संख्या	कांग्रेस के टिकट पर सफल	कुलसंख्या	कांग्रेस टिकट पर सफल
बंगाल	११७	×	७८	४९
पंजाब	८४	२	४२	१०
बम्बई	२९	×	११४	७९
यू०पी०	६६	×	१४४	१३०
मद्रास	२८	४	१४६	१३७
सी०पी०	१४	×	८४	६३
सिन्ध	३३	×	१८	११
बिहार	३९	५	९३	८७
सरहद	३६	१५	९	४

उपरोक्त विवरण से पाठक भली प्रकार यह देख लेंगे कि सीमा-प्रान्त को छोड़कर मुसलमानों की संख्या बहुत कम है या है ही नहीं। और हिन्दुओं की सीटों पर लगभग पूर्णतया कांग्रेस ने आधिपत्य जमा लिया है। यदि कांग्रेसी सभासद हिन्दू अधिकारों की रक्षा करते हुए राजनैतिक विषयों पर कांग्रेसी नीति के अनुसार कार्य करते तो कोई आक्षेप न था। लेकिन इसी संख्या के आधार पर सात प्रान्तों में शासन का भार सम्भाल कर अपनी न्याय परायणता तथा मुसलमानों के प्रति अपना भेदभाव व मित्रता दर्शाने के लिये जो कुछ हिन्दुओं के साथ व्यवहार किया वह बड़ा दुःखप्रद है। इसका वर्णन अगली पंक्तियों में होगा।

पीरपुरी कमेटी

१९३५ के शासन-विधानाकूल धारा सभाओं के चुनाव में मुस्लिम लीग ने भी अपने टिकट पर उम्मीदवार खड़े किये। परन्तु मुस्लिमलीग को इस क्षेत्र में काफी हार उठानी पड़ी। प्रथम तो उनके टिकट पर खड़े होने वालों की संख्या ही बहुत कम थी, और उनमें भी सफल होने वालों की संख्या तो सर्वथा शून्य के बराबर थी। इसका परिणाम यही होना था कि मुस्लिम लीग वालों को मन्त्रिमण्डल में कुछ भी अधिकार प्राप्त न हुए। परन्तु मुसलमानों को ११ प्रान्तों में ७१ मन्त्री पदों में से २६

मुसलमानों को ३५ हिन्दुओं को और १० अन्य वर्गों को मिले जैसा कि डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी पुस्तक में लिखा है। इस मानहानि की लज्जा को दूर करने तथा अपने अस्तित्व को पुनः स्थापित करने के निमित्त कांग्रेस को बदनाम करना प्रारम्भ किया। मुस्लिम लीगियों की मनोवृत्ति और उनके प्रयत्नों का भलीभांति दिग्दर्शन एक मुस्लिम लेखक मि० हुमायूं कबीर की पुस्तक, (Muslim Politics 1906-42) के पृष्ठ १३ पर लिखी पंक्तियों से होता है। पंक्तियां निम्नलिखित हैं।

"The League wanted to share in the power which congress had won, but after the League's discomfiture in the general elections and the re-actionary character it revealed, Congress refused to form coalition ministries with members of the League. This caused great resentment among Leagures and they took every possible step to discredit the Congress among moslems."

"कांग्रेसी प्रान्तों में मुसलमानों पर बड़े भीषण अत्याचार किये गये हैं" मुसलमानों ने इस कल्पित आक्षेप को सिद्ध करने के लिये एक जांच कमेटी बनाई। यह कमेटी 'पीरपुरी कमेटी' कहलाती है क्योंकि इस कमेटी के प्रधान राजा पीरपुर थे। इस पीरपुरी कमेटी ने कांग्रेसी मन्त्रियों के विरुद्ध अनेक आक्षेप लगाये। उक्त मि० हुमायूं कबीर के शब्दों में वह चार भागों में विभक्त किये गये हैं।

1. Interference with religious rights.
2. Tampering with cultural traditions.
3. Attempts to curtail share in services and representation.
4. Social snobbery.

इन दोषों को लगाने में मुसलमानों की मनोवृत्ति का उल्लेख उपरोक्त लेखक ने निम्नलिखित शब्दों में किया है।

"On the side of the Moslem League, there has been a tendency to exaggerate the least slight & give a communal turn to incidents which were originally quite neutral."

अर्थ—मुस्लिम लीग की मनोवृत्ति यह है कि साधारण-सी बात को बढ़ा दिया जावे और उनको साम्प्रदायिक रंगत दे दी जावे।

कांग्रेसी मन्त्रियों ने मुसलमानों के आक्षेपों की उत्पत्ति न होने देने के लिये अनुचित सीमा तक प्रयास किया। यह उन लेखों से विदित होता

है जो उन्होंने मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये प्रकाशित किये हैं। उदाहरणार्थ यू०पी० की कांग्रेसी सरकार की ओर से जो ट्रैक्ट निकाले गये उनके अवलोकन से पाठक स्वयं देख सकते हैं।

यू०पी० सरकार के ट्रैक्ट

पं० गोविन्द वल्लभ पन्त प्रधानमन्त्री की सरकार ने कुछ ट्रैक्ट निकाले जिनमें वे कार्य गिनाये गये जो कांग्रेसी सरकार की ओर से मुसलमानों के पक्ष में किये गये। इस स्थान पर यह भी कह देना आवश्यक है कि ये ट्रैक्ट केवल मुसलमानों में ही वितरण करने के लिये निकाले गये। पूर्ण ट्रैक्ट तो स्थानाभाव के कारण नहीं दर्ज किये जा सकते, किन्तु उनमें से कुछ बातें तो लिख देना ही इस पुस्तक के लिये पर्याप्त होगा।

'हिन्दुओं पर लगाई गई पाबन्दियों' के शीर्षक के आधीन जिन बातों का वर्णन किया है, उनमें से कुछेक ये हैं। "कांग्रेसी शासन के अहद में मुसलमानों पर किसी जगह कोई नई पाबन्दी नहीं लगाई गई, प्रत्युत बाज़ मौकों पर जो पाबन्दियां पहले से लागू थीं वे भी हटा दी गईं। सिवाय इसके कई मुकामात ऐसे जरूर मिलेंगे जहां मौजूदा हुकूमत ने हिन्दुओं को मन्दिरों में पूजा या आरती करने या शंख बजाने से रोक दिया है और इनके जलूस पर कई किस्म की पाबंदी लगा दी है। मसलन (१) बाराबंकी में मोहर्रम के दौरान में हुक्काम ने कई जगह शंख बजाना और कथा पढ़ाना और होली में खुद हिन्दुओं पर रंग डालना ममनू करार दे दिया। (२) जहांगीरबाद में एक मन्दिर कई रोज के लिये बन्द करा दिया गया। (३) बांदा में मुहर्रम के दौरान में बगैर कप्तान पुलिस की खास इजाजत के हिन्दुओं को शादी के जलूस निकालने की इजाजत नहीं दी गई। (४) सीतापुर में मुहर्रम के दौरान में हिन्दुओं के जलसे रोक दिये गये और इन्हें शंख या घड़ियाल या बाजा नहीं बजाने दिया गया। (५) अलीगंज जिला एटा के हिन्दुओं को ७ मुहर्रम से १० मुहर्रम तक किसी किस्म का जलूस निकालने से रोक दिया गया। (६) आंवला जिला बरेली में हिन्दुओं पर कई पाबन्दियां आयद की गई जिनमें एक यह थी कि हिन्दू औरतें शादी के मौके पर ढोल नहीं बजा सकतीं। इन अहकाम की ४५ हिन्दुओं ने खिलाफ़वर्जी की, मगर हकूमत ने बगैर किसी पसोपेश के इनको गिरफ्तार करके सजाएं दीं।

(७) इसी तरह सारन में सिक्खों को जलूस निकालने की इजाजत नहीं दी गयी। (८) और फर्रुखाबाद में ताजियों की खातिर बिजली के तार कटवा दिये गये।

यू०पी० हकूमत ने मुसलमानों को जो सरकारी नौकरियां दीं उनकी संख्या का ब्यौरा ट्रैक्ट के निम्नलिखित शब्दों से मालूम होता है।

"अगरचे मुसलमानों की आबादी इस सूबा में १४ फीसदी है और हिन्दुओं की ८५ फीसदी, मगर कांग्रेस हकूमत ने अपने ऐहद में जितनी नौकरियां दीं, उन सब में मुसलमानों को उनकी आबादी के तनासुब से कुछ ही ज्यादह नहीं बल्कि कहीं ज्यादह नुमाइन्दगी दी है। हत्ता की बाज़ जगहों पर तो मुसलमान ५० फीसदी से भी जायद रखे गये हैं।"

न्याय के मुकाबले में मुसलमानों के प्रति यू०पी० हकूमत की दब्बू नीति

(१) डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की कार पर एक बार हमला हुआ, इस सम्बन्ध में एक आदमी पकड़ा गया, मगर सेक्रेटरी मुस्लिमलीग की दर्ख्वास्त पर बगैर किसी कार्रवाई के इस आदमी को छोड़ दिया गया।

(२) अक्सर मुसलमान मुकर्रीन (व्याख्याता) जलसों में इन्तहाई इश्तआल-अंगेज (भड़काने वाली) तकरीरें (व्याख्यान) करते रहते हैं, जिनमें हिन्दुओं, कांग्रेसी हकूमत और बुज़रा की ज़ात पर नाजेबा (अनुचित) और बेजा हमले होते हैं और अवाम को तशदुद पर उभारा जाता है। मगर हकूमत ने आज तक तकरीरों की बिना पर किसी को गिरफ्तार नहीं किया। इसके बरखिलाफ एक हिन्दू कांग्रेसी कारकुन बाबू केदारनाथ पर जिन्होंने गोरखपुर में मुसलमानों के खिलाफ एक तकरीर की थी हकूमत की हस्ब हिदायत जेर दफा १५३ (अलफ) मुकदमा चलाया गया और उन्हें १ साल कैद की सख्त सजा हुई।"

(३) "किसी अखबार के खिलाफ फिरकेदाराना मुनाफरत (साम्प्रदायिक द्वेष) फैलाने के जुर्म में कोई कार्रवाही नहीं की गई। अलबत्ता दूसरी तरफ हिन्दुओं के दो पैम्पलेट और हिन्दू अखबार की एक इशआत को जेर दफा ९९ जाब्ता फौजदारी इस जुर्म में जब्त शुदा करार दिया गया कि उनके मज़ामीन से मुसलमानों की दिलआजारी होती थी।"

यही नहीं बल्कि पं० गोविन्द वल्लभ पन्त की हकूमत ने दूसरे प्रान्तों में भी मुसलमानों का पक्ष लेने का डंका बजाया।

''मौजूदा हकूमत न सिर्फ खुद ही मुसलमानों के जजबात मजहबी का एहतराम करती है, बल्कि अगर हमारे सूबा के मुसलमानों को किसी दूसरी हकूमत से किसी मजहबी बिना पर कुछ गलतफहमी या शिकायत पैदा हो जाती है तो कांग्रेस हकूमत इस सूबा के मुसलमानों की नुमाइन्दगी करती हुई दूसरे सूबों की हकूमत की भी इस तरफ तवज्जह दिलाती है।''

उपरोक्त उदाहरणों से पाठकगण जान लेंगे, हिन्दू टिकट पर जाने वाले सज्जनों ने हिन्दुओं के साथ कैसा व्यवहार किया है और किस प्रकार मुसलमानों को नई से नई मांगों को उपस्थित करने के लिये उत्साहित किया, जिसके कारण हिन्दू-मुस्लिम समझौता असम्भव हो गया। उपरोक्त व्यवहार हिन्दू प्रान्त के कांग्रेसी हिन्दू प्रधानमन्त्री का है तो दूसरी तरफ बंगाल के मुस्लिम प्रधानमन्त्री के विचार भी देखिये।

सन् १९३८ में मुस्लिम लीग कलकत्ता के अधिवेशन में मि० फजल-उल-हक ने अपने भाषण में कहा—''मुस्लिम लीग अभी तक ठीक तौर पर संगठित नहीं हुई है। तो भी सैकड़ों नेशनल कांग्रेसों से अधिक मूल्यवान है। हम जबानी बातचीत करने वाले नहीं बल्कि लीग का प्रत्येक सभासद शेरे बबर है।''

फिर लखनऊ मुस्लिम लीग के अवसर पर इन्होंने कहा—

''यदि लखनऊ मिल जाएं और एक साथ काम करें तो यह बहुत सम्भव है कि हम इस देश पर फिर राज्य करें। और यदि उन प्रान्तों के अधिकारी जहां मुसलमान लघु संख्या में हैं, मुसलमानों पर जुल्म करेंगे तो मैं अपने सूबे में इसका बदला लूंगा।''

धर्म न्याय और प्रेम का कितना घृणित आदर्श मि० फजलुल हक ने पेश किया यह पाठक स्वयम् जान लें।

कांग्रेसी मंत्रिमण्डल का त्यागपत्र

यूरोप में युद्ध आरम्भ होने के कारण भारतीय सरकार और कांग्रेस में युद्ध के लिये सहायता देने के विषय पर बातचीत होने लगी। चूंकि कांग्रेस वायसराय महोदय के विचारों से सहमत न हो सकी इसलिये

कांग्रेस के निश्चयानुसार कांग्रेसी मन्त्रियों ने त्यागपत्र देकर हकूमत के भार को उतार दिया।

छुटकारा दिवस

मि० जिन्नाह ने यह घोषणा की कि सारे हिन्दुस्तान में एक दिन सारे मुसलमान मिलकर कांग्रेसी मन्त्रियों से पिंड छूटने की खुशी मनाएं। इस दिन का नाम इन्होंने 'Day of Deliverance' अर्थात् छुटकारे का दिन रखा।

मौलाना हबीब-उल-रहमान प्रधान मजलिस अहरार हिन्द ने जालन्धर में ८ दिसम्बर १९३९ को अपने भाषण में कहा, "मुल्क के राजनैतिक क्षेत्र में आरजी तब्दीली पर मुसलमानों को खुशी मनाने के लिये मि० जिन्नाह का आदेश इस्लाम के सुन्दर नाम पर एक बदनुमा धब्बा है, ...प्रजातन्त्र सिद्धान्त के विरुद्ध है और इतना अपमानजनक है कि आत्म-सम्मान का भाव रखने वाला भी मुसलमान इसको सहन नहीं कर सकता।" बंगाल के प्रोफसर हुमायूं कबीर एम.एल.सी. ने एक बार कहा, "मि० जिन्नाह की इस घोषणा ने उनके इस कथन को कि वह मुसलमानों का वाहिद व असली नेता है बिल्कुल गलत साबित कर दिया है।" हिन्दुस्तान में अनेक स्थानों पर मुसलमानों ने यह दिन मनाया।

पूना के प्रसिद्ध अंग्रेजी समाचार-पत्र 'मरहटा' ने यह आयोजना की कि "कांग्रेस मुस्लिमलीग के 'छुटकारा दिवस' का प्रतिरोध करने के लिये (Day of Rectification) अर्थात् 'दुरुस्ती दिवस' मनाये।" और अपनी उचित सम्मति का ऐलान कर दे और लीग से समस्त पत्र-व्यवहार बन्द करके मुसलमानों को यह अन्तिम सन्देश सुनादें कि "यदि आप आओ आपके साथ, यदि आप न आओ तो आपके बगैर, और यदि आप विरोध करो तो आपके विरोध के बावजूद हम भारतवर्ष को अपनी शक्तिनुसार स्वतन्त्र कराने का युद्ध जारी रक्खेंगे।"

(६)

सिंध व सरहद प्रान्त

सिन्ध प्रान्त

सिन्ध का वर्तमान प्रान्त सन् १९३६ में नये शासन विधान सन् १९३५ के अनुसार बम्बई से पृथक् कर दिया गया। सिन्ध का पृथक् किया जाना मुस्लिम लीग की सन् १९२९ वाली १४ मांगों में से एक मांग थी। बम्बई से पृथक् किये जाने पर सिन्ध के प्रान्त में मुसलमान जनता की संख्या हिन्दुओं से अधिक होती थी। इसलिये मुसलमानों ने गाय, बाजा व धारा सभाओं में अपना आधिपत्य जमाने के लिए जो आन्दोलन किया उसी आन्दोलन की एक शाखा सिन्ध को पृथक् करवाकर मुसलमानों के बहुसंख्यक प्रान्तों की संख्या बढ़ाना था और सीमा प्रान्त को अन्य प्रान्तों की भांति पूरा प्रान्त बनवाना भी इसी उद्देश्य के आधीन था। मुसलमानों की इन मांगों से पूर्व भारतवर्ष के वायुमण्डल में यह विचार नहीं था कि बहुसंख्यक और लघुसंख्यक प्रान्त क्या होते हैं। परन्तु अब यह एक बड़ी जटिल समस्या बन गई है।

कांग्रेस वर्किंग कमेटी देहली सन् २७

गोहाटी कांग्रेस सन् १९२६ के एक प्रस्ताव के आधार पर कांग्रेस वर्किंग कमेटी का अधिवेशन २१ मार्च सन् १९२७ को देहली में हुआ ताकि साम्प्रदायिक झगड़ों को मिटाने के लिये कोई मार्ग निकाला जावे।

इस कमेटी के सन्मुख मुसलमानों की मांगें रखने के लिये २० मार्च १९२७ को देहली में मुसलमान नेताओं का एक सम्मेलन हुआ।

उन्होंने चुनाव आदि विषयों के अतिरिक्त यह निश्चय किया कि—

१. सिन्ध को बम्बई प्रान्त से पृथक् करके एक नया प्रान्त बना दिया जावे।
२. सीमा प्रान्त व ब्रिटिश बलोचिस्तान को दूसरे प्रान्तों की तरह धारा सभा वाला प्रान्त बना दिया जावे।

उपरोक्त कांग्रेस कमेटी ने इन मांगों पर विचार करके यह निर्धारित किया कि :-

१. सिन्ध को बम्बई प्रान्त से अलग करने और एक पृथक् प्रान्त बनाने की मांग ऐसी है जिसको कांग्रेस के विधान में भाषा के आधार पर प्रान्तों को नए सिरे से विभक्त करने के नियम पर स्वीकार किया हुआ है। इसलिये कमेटी की यह सम्मति है कि इस मांग को कार्य रूप में लाया जावे।

२. मुसलमानों की यह मांग, कि सीमा प्रान्त व ब्रिटिश बिलोचिस्तान में अन्य प्रान्तों की भांति सुधार जारी किया जावे, इस कमेटी की सम्मति में उचित और युक्तियुक्त है।

मुसलमानों की मांगों से और कांग्रेस कमेटी के प्रस्तावों से समस्त देश में हलचल मची, अनेक सभाओं में घोर विरोध किया गया, परन्तु मुसलमानों की अप्रसन्नता के भय से कांग्रेस ने अपने विचारों में कोई परिवर्तन नहीं किया।

ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी बम्बई

ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन बम्बई में १५ मई १९२७ को हुआ। वर्किंग कमेटी देहली के प्रस्ताव पेश हुए। पं० मोतीलाल जी ने कमेटी की ओर से प्रस्ताव उपस्थित किया—

"आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर वर्किंग कमेटी की रिपोर्ट और उसमें की गई सिफारिशों को स्वीकार करती है। और कांग्रेसी संस्थाओं को आदेश देती है कि वह इन सिफारिशों को कार्यरूप में परिणत करने के लिये आवश्यक कदम उठायें।"

इस प्रस्ताव पर भाषण देते हुए पंडित जी ने सिन्ध के विषय पर कहा—

"सिन्ध को पृथक किये जाने के विषय पर दोनों तरफ घोर मतभेद है। यह प्रश्न किया जाता है कि यदि सिन्ध को पृथक् किया जाना इसलिये आवश्यक हुआ है कि कांग्रेस ने भाषा के आधार पर प्रान्तों का निर्माण किया जाना स्वीकार किया हुआ है तो दूसरे प्रान्तों में इस तजबीज को लागू क्यों नहीं किया जाता। तो इसका उत्तर यह है कि कांग्रेस भारतवर्ष के **सम्पूर्ण विधान पर विचार नहीं कर रही**

है। किन्तु केवल उस भाग पर विचार कर रही है जिसका प्रभाव हिन्दू मुस्लिम एकता पर पड़ता है।''

पंडित जी के उपरोक्त शब्दों से यह भाव आवश्यक निकलता है कि कांग्रेस में यदि किसी बात का फैसला कराना हो तो फिसाद करना आवश्यक है। परन्तु मागें मुसलमानों की ओर से ही आती हैं हिन्दुओं की ओर से नहीं। यदि अम्बाला डिवीजन व मेरठ डिवीजन के हिन्दू अपना एक प्रान्त बनाने का प्रयत्न करें, तो कांग्रेस यही निश्चय करेगी कि चूंकि समस्त मुसलमान विशेषकर पंजाब के मुसलमान इसके विरुद्ध हैं इसलिये हिन्दुओं की यह मांग पूर्ण नहीं की जा सकती।

ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी में उपस्थित किये गये सिन्ध के प्रस्ताव पर मि० जयकर ने निम्नलिखित संशोधन पेश किया।

''सिन्ध के पृथक् किये जाने पर उस समय विचार किया जाय जबकि भाषा के आधार पर तमाम देश को विभक्त करना हो।''

इस संशोधन के विरुद्ध मि० गोस्वामी ने कहा—''यह सम्पूर्ण प्रस्ताव नहीं है, किन्तु मुस्लिम मांगों के कारण पेश किया गया है।''

वर्किंग कमेटी का प्रस्ताव सिन्ध को पृथक् किये जाने के बारे में ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने स्वीकार कर लिया।

नेहरू रिपोर्ट

नेहरू रिपोर्ट में सिन्ध के विषय पर लिखा है कि ''सिन्ध को पृथक् किये जाने के लिये मुसलमानों की मांग उचित ढंग से पेश नहीं की गई। यह साम्प्रदायिक भाव पर निर्धारित है और कई एक ऐसे विषयों के साथ बांधी गई है जिनका इससे कोई सम्बन्ध नहीं।''

उपरोक्त शब्द लिखते हुए भी नेहरू रिपोर्ट में यह निश्चय हुआ कि—

''सिन्ध बम्बई से पृथक् कर दिया जावे और एक पृथक् प्रान्त में निर्णय हो जावे परन्तु ऐसा करने से पूर्व उसकी आर्थिक स्थिति की जांच करा ली जावे जितनी आवश्यक समझी जावे।''

इसके साथ ही यह निश्चय किया—

''सीमा प्रान्त में भी उसी प्रकार का शासन विधान होगा जैसा दूसरे प्रान्तों में।''

सर्वदल सम्मेलन लखनऊ व कलकत्ता

नेहरू रिपोर्ट के प्रकाशित होने के पश्चात् लखनऊ में २८ अगस्त १९२८ को एक सर्वदल सम्मेलन हुआ जिसमें नेहरू रिपोर्ट की सिफारिशों में थोड़ी बहुत घटत-बढ़त करके सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया—

"नेहरू रिपोर्ट के अनुसार शासन विधान के प्रचलित होने के साथ ही साथ सिन्ध, बम्बई प्रान्त से पृथक् करके एक पृथक् प्रान्त उस अवस्था में बना दिया जावेगा जबकि—

१. जांच के पश्चात् यह निश्चित हो जाये कि सिन्ध अपना खर्च स्वयं उठा सकता है।
२. सिन्ध में शासन विधान की रूपरेखा वही होगी जैसी कि दूसरे प्रान्तों में और चुनाव भी उसी प्रकार होगा जैसे अन्य प्रान्तों में।"

खर्चों की शर्त ऐसी थी जिसको मुसलमान लगवाना नहीं चाहते थे। इसलिये २२ दिसम्बर १९२८ को कलकत्ते में फिर मीटिंग हुई लखनऊ कांफ्रेंस के प्रस्ताव पर विचार किया गया। हिन्दू सभा की ओर से इस पर पुनः विचार करने के विरुद्ध इस आधार पर आवाज़ उठाई गई कि लखनऊ में सर्वसम्मति से सिन्ध का प्रस्ताव पास हुआ है। मि० जिन्नाह ने लखनऊ कांफ्रेंस के प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा—

"इस प्रस्ताव का यह आशय है कि यदि नेहरू रिपोर्ट के अनुकूल शासन विधान प्रयोग में आने से पहले अंग्रेजी सरकार सिन्ध को पृथक् प्रान्त बनाना चाहे तो मुसलमान यह कहें कि, हम नहीं चाहते।"

मि० जिन्नाह ने कहा कि "ऐसा नहीं हो सकता और लखनऊ कांफ्रेंस के प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने वाले मुसलमानों पर आक्षेप किया और कहा—

"There may have been certain persons at Lucknow who were present at that conference or may have signed it either in a personal character or representative character. The Muslim League was not reoresented. Are we bound in this convention, because a particular resolution was passed by an agreement between certain persons."

अर्थ—"लखनऊ कांफ्रेंस में कुछ सज्जन ऐसे होंगे जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से या किसी सभा के प्रतिनिधि रूप में हस्ताक्षर किये होंगे, परन्तु

मुस्लिम लीग उस जगह उपस्थित नहीं थी। क्या हम इस समझौते से केवल इस आधार पर बाधित हैं कि कुछ मनुष्यों के हस्ताक्षर से एक प्रस्ताव पास हुआ है।''

डॉ० आलम ने जो किसी समय पंजाब में कांग्रेस के महारथी समझे जाते थे, मि० जिन्नाह का समर्थन किया। मि० जिन्नाह के शब्दों से यह भाव निकलता है कि किसी पार्टी या सज्जन से किया हुआ समझौता कोई कीमत नहीं रखता क्योंकि मि० जिन्नाह की युक्ति के आधार पर कोई अन्य पार्टी या सज्जन खड़ा होकर पहले किये हुये समझौतों को तोड़ सकता है। क्या मि० जिन्नाह बतला सकते हैं कि उनके साथ किये हुए निश्चय की स्थिरता किस आधार पर है?

साइमन कमेटी

भारतवर्ष में साइमन कमीशन आया। इसी के साथ भारतवासियों की एक समिति 'सैंट्रल कमेटी' के नाम से कार्य कर रही थी। इस कमेटी ने भी यह निश्चय किया कि—

१. सिन्ध, बम्बई से पृथक् कर दिया जावे और
२. सीमा प्रान्त में मिंटो-मार्ले विधान अनुसार शासन प्रचलित किया जावे।

इसका परिणाम यह हुआ कि १ अप्रैल १९३६ को सिन्ध, बम्बई से पृथक् कर दिया गया। अंग्रेजी सरकार इस प्रान्त का इतना ध्यान रखती है कि इस प्रान्त को इस योग्य बनाने के लिये कि वह अपना खर्च सुगमता से चला सके प्रति वर्ष १॥ करोड़ रुपया केन्द्रीय सरकार अपने अपने कोष से प्रदान करती है।

सीमा प्रान्त

लार्ड कर्जन

लार्ड कर्जन वायसराय के समय में पंजाब के ५ जिले हजारा, पेशावर, कोहाट, बन्नू और डेरा इस्माइलखां पंजाब से पृथक् करके सीमा प्रान्त के नाम से एक फौजी हुकूमत के आधीन कर दिये गये थे। भारत सरकार ने उस आदेश में प्रबन्ध के सुभीते के लिये कुछ परिवर्तन करने का विचार किया। उन्होंने सन् १९२३ में एक कमेटी नियुक्त की जिसके प्रधान Sir Dennies Bray बनाये गये। इसीलिये इस कमेटी को Bray Committee कहते हैं।

ब्रे कमेटी

इस कमेटी ने यह विचार करना था—

(१) सीमा प्रान्त के जिलों का सीमा पर बसने वाली जातियों से शासन सम्बन्धी मेल जोल कैसा हो और,

(२) सीमा प्रान्त के जिले पंजाब से फिर मिला दिये जावें या नहीं।

इस कमेटी ने इस प्रान्त के प्रबन्ध कार्य्य में कुछ सुधार करने की अनुमति दी। परन्तु वह इसकी विशेष स्थिति के कारण अन्य प्रान्तों की तरह शासन विधान प्रदान करने के पक्ष में न थी। जब साइमन कमीशन के सामने यह मांग उपस्थित हुई तो उन्होंने इसको अस्वीकार किया और यह युक्ति दी कि—

"हम Bray Committee (ब्रे कमेटी) के इन विचारों से सर्वथा सहमत हैं कि सीमा प्रान्त की व्यवस्थित शासन पद्धति में उन्नति करने के लिये कोई न कोई साधन बरतना चाहिए। परन्तु हमारा यह भी मत है कि इस प्रान्त की स्थिति ऐसी है और भारतवर्ष की रक्षा से इसका सम्बन्ध इतना घनिष्ट है कि इस प्रान्त के लिये विशेष शासन-पद्धति की आवश्यकता है। इस कारण यह सम्भव नहीं है कि इस प्रान्त में ऐसी आयोजना स्वतः लागू कर दी जावे जो शेष भारतवर्ष के प्रान्तिक प्रदेशों पर उचित रूप में प्रयोग में लाई जा सके। मनुष्य का सिगरेट पीने का अधिकार उड़ा दिया जा सकता है यदि वह बारूद घर में रहता है।" (रिपोर्ट जिल्द द्वितीय)

इस सम्मति की ओर ध्यान न देकर कांग्रेसी हिन्दुओं के उत्पन्न किये हुये वातावरण के कारण अंग्रेजी सरकार ने अन्य प्रान्तों की भांति २५ जनवरी सन् १९३२ को सीमा प्रान्त को पूरा प्रान्त बना दिया। अंग्रेजी सरकार इस प्रान्त पर भी इतनी दयालु है कि इनके व्यय को चलाने के लिये प्रतिवर्ष केन्द्रीय बजट में से इस प्रान्त को १००००००० (एक करोड़) रुपये प्रदान करती है।

प्रान्तों की पृथकता पर मौलाना आजाद

इन प्रान्तों के लिये मुसलमानों का आन्दोलन एक गूढ़ नीति का अंग है। यह बात अनेक मुसलमान नेताओं के भाषणों से प्रमाणित होती

हैं। परन्तु सबका उल्लेख न करके कांग्रेस के महान् नेता तथा राष्ट्रपति मौलाना अब्बुल कलाम आज़ाद के उस भाषण से एक अवतरण देता हूं जो उन्होंने दिसम्बर १९२७ में कलकत्ता मुस्लिम लीग के अधिवेशन में दिया था।

"लखनऊ समझौते में हमने अपने हितों को बेच दिया था। परन्तु गत मार्च में देहली के अन्दर किये गये निश्चयों ने हिन्दुस्तान के मुसलमानों की वास्तविक अधिकारों की स्वीकृति का प्रथम बार दरवाजा खोला है। १९१६ के पैक्ट ने पृथक्-पृथक् चुनाव की शैली को स्वीकार करके मुसलमानों के प्रतिनिधित्व को स्थिर किया है। किन्तु हमारी कौम की सत्ता के लिये अति आवश्यक बात यह थी कि हमारी संख्या सूचक शक्ति को स्वीकार किया जावे। देहली ने ऐसी अवस्था उत्पन्न करने का मार्ग खोल दिया जिससे आगामी भारतवर्ष में हमको हमारा उचित भाग मिलना निश्चित है। पंजाब और बंगाल में मुसलमानों की वर्तमान साधारण-सी बहुसंख्या केवल जनगणना के आंकड़े ही हैं। परन्तु देहली आयोजना ने प्रथम बार मुसलमानों को ५ ऐसे प्रान्त दिये हैं जिनमें न्यून-से-न्यून ३ प्रान्त (सिन्ध, सीमा व बिलोचिस्तान) ऐसे हैं जिनमें मुसलमानों की बहुत भारी बहुसंख्या है। यदि मुसलमान इसको समझ नहीं सकते तो वह इस संसार में रहने के योग्य नहीं हैं। अब ५ मुस्लिम प्रान्तों के प्रतिकूल ९ हिन्दू प्रान्त हैं जो आचरण अर्थात् व्यवहार हिन्दू ९ प्रान्तों में मुसलमानों से करेंगे वही व्यवहार मुसलमान ५ प्रान्तों में हिन्दुओं से करेंगे। क्या यह बड़ा भारी लाभ नहीं है? मुस्लिम अधिकारों को मनवाने का क्या यह नया शस्त्र प्राप्त नहीं हुआ है।"

उपरोक्त शब्द उस नेता के हैं जो १९२३ में भी एक बार देहली में कांग्रेस के एक विशेष अधिवेशन के सभापति बने थे। कांग्रेसी हिन्दुओं ने सिन्ध और सीमा प्रान्तों के सम्बन्ध में मुस्लिम मांगों को स्वीकार करके हिन्दुओं पर आधिपत्य जमाने की मुस्लिम मनोवृत्ति को विकास का अवसर दे दिया। मौलाना अब्बुल कलाम आजाद जैसे महान् कहे जाने वाले नेता के लिये न्याय का ऐसा घृणित आदर्श बतलाना कभी शोभायमान नहीं हो सकता। मौलाना साहिब की दृष्टि में प्रान्तों की सूची निम्न प्रकार विदित होती है—

मुस्लिम बहुसंख्यक ५ प्रान्त

१. बंगाल। २. पंजाब। ३. सिन्ध। ४. सीमा प्रान्त। ५. ब्रिटिश-बिलोचिस्तान।

हिन्दू संख्यक ९ प्रान्त

१. संयुक्त प्रान्त। २. मध्य प्रान्त। ३. बम्बई। ४. बिहार। ५. मद्रास। ६. उड़ीसा। ७. आसाम। ८. देहली। ९. यह कौनसा है मालूम नहीं।

इन में देहली में धारा सभा नहीं है। बिलोचिस्तान में भी कोई धारा सभा नहीं है। इस प्रकार १९३५ के नये शासन विधान के अनुसार प्रान्तों की सूची यह है—

मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्त

१. सिन्ध। २. पंजाब। ३. सीमाप्रान्त। ४. बंगाल।

हिन्दू बहुसंख्यक प्रान्त

१. संयुक्त प्रान्त। २. मध्य प्रान्त। ३. बम्बई। ४. मद्रास। ५. बिहार। ६. उड़ीसा। ७. आसाम।

इस प्रकार भारतवर्ष में मुस्लिम बहु-संख्यक प्रान्तों की संख्या दो के स्थान में चार कर दी गई।

बलोचिस्तान में सुधार जारी करवाने का आन्दोलन जारी है। ७ मार्च १९४१ को केन्द्रीय धारा सभा में एक मुस्लिम सदस्य ने ऐसा प्रस्ताव पेश किया परन्तु बहुमत ने विरोध करके अस्वीकार कर दिया।
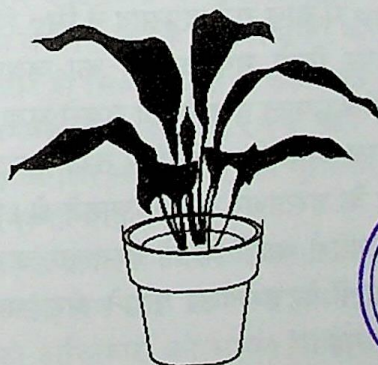
(७)

फिर मि० जिन्नाह

मि० जिन्ना से कांग्रेसी हिन्दू नेताओं की बातचीत

गाय, बाजा, चुनाव व साम्प्रदायिक निर्णय आदि विषयों पर मुस्लिम लीग व मि० जिन्नाह के निपटारा न करने वाले, अनुचित, राष्ट्रीयता-शून्य व स्वार्थी व्यवहार को देखकर भी कांग्रेसी नेताओं ने पुनः मि० जिन्नाह से समझौते के लिये बातचीत करनी आरम्भ करदी। पहले श्री बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी ने बातचीत प्रारम्भ की परन्तु कोई सफल परिणाम न हुआ। ३ मार्च १९३५ के 'ट्रिब्यून' में मि० जिन्नाह व राजेन्द्र बाबू की ओर से एक बयान छपा जिसमें उन्होंने लिखा—"पूरा प्रयत्न करने के बाद भी हम दोनों ऐसा कोई मार्ग न निकाल सके जो सबके लिये सन्तोषजनक होता।" इसी विषय पर 'ट्रिब्यून' ने ५ मार्च १९३५ को लिखा, "यह बातचीत इसलिए सफल न हो सकी कि (मुसलमानों ने) कम्युनल अवार्ड में न केवल वही कुछ प्राप्त कर लिया जिसको वह मांगते थे बल्कि कई बातों में तो उन्होंने अपनी मांगों से कहीं अधिक प्राप्त कर लिया।" 'ट्रिब्यून' ने आगे फिर लिखा—"वह कौनसी मामूली-से-मामूली रियायत है जो मुसलमानों ने दी है, जब तक यह न मान लिया जाये कि सम्मिलित राय देने की रीति को मानना ही एक रियायत है।" १९३७ में बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने मि० जिन्नाह से १९३५ में की गई बातचीत पर किये गये आक्षेप का जवाब देते हुए कहा, "१९३५ की बातचीत सफल न होने का सबसे बड़ा कारण यह था कि मि० जिन्नाह कम्युनल अवार्ड पर कांग्रेस तथा हिन्दू सभा के नेता पं० मालवीय जी आदि के हस्ताक्षर कराना चाहते थे। मैंने यह तो उनको कह दिया था कि कांग्रेस वालों के तो हस्ताक्षर करवाए जा सकते हैं परन्तु हिन्दू सभा वालों के हस्ताक्षर कराने असम्भव हैं। अतएव यह बातचीत समाप्त हो गई।"

श्रीयुत राजेन्द्र बाबू की उपरोक्त बातों से प्रकट होता है कि कम्युनल अवार्ड के राष्ट्रीयता शून्य विधान पर हिन्दुओं का विरोध शांत करने के लिए मि० जिन्नाह ने उनके हस्ताक्षर कराने चाहे। इससे भी शिक्षा न लेकर मि० जिन्नाह से प्रधान कांग्रेस, सुभाष बाबू ने फिर बातचीत शुरू कर दी। १७ मई १९३८ के 'ट्रिब्यून' में प्रकाशित विवरण से ज्ञात होता है कि मि० जिन्नाह की ओर से ये मांगें पेश हुई थीं—

१. कांग्रेस मुस्लिम लीग के साथ हिन्दुओं के प्रतिनिधि के रूप में समझौता करे।

२. कांग्रेसी प्रान्तों में सरकारी मन्त्रिमण्डलों का दुबारा निर्माण किया जावे।

३. मन्त्रियों में मुसलमान मेम्बर मुस्लिम लीग की ओर से निर्वाचित हो।

प्रधान कांग्रेस ने मन्त्रिमण्डलों का दुबारा निर्माण करने से इन्कार कर दिया—परन्तु यह मान लिया कि मुस्लिम लीग के मेम्बरों को शामिल करने के लिए मन्त्रियों की संख्या बढ़ा दी जाएगी। मि० जिन्नाह की मांग नम्बर १ पर कांग्रेस ने अपने आपको हिन्दुओं की प्रतिनिधि सभा का रूप देने से इंकार कर दिया। काश! कांग्रेस अपने अमल से भी यह प्रमाणित कर देती।

मुस्लिम मांगें

सन् १९२७ में ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की। तत्काल ही मुसलमानों ने भी अपनी राजनैतिक मांगें तैयार कीं।

अनेक मुस्लिम प्लेटफार्मों से मांगें पेश हुईं, जो लगभग सब वही हैं। इसलिये सबका वर्णन न करके केवल उन्हीं का वर्णन पर्याप्त है जो मुस्लिमलीग की ओर से मि० जिन्नाह ने उपस्थित कीं।

मुस्लिम लीग बम्बई की सन् १९२९ की मांगें

बम्बई में ११ अगस्त सन् १९२९ को मुस्लिम लीग द्वारा निश्चित की गई १४ मांगें निम्नलिखित हैं—

१. आगामी व्यवस्था या विधान का रूप मांडलिक हो और Residuary Powers अर्थात् शेष सत्ता प्रान्तों में स्थित हो।
२. सब प्रान्तों को अधिकारों की समान मात्रा प्राप्त हो।

३. देश की तमाम धारा सभाओं व चुनाव द्वारा बनाई जाने वाली अन्य सब सभाओं का पुनः इस आधार पर निर्माण होना चाहिए कि उनमें लघु-संख्यक वर्गों को पर्याप्त और कार्यसाधक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो। परन्तु यह पुनः निर्माण इस ढंग से न किया जावे जिससे कि किसी प्रान्त में बहुसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधित्व को लघुसंख्या में बदल दिया जावे अथवा उसे अन्य वर्गों के प्रतिनिधित्व के तुल्य (समान) कर दिया जावे।

४. केन्द्र की धारा सभा में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व एक तिहाई से कम न हो।

५. चूंकि वर्तमान स्थिति में देश की भिन्न-भिन्न धारा सभाओं व अन्य चुनाव वाली सभाओं में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व पृथक् लोकमत के आधार पर अनिवार्य है और चूंकि गवर्नमेंट ने मुसलमानों को इस अधिकार से वंचित न करने का वचन दिया हुआ है, इसलिये उनकी स्वीकृति के बिना यह अधिकार उनसे नहीं लिया जा सकता। और जब तक मुसलमान सन्तुष्ट न हो जायें कि उनके अधिकार व हित उपरोक्त वर्णित ढंग पर सुरक्षित कर दिये गये हैं वे किसी भी शर्त पर या बिना शर्त के सम्मिलित लोकमत की रीति को स्वीकार नहीं करेंगे।

६. यदि किसी समय प्रान्तों को पुनः विभक्त किया जावे तो बंगाल, पंजाब और सीमा प्रान्त में मुस्लिम सम्प्रदाय की बहुसंख्यक अवस्था पर कोई आघात न पहुंचे।

७. सब सम्प्रदायों को धार्मिक स्वतन्त्रता अर्थात् विचारों की, आराधना की, रस्म-व-रिवाज की, प्रचार की, सभाएं आदि बनाने की और शिक्षा की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

८. किसी धारा सभा या किसी अन्य चुनाव वाली सभा में कोई बिल या प्रस्ताव या उनका कोई अंग स्वीकार न किया जावे यदि उस सभा के किसी सम्प्रदाय के ३/४ सदस्य उस बिल, प्रस्ताव या उसके किसी अंग का इस आधार पर विरोध करें कि उससे उनके सम्प्रदाय के हितों की क्षति होगी या उस अवस्था में वह स्वीकार न होगा जबकि उस विशेष परिस्थिति को सम्भालने के लिए कोई अन्य उचित और कार्य सिद्धि के योग्य मार्ग निकाला जा सके।

९. सिन्ध बम्बई प्रान्त से पृथक् कर दिया जावे।

१०. सीमा प्रान्त व बलोचिस्तान में दूसरे प्रान्तों की तरह सुधार जारी किये जावें।

११. विधान में ऐसी व्यवस्था रखी जावे जिससे मुसलमानों को दूसरे भारतवासियों के साथ राज्य की तथा अन्य प्रजातन्त्र संस्थाओं की नौकरियों में उचित भाग मिले। हां पदों के लिये जिस योग्यता की आवश्यकता हो उसका उचित ध्यान रखा जावे।

१२. शासन विधान में मुसलमानों के धर्म, संस्कृति व इस्लामी कानून की रक्षा के लिये, इस्लामी शिक्षा, भाषा, धर्म, इस्लामी कानून और इस्लामी खैराती संस्थाओं की उन्नति के लिये तथा राज्य और प्रजातन्त्र संस्थाओं की ओर से दी जाने वाली आर्थिक सहायता में उनके उचित भाग के लिये पर्याप्त संरक्षण होना चाहिये।

१३. कोई केन्द्रीय या प्रान्तीय मन्त्रिमण्डल न बनाया जावे जब तक कि उसमें कम-से-कम एक तिहाई मुस्लिम वजीर न हों।

१४. केन्द्रीय धारा सभा विधान में कोई परिवर्तन नहीं कर सकती जब तक कि भारतीय संघ में सम्मिलित हुये २ सब प्रान्त सहमत न हों।

सन् १९३९ के पं० नेहरू के पत्र में मि० जिन्नाह की १४ मांगें

कई वर्षों के पश्चात् मांगों की एक और सूची बनाई गई जिसका पता पं० जवाहरलाल के उस पत्र से लगा जो उन्होंने ६ अप्रैल सन् १९३८ को मि० जिन्नाह के नाम कलकत्ते से भेजा था। उस पत्र में मि० जिन्नाह की १४ नई मांगें जो पं० जी के पास भेजी गई थीं प्रकट की गई थीं। वे ये हैं—

१. सन् १९२९ की १४ मांगें पूरी की जावें।

२. कांग्रेस कम्युनल अवार्ड का विरोध करना छोड़ दे और उस को राष्ट्रीयता का विरोधी न बतावे।

३. सरकारी नौकरियों में मुसलमानों का अनुपात शासन विधान के अन्दर कानून द्वारा निश्चित कर दिया जावे।

४. मुसलमानों की शरीअत और सभ्यता आदि की रक्षा का विश्वास कानून द्वारा दिलाया जावे।

५. शहीदगंज लाहौर को मुसलमानों के आधीन कराने के आन्दोलन को कांग्रेस स्वयं अपने हाथ में ले ले और उसे मुसलमानों को

वापिस दिलवाने के लिये अपने प्रभाव को प्रयोग में लावे।

६. अजान देने व धार्मिक रीति-रिवाजों के मनाने में कोई बाधा न हो।
७. गऊवध करने की मुसलमानों को पूरी स्वतन्त्रता हो।
८. प्रान्तों का पुनः विभाजन एवं निर्माण कभी इस प्रकार न हो कि जिन प्रान्तों में अब मुसलमान बहुसंख्या में हैं वहां वे बहुसंख्या में न रहें।
९. वन्देमातरम् का गीत त्याग दिया जावे।
१०. मुसलमान चाहते हैं कि हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भाषा उर्दू हो इसलिये यह विश्वास कानून द्वारा दिलाया जावे कि इसके प्रयोग में कोई न्यूनता व बाधा न होगी।
११. म्युनिसिपल कमेटियों आदि में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व कम्युनल अवार्ड में वर्णित असूल के आधीन अर्थात् पृथक् लोकमत व आबादी की संख्या के आधार पर हो।
१२. कांग्रेसी तिरंगा झंडा बदल दिया जावे या मुस्लिम लीग के झंडे को समान महत्त्व दिया जावे।
१३. मुस्लिम लीग मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि सभा समझी जावे।
१४. विजारतें सम्मिलित (Coalition) हों।

नोट—सन् १९२९ की सूची की मांगें संख्या नं० ६, ११ व १२ वहीं हैं जो १९३८ की सूची में संख्या नं० ८, ३ व ४ हैं और इसी सूची की मांग नं० १ केवल १९२९ की मांगों का संकेत हैं। इसलिये वास्तव में मुसलमानों की कुल मांगें २४ रह जाती हैं।

उसी पत्र में पं० नेहरू जी ने उपरोक्त मुस्लिम मांगों पर कांग्रेस के दृष्टिकोण को प्रकट किया है। वह संक्षेप में निम्नलिखित है—

१. सन् १९२९ की १४ शर्तों के वर्णन का यह समय नहीं है। दूसरे उनमें से बहुत-सी बातें कम्युनल अवार्ड व अन्य तरीकों से पूरी हो चुकी हैं। कुछ ऐसी हैं जिन्हें कांग्रेस स्वीकार कर सकती है। और जो दो एक शेष हैं वे शासन विधान के बदलने पर पूरी होगी।
२. कम्युनल अवार्ड के विषय में कांग्रेस ने अपनी नीति की घोषणा की हुई है। अतएव विभिन्न पार्टियों के परस्पर समझौते के बिना उसमें किसी परिवर्तन का प्रयत्न नहीं किया जायेगा। परन्तु कांग्रेस

इसको राष्ट्रीयता शून्य कहे बिना नहीं रह सकती।

३. सरकारी नौकरियों में यदि मुसलमानों का अनुपात कानून द्वारा निश्चित किया जाय तो जरूरी है कि इसी तरह दूसरे समुदायों और वर्गों का अनुपात भी निश्चित किया जाय। इससे उन्नति और विकास रुक जाएगा। फिर भी यह स्वीकार किया जाता है कि सरकारी नौकरियों का विवरण इस प्रकार हो कि किसी भी जाति को शिकायत का अवसर न मिले। इस सवाल को आपस में समझौते से हल किया जा सकता है।

४. जहां तक संस्कृति की रक्षा का प्रश्न है कांग्रेस ने इस बात को शासन विधान के आधारमूल नियमों में सम्मिलित कर लेने की सहमति प्रकट की है। कांग्रेस यह भी घोषणा कर चुकी है कि वह किसी प्रकार भी किसी जाति के निजी कानूनों में हस्तक्षेप न करेगी।

५. शहीदगंज का निर्णय अदालत या आपस के समझौते से हो सकता है। कांग्रेस आपस में समझौता कराने के निमित्त सहायता देने के लिये हर समय तैयार है।

६. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार कांग्रेस को स्वीकृत है।

७. गऊ-वध के सम्बन्ध में कांग्रेस कोई कानूनी कार्य इस प्रकार का नहीं करना चाहती जो मुसलमानों के इस चिरकाल-स्थित अधिकार को नियंत्रित करने वाला हो।

८. प्रान्तों के बंटवारे का कोई प्रश्न उठा नहीं है। जब यह प्रश्न उठे तो आपस के समझौते से निर्णय हो सकता है।

९. वन्देमातरम् गायन को कांग्रेस ने कभी भी नियमपूर्वक राष्ट्रीय गायन स्वीकार नहीं किया है। लेकिन यह सच है कि तीस साल से अधिक से वन्देमारतम् गायन भारतीय राष्ट्रीयता के साथ बहुत अधिक सम्बन्धित रहा है। और वन्देमातरम् गायन के प्रति अनेकों भावनाएं पैदा हो गई हैं और इसके लिये अनेक बलिदान हुए हैं। ऐसे गीत जातीयता की भावना से उत्पन्न होते हैं। तीस साल के लम्बे समय में यह गीत भारत की प्रशंसा में एक राष्ट्रीय गायन समझा जाता रहा है। सरकार के द्वारा राजनैतिक आधार पर किये गये आक्षेप के अतिरिक्त आज तक इस पर अन्य कोई आक्षेप नहीं

हुआ है। अब मुसलमानों के विरोध पर दो पद उड़ा दिये गये हैं और इसके साथ ही यह स्वतन्त्रता दे दी गई है कि इसके स्थान में दूसरा कौमी गीत बनाया व गाया जा सकता है।

(नोट—मेरठ के ५४वें अधिवेशन के बारे में एक प्रमुख पत्र के सम्वाददाता ने इस लेखक को बताया है कि यहां पर झंडारोहण के अतिरिक्त अन्य किसी अवसर पर वन्देमातरम् नहीं गाया गया। बल्कि इकबाल का गीत 'सारे जहां से अच्छा....' गाया गया था। पाठकगण हमारे कथन की सत्यता कांग्रेस के विवरण से जांच सकते हैं)

१०. कांग्रेस ने दोनों लिपियों को माना हुआ है।

११. कांग्रेस सम्मिलित चुनाव प्रणाली को भारतीय राष्ट्रीयता के लिये हितकर मानती है लेकिन सम्मिलित चुनाव प्रणाली को प्रभावशाली होने के लिये आवश्यक है कि वह ऊपर से लादी न जाये। वर्तमान प्रणाली में परिवर्तन पारस्परिक समझौते से ही होगा।

१२. सबसे पहले १९२९ में राष्ट्रीय तिरंगे झंडे का रूप कांग्रेस ने स्वीकार किया। इसके बनाने में प्रमुख मुस्लिम, सिख तथा अन्य नेता सम्मिलित थे। .....वर्तमान तिरंगे झण्डे के तीन रंग सबसे पहले इसलिये चुने गए कि वह विभिन्न सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व कर सकें। परन्तु हम इस साम्प्रदायिक पहलू पर अधिक बल देना नहीं चाहते। भिन्न-भिन्न वर्गों के झण्डे राष्ट्रीय जीवन में कोई अर्थ नहीं रखते। पिछले कुछ महीनों में कई अवसरों पर राष्ट्रीय पताका का मुस्लिम लीग के सदस्यों और स्वयंसेवकों द्वारा अपमान किया गया है....हमने कड़ी आज्ञा जारी करदी है और उनका अब भी पालन हो रहा है कि यदि मुस्लिम लीग का झण्डा अनुचित रूप में भी लहराया जाय तो भी इसमें कोई हस्तक्षेप न किया जाय।

१३. मुस्लिम लीग को मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि सभा मानना युक्ति व स्थिति के विरुद्ध है।

१४. बिना एक निश्चित राजनैतिक और आर्थिक कार्यक्रम के कांग्रेस का मंत्रिमंडल अथवा एसेम्बली में कोई स्वार्थ नहीं है। यदि मुस्लिम लीग इसमें सहयोग करने को तैयार नहीं तो उनके साथ सम्मिलित मंत्रिमण्डल नहीं बन सकता।

सरकार द्वारा मुस्लिम मांगों की पूर्ति—

कांग्रेस की ओर से जो उत्तर पंडित जी ने दिये वे हम ऊपर दे चुके हैं। अब अंग्रेजी सरकार ने जिस तरह १९२९ की मांगों को पूरा किया वह भी जान लेना चाहिये। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि सरकार ने सभी मुस्लिम मांगों को स्वीकार किया जब कि उन्हें पहले कांग्रेस ने समय-समय पर किसी न किसी रूप में स्वीकार कर लिया था—अर्थात् लखनऊ पैक्ट, नेहरू रिपोर्ट, अनेक हिन्दू-मुस्लिम समझौते तथा कांग्रेस के अनेक प्रस्तावों में वे बातें स्वीकृत हो चुकी थीं। इस स्वीकृति का आश्रय लेकर सरकार ने यथा अवसर उन्हें कार्यरूप में परिणत कर दिया। इसका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है।

१. एक्ट १९३५ की धारा १०४ के अनुसार शेष सत्ता (Residuary Powers) केन्द्र से हटाकर प्रान्तों में न रखी जाकर गवर्नर जनरल को सौंप दी गई।
२. बिलोचिस्तान को छोड़कर सब प्रान्तों में धारा सभाएं बना दी गई हैं और उनको समान मात्रा में अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं।
३. कम्युनल अवार्ड में मांग नं० ३ का पूरा ध्यान रखा गया है।
४. कम्युनल अवार्ड में मांग नं० ४ भी स्वीकृत की गई है।
५. कम्युनल अवार्ड की धारा नं० ६ में मुसलमानों की इच्छा के अनुसार उन्हें आश्वासन दिलाया गया है और फिर २ जुलाई १९३५ को ब्रिटिश सरकार की ओर से प्रकाशित एक वक्तव्य में भी यह आश्वासन दोहराया गया है।
६. कम्युनल अवार्ड की धारा सं० १८ में यह वचन दिया गया है कि बंगाल, पंजाब आदि प्रान्तों में मुसलमानों की बहुसंख्यक अवस्था में कोई अन्तर नहीं होगा।
७. धार्मिक स्वतंत्रता आदि तो महारानी विक्टोरिया के समय से ही मानी हुई है।*

---

* कांग्रेस ने १९३३ में "Declaration of Fundamental Rights" के नाम से और १९३८ में "Declaration of Minority Rights" के नाम से इस प्रकार की घोषणाएं निकाली हुई हैं। इनके अतिरिक्त सं० १९४० में रामगढ़ अधिवेशन के अवसर पर कांग्रेस ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया—

"कांग्रेस ने सर्वदा दो सिद्धान्तों को स्वीकार किया है और उन के अनुसार ही प्रत्येक पग उठाया है, अर्थात्—

८. कांग्रेस ने लखनऊ पैक्ट में इसको स्वीकार किया गया है और सरकार की ओर से यह अधिकार गवर्नरों के हाथ में है। उनकी आज्ञा के बिना कोई प्रस्ताव धारा सभा में उपस्थित नहीं हो सकता।

९. १ अप्रैल १९३६ से सिन्ध बम्बई से पृथक् करके पूरा प्रान्त बना दिया गया है। बलोचिस्तान में अभी तक धारा सभा नहीं बनाई गई है।

१०. २५ जनवरी १९३२ को सीमा प्रान्त पूरा प्रान्त बना दिया गया।

११. अंग्रेजी सरकार ने ४ जुलाई १९३४ को घोषणा कर दी कि मुसलमानों को केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकार के आधीन २५ प्रतिशत नौकरियां मिलेंगी और अन्य लघुसंख्यक वर्गों को साढे आठ प्रतिशत। यदि इस आठ एक तिहाई को पूरा करने वाले लघुसंख्यक वर्गों में से भरती न मिले तो ये भी मुसलमानों में से पूरी की जावेंगी।

१२. इस मांग को यथासंभव अधिकारी वर्ग पूरा कर रहा है। इसके उदाहरण देना इस पुस्तक का क्षेत्र नहीं है। प्रतिदिन होने वाली घटनाएं इस बात को सिद्ध करती हैं।

१३. मांग १३ के अनुसार मन्त्रिमण्डल का बंटवारा हो रहा है। (डॉ० राजेन्द्रप्रसादजी ने अपनी पुस्तक "India Divided" में यह विवरण दिया है कि १९३७ के मन्त्रिमण्डल में ११ प्रान्तों के ७१ मन्त्रियों में २६ मुसलमान १० अन्य लघुवर्गों के और ३५ हिन्दू थे)।

१४. केन्द्रीय धारा सभा क्या करे और क्या न करे यह प्रश्न कोई महत्त्व नहीं रखता। मुसलमान तो केन्द्र को ही नहीं रखना चाहते।

---

१. भारतवर्ष में जो भी शासन विधान चालू किया जावे उसमें लघुसंख्यक वर्गों के अधिकारों और हितों की रक्षा का पूरा प्रबन्ध होगा।

२. लघुसंख्यक वर्गों को स्वयं ही यह निर्णय करना चाहिये कि उन के अधिकारों और हितों की रक्षा के लिये क्या-क्या संरक्षण आवश्यक हैं। बहुसंख्यक वर्ग का इसमें कोई हाथ न होगा। इसलिये संरक्षणों का निर्णय लघुसंख्यक वर्गों की स्वीकृति पर निर्भर होगा, बहुसंख्यक वर्गों पर नहीं।

किसी भी वर्ग को ऐसा अधिकार देकर समझौते की आशा रखना एक बहुत ही आश्चर्यजनक कार्य्य है।

२८ अप्रैल १९४० को मुस्लिम आज़ाद कांफ्रेंस के अधिवेशन पर एक प्रस्ताव पेश करते हुए मौलाना हबीब-उल-रहमान ने कहा—

"यह हिन्दू ही हैं जिन्होंने मुस्लिम लीग को इतना शक्तिशाली बना दिया है और हिन्दू समाचार पत्रों ने ही मिस्टर जिन्नाह के पक्ष का प्रचार किया है।"

मुस्लिम लीग पर कांग्रेस प्रस्ताव

अखिल भारत वर्षीय कांग्रेस समिति के कुछ सदस्यों ने कांग्रेस के इस अनुचित व्यवहार को समाप्त करना चाहा और जनता की इस भावना को प्रकट करने के लिये अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की मीटिंग में जो २४ सितम्बर १९३८ को हुई, निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया—

"आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी का यह अधिवेशन मुस्लिम लीग के प्रधान के साथ बातचीत करने के सम्बन्ध में प्रधान कांग्रेस तथा अन्य कांग्रेस वालों की नीति की अवहेलना करता है, क्योंकि इन प्रयत्नों ने किसी अच्छे परिणाम की बजाय देश के अन्दर राष्ट्रीयता तथा सुधार विरोधी दलों के गौरव को बढ़ाया है।"

बड़े भारी बहुमत से यह प्रस्ताव गिर गया। इससे विदित होता है कि कांग्रेस ने राष्टीयता-शून्य, अड़ियल, कठोर और अनुदार लीग के अप्रिय अनुभवों से कोई शिक्षा ग्रहण न की। इसके पश्चात् शीघ्र ही इस बात को जांचने का एक और अवसर आया कि कांग्रेस ने लीग के पीछे भागने की नीति को छोड़ दिया है या नहीं।

युद्ध के कार्य में हिन्दुस्तानियों की सहानुभूति तथा सहायता प्राप्त करने के लिये देश के अनेक नेताओं को सन् १९३९ में वायसराय महोदय ने निमन्त्रित किया। युद्ध में सहायता देने के लिये मुस्लिम लीग ने २ मांगें पेश कीं—

१. मुस्लिम लीग को मुसलमानों की प्रतिनिधि सभा माना जावे।
२. हिन्दुस्तान को दो हिस्सों में विभक्त किया जावे।

मि० जिन्नाह व गांधी जी

इसी समय दिल्ली में वायसराय के सम्मुख कोई सम्मिलित मांग रखने के लिए कांग्रेसी नेताओं ने मुस्लिम लीग से फिर समझौते की बातचीत शुरू की, परन्तु पुरानी प्रथानुसार इस बातचीत का भी सफल परिणाम न निकल सका। अब महात्मा गांधी जी ने भी दुःखी होकर ४ नवम्बर १९३९ के "हरिजन" में लिखा—

"जिन्नाह साहब मुस्लिम अधिकारों की रक्षा के लिये बर्तानवी शक्ति की तरफ दृष्टि डालते हैं। कांग्रेस जो कुछ कर सकती है या दे सकती है उनसे उनकी तसल्ली नहीं होती, क्योंकि वह अपने दृष्टिकोण से उससे कहीं अधिक मांगें पेश करते हैं जितना कि अंग्रेज उनको दे सकते हैं या विश्वास दिला सकते हैं। मुस्लिम लीग की मांगों की कोई सीमा नहीं हो सकती। इसलिये कांग्रेस के लिये केवल यही मार्ग रह गया है कि वह कांग्रेसी सज्जनों की हिदायत के लिये चाहे वे किसी भी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखते हों, स्वयं अपनी साम्प्रदायिक नीति का वर्णन करदे।"

महात्मा गांधी जी ने यह बात उस समय कही जब मुस्लिम लीग को काफी महत्त्व मिल चुका था और उसके अनुकूल वायुमण्डल बन चुका था। किसी ने ठीक कहा है, "अब पछताए होत क्या जब चिड़ियां चुग गई खेत।"

अंग्रेजों की दृष्टि में मुस्लिम लीग और कांग्रेस

वायसराय महोदय ने ५ नवम्बर १९३९ को अपने एक वक्तव्य में कांग्रेस और मुस्लिम लीग को हिन्दुस्तान की दो बड़ी राजनैतिक पार्टियों का नाम दिया। उधर भारतमंत्री ने लन्दन में कांग्रेस को हिन्दुओं की प्रतिनिधि सभा के नाम से पुकारा।

अपनी नीति से कांग्रेस ने अपने आपको वही कहलवाया जिससे कि वह सदा डरती थी। परन्तु फिर भी काम वही करती थी जिसके कारण यह नाम उस पर लागू होना स्वाभाविक अर्थात् एक साम्प्रदायिक सभा मुस्लिम लीग से बातचीत करने का अधिकार हिन्दू सभा के स्थान में कांग्रेस स्वयं धारण करती रही।

"ट्रिब्यून" लाहौर ने ७ नवम्बर १९३९ को लिखा कि कांग्रेस या तो अनेक सम्प्रदायों की साम्प्रदायिक सभाओं के प्रतिनिधियों की पंचायत बुलाकर बतौर मंच के काम करती या साम्प्रदायिक प्रश्न को अपनी ओर से सर्वथा छोड़कर सम्प्रदायों को सौंप देती कि वे स्वयं उसको सुलझा लें।"

मुस्लिम लीग को अधिकार सौंपने पर कांग्रेस व मौलाना आज़ाद

कांग्रेस को महात्मा गांधी की उपरोक्त सम्मति के बाद अपने व्यवहार में परिवर्तन कर लेना चाहिये था परन्तु ऐसा न करके इलाहाबाद कांग्रेस कमेटी ने यह घोषणा की कि कांग्रेस व मुस्लिम लीग के पांच-

पांच प्रतिनिधि मिलकर समझौता करलें। यह संख्या घटाकर मौलाना अब्बुल कलाम आज़ाद ने एक-एक करदी।

मौलाना साहब के इस बयान का भी कि ''यदि अंग्रेजी सरकार कांग्रेस को हकूमत का भार नहीं सौंपती तो मुस्लिम लीग को ही सौंपदे'' महात्मा गांधी जी ने 'हरिजन' १४-६-१९४२ में समर्थन कर दिया—

''पूर्ण सद्भावना से मैं पुनः कहता हूं कि यदि मुस्लिम लीग तुरन्त भारतीय स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये कांग्रेस से सहयोग करे, (यह शर्त अवश्य होगी कि स्वतंत्र भारत में मित्रराष्ट्रों की सेनाओं को धुरी राष्ट्रों के आक्रमणों को रोकने और इस प्रकार चीन और रूस को सहायता देने के लिये पूरी स्वतंत्रता तथा सहूलियत होगी) कांग्रेस को इस बारे में कोई आपत्ति नहीं होगी कि बर्तानिया अपने तमाम अधिकारों को समस्त भारतवर्ष की ओर से, जिस में रजवाड़े भी शामिल हैं, मुस्लिम लीग को सौंप दें। कांग्रेस न केवल मुस्लिम लीग की ओर से स्थापित किये हुए राज्य में कोई रुकावट नहीं करेगी अपितु उस सरकार में शामिल भी हो जाएगी। यह बात पूर्ण गम्भीरता और सद्भावना से कही गई है।''

इसका यह आशय कदापि न लिया जावे कि महात्मा गांधी जी भारतवर्ष में अकेले मुसलमानों का राज्य चाहते हैं। परन्तु इसका यह प्रभाव अवश्य पड़ा कि सरकार व जनता की दृष्टि में मुस्लिम लीग का महत्त्व और भी बढ़ गया जैसा कि इससे पहले बढ़ता रहा है।

गांधी जी ने एक बार यह भी कहा था कि यदि मुस्लिम लीग को अधिकार मिल जायें तो उनको शासन करने के लिये हमारी आवश्यकता होगी। यह धारणा पूर्व समय के इतिहास के आधार पर ठीक नहीं है। क्या मुसलमान बादशाहों ने हिन्दूराज्य को मिटाने और हिन्दू सत्ता को निर्बल करने में कोई कमी रखी थी? जो मुस्लिम लीग ईरान, अरब व हिन्दुस्तान आदि को मिलाकर एक इस्लामी राज्य का स्वप्न देख रही है और जिसके लिये वह चिरकाल से षड्यन्त्र रच रही है, उससे यह आशा रखना कि वह शासन की बागडोर हाथ में लेकर हिन्दुओं तथा कांग्रेस से सहायता लेने दौड़ेगी, राजनीति के सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध है।

सन् १९४२ में कांग्रेस की विचारधारा

सन् १९४२ में श्री महात्मा गांधी जी तथा अन्य सज्जनों ने अंग्रेजी सरकार से अपने अधिकारों को लेने का आन्दोलन आरम्भ करने की

योजना करते हुये प्रथम बार यह कहा कि "पहले भारतवर्ष स्वतन्त्र हो, बाद में साम्प्रदायिक झगड़ों का निर्णय हो जायेगा।"

यदि कांग्रेस की केवल इतनी ही विचारधारा स्थिर हो जाती तो कांग्रेस बहुत कुछ आक्षेप से बच सकती थी, परन्तु यह केवल एक क्षणिक बात ही रही। स्वतन्त्रता का आन्दोलन आरम्भ होने के बाद यह आवाज चारों ओर से उठने लगी कि मुस्लिम लीग से समझौता किया जावे। कारागृहों से जब नेता लौटे उस समय क्या पग उठाया गया इसका वर्णन आगे किया गया है। उधर मि० जिन्नाह अब पाकिस्तान के बारे में क्या कर रहे हैं यह पाकिस्तान वाले अध्याय में लिखा गया है, पाठक वहां से देख लें।

कारागृहों से लौटने पर

कारागृहों से आते ही महात्मा गांधी जी ने 'राजगोपाल आयोजना' को अपनाया। उन्होंने सितम्बर १९४४ में फिर मि० जिन्नाह से बातचीत की, परन्तु कुछ परिणाम न निकला। उसके बाद सर सपरू ने मि० जिन्नाह को अपने साथ मिलाना चाहा। परन्तु कोरा उत्तर सुनकर वे भी चुप हो गये। फिर श्री गांधी जी के आशीर्वाद से ओतप्रोत 'देसाई-लियाकत' आयोजना पर बहुत कुछ निर्धारित 'वेवल आयोजना' के अनुसार वायसराय महोदय की 'कार्यकारिणी समिति' के लिए नामों की सूची उपस्थित करने के निमित्त वायसराय महोदय के निमंत्रण पर कांग्रेसी नेता शिमला सम्मेलन में न केवल मुस्लिम लीग के साथ बैठे बल्कि श्री गांधी जी ने अपने एक वक्तव्य में (जो उन्होंने शिमला कांफ्रेंस में जाते समय 'पंचगनी' में समाचार-पत्रों के संवाददाताओं को दिया था) मुस्लिम लीग को कांग्रेस के समान ही एक राष्ट्रीय सभा स्वीकार किया।

इनकी विस्तृत चर्चा अगले अध्यायों में की गई है।

अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस समिति बम्बई १९४५

सितम्बर १९४५ में बम्बई में 'अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस समिति' की बैठक हुई। उस अवसर पर कम्युनिस्ट नेता मि० अशरफ व मियां इफ्तखार-उद-दीन भूतपूर्व प्रधान, पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी ने अपने भाषणों में कहा कि कांग्रेस किसी न किसी प्रकार मुस्लिम लीग से समझौता करे। पं० नेहरू ने सरदार पटेल के 'आगामी चुनाव' के

प्रस्ताव का समर्थन करते हुए उपरोक्त दोनों महाशयों के सुझाव का उत्तर दिया और कहा—

"We have done our best to come to an understanding with the Muslim League in the past. We have now come to the conclusion that it is in the best interests of the country to keep away from Muslim League leaders here after."

अर्थ—"गत वर्षों में हमने मुस्लिम लीग के साथ समझौता करने का पूरा प्रयत्न किया। अब हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि देश का सर्वोत्तम हित इसमें है कि मुस्लिम लीग से दूर रहा जावे।"

इसके पश्चात् पं० नेहरू ने ऐसा कहने का कारण बतलाया—

"Dr. Ashraf and Mian Iftakhar-ud-din have forgotten the way our President was humiliated by the League leaders, until and unless they make amends for this, we are not prepared to have any discussions or negotiations with the League leaders."

(मुस्लिम लीग वालों ने मौलाना आज़ाद के लिये "Congress Show Boy" शब्द प्रयुक्त किये थे। इन्हीं शब्दों की ओर पं० जी का संकेत है।)

अर्थ—"डॉ० अशरफ और मियां इफ्तखार-उद-दीन यह भूल गए हैं कि लीग नेताओं ने हमारे प्रधान की किस तरह मानहानि की है। जब तक वे इसकी क्षतिपूर्ति न कर दें तब तक हम लीग नेताओं के साथ किसी प्रकार की बातचीत या समझौता करने के लिये तैयार नहीं हैं।"

क्या उपरोक्त शब्द यह प्रकट नहीं करते कि देश के हितों अथवा राष्ट्रीयता के विचारों के आधीन नहीं अपितु प्रधान साहिब के लिये कहे गये अपमानजनक शब्दों के कारण श्री नेहरू जी ने मुस्लिमलीग से नाता तोड़ने की घोषणा की है। यदि लीग नेता उन अपशब्दों का उचित मात्रा में कोई उपचार कर दें तो श्री पं० जी मुस्लिम लीग से पुनः बातचीत करने के लिये तैयार हो सकते हैं।

हिन्दू समाचार पत्रों ने पं० नेहरू जी के प्रति अपने अन्धविश्वास के कारण बड़ी आसानी से उनके शब्दों के अन्तिम भाग को न लिखकर केवल इतना लिखा—"कांग्रेस मुस्लिम लीगी नेताओं से कोई सम्बन्ध

न रखेगी।'' इस घोषणा के लिये पं० जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। इस प्रकार भाषण के एक भाग को उसके प्रसंग से पृथक् करके जनता के सामने उसको तोड़-मरोड़कर रखने में और इस प्रकार जनता को भूल में रखने में कांग्रेस पोषक समाचार-पत्रों ने पत्र प्रकाशन की उच्च नीति, न्याय के सिद्धान्तों व व्यवसाय की ईमानदारी के विरुद्ध व्यवहार किया।

प्रधान कांग्रेस के प्रति किये गये दुर्व्यवहार के कारण मुस्लिम लीग से न मिलने की धमकी देकर मुस्लिम लीग वालों को डराने की या उनसे पश्चात्ताप कराने की आशा रखना कांग्रेस की भूल है। मुस्लिम लीग के अंग्रेजी समाचार-पत्र 'Dawn' ने २६ सितम्बर सन् १९४५ के अंक में लिखा—

"As regards the treatment alleged to have been meted out to the Maulana by League leaders, we can only say that brickbats rather than baquets are always and in all places in store for puppets and show-boys."

अर्थ—''उस बर्ताव के विषय में जो लीग नेताओं की ओर से मौलाना के प्रति किया गया कहा जाता है, हम केवल यही कह सकते हैं कि 'कठपुतलियों' और 'दिखावे के लड़कों' के लिये सदैव और प्रत्येक स्थान में गुलदस्तों की बजाय ईंट पत्थर ही होते हैं।''

हमारे हिन्दू-मुस्लिम मिलाप द्वारा स्वराज्य प्राप्ति के इच्छुक कांग्रेसी हिन्दुओं के लिये यह कब सम्भव था कि वह यदि किसी और विचार से नहीं तो कम-से-कम अपने प्रस्ताव के सन्मानार्थ मुस्लिम लीग की तरफ जाने और उसके प्रसन्न करने के निष्फल कार्य को न करती। यह उक्त पुस्तक के पश्चात् भी मुस्लिम लीग का दरवाजा खटखटाते रहे। अंत कालीन सरकार व विधान निर्मात्री समिति ने मुस्लिम लीग को सम्मिलित करने के हेतु गांधी जी, पं० जवाहरलाल व अन्य कांग्रेसी नेता बड़ी उत्सुकता व चिन्ता के साथ मि० जिन्नाह से विचार विनिमय करने के लिये अनेक बार उनसे मिले। उनके संशयों और आक्षेपों को शान्त करने के लिये बरतानवी मंडल की आयोजना पर बरतानवी सरकार की ओर से ६ दिसम्बर सन् ४६ व २० फरवरी सन् ४७ को घोषित किये गये स्पष्टीकरणों को अक्षरसः स्वीकार किया। (इन स्पष्टीकरणों में कांग्रेस ने क्या कुछ माना इसका उल्लेख उचित स्थान पर

होगा) इस पर भी मुस्लिम लीग विधान निर्मात्री सभा में सम्मिलित नहीं हुई और अंत:कालीन सरकार में वे जो शामिल हुए वह केवल वायसराय के संकेत पर। मुस्लिम लीगियों ने शामिल होकर कांग्रेसी सदस्यों की स्थिति तथा अंत:कालीन सरकार की "जातीय सरकार" के शब्दों की जो पोल खोली वह समाचार-पत्रों के पढ़ने व सुनने वालों को भली प्रकार ज्ञात होगा। देश में भयंकर दंगे हुये। बर्बरता नग्नरूप में नाची। करोड़ों रुपयों की जायदादों को जलाकर राख का ढेर बना दिया गया। स्त्रियों पर बलात्कार हुए। पुरुष, स्त्री, बच्चे, पशु जीवित जला दिये गये और यह सब कुछ मुस्लिम लीग "Direct action day" अर्थात् १६ अगस्त से आरम्भ होकर अब तक चल रहा है। नये वायसराय लार्ड माउन्ट बैटन के संकेत अनुसार एक 'अमन अपील' १५-४-४७ को निकाली गई। मुस्लिम लीग की ओर से मि० जिन्नाह के हस्ताक्षर हुये और कांग्रेस की ओर से किसके हों यह समस्या खड़ी हुई। नियमानुसार आचार्य कृपलानी के हस्ताक्षर होने चाहिये थे, क्योंकि वह कांग्रेस के प्रधान हैं। परन्तु मि० जिन्नाह ने उनके साथ हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया। कांग्रेस के प्रति की गई इस मानहानि का भी कोई ध्यान न रखकर स्वयं गांधी जी हस्ताक्षर करने को उद्यत हो गये। और अपनी सर्वप्रियता का यहां तक दिखावा किया कि अपने हस्ताक्षर हिन्दी, उर्दू तथा अंग्रेजी तीनों भाषाओं में किये।

क्या इस खेल से गांधी जी सर्वप्रिय होगये। क्या इससे उनका महत्त्व बढ़ गया? कदापि नहीं। 'मान न मान मैं तेरा मेहमान' के सिद्धान्त पर आचरण करने वाले मनुष्य ऐसी ही डावांडोल व सारहीन बातों से अपना और दूसरों का चित्त लुभाने का प्रयत्न किया करते हैं। क्या इस अपील का मुसलमानों या मुस्लिम लीग पर कोई प्रभाव पड़ा? कुछ नहीं! अपील के प्रकाशित होने के बाद भी कई स्थानों में हत्याकांड

होते रहे। शान्ति स्थापना के स्थान में इस अपील को मुस्लिम लीग वालों ने 'पाकिस्तान' व 'दो कौम' के प्रचार का सामान बनाया। लीगी अखबार 'डान्' (Dawn) ने इस अपील का जिन शब्दों में प्रयोग किया उनका भाषानुवाद निम्नलिखित है।

"यदि वायसराय का यह कार्य जो उन्होंने कायदे आजम व महात्मा की स्वेच्छाचारी सहायता से किया है, हिन्दुस्तान की उलझनों का वास्तविक व तीव्र चिकित्सा का प्रारम्भ समझा जावे और यदि यह अपील केवल एक अपील ही नहीं वरन् हिन्दुस्तानी कौमों को यह विश्वास दिलाये कि प्रत्येक को राष्ट्रीय अधिकार सम्मानपूर्वक सन्धि द्वारा या न्यायपूर्ण 'निर्णय' द्वारा प्राप्त होगा तो हम झिझक के बिना कह सकते हैं कि नये युग का आरम्भ हुआ है। अगला कार्य बिना विलम्ब और तार्किक परिणाम स्वरूप अवश्य पूर्ण होना चाहिये। तार्किक शब्द का प्रयोग जानबूझकर किया गया है क्योंकि जनता के नाम कथित अपील निकालने के लिये वायसराय ने जो कायदे आजम और मि० गांधी को चुना है इससे यह बात सिद्ध है कि वायसराय समझते हैं कि इस विषय पर एक को नहीं वरन् दोनों को बोलना चाहिये। इसीलिये दोनों की ओर से अपील जारी की गई है। ताकि दोनों राष्ट्र अपने अपने नेता की बात को अंगीकार करें। यदि भारतवर्ष अखंड देश होता और एक ही राष्ट्र होता तो इस अपील पर अकेले गांधी या जिन्नाह के ही हस्ताक्षर पर्याप्त होते। सांझेरूप में अपील प्रकाशित करने की कोई आवश्यकता न थी।"

इस घटना से भी गांधी जी ने मि० जिन्नाह के दरवाजे पर जाने से अपने आपको न रोका। मैं किसी का किसी सज्जन से भी मिलने का विरोधी नहीं हूं। परन्तु जब परस्पर का मिलन राजनैतिक महत्ता व प्रभाव रखता हो, तो मिलने का कार्य व्यक्तिगत नहीं रहता किन्तु वह राष्ट्र कार्य का रूप ले लेता है और इसलिये मुस्लिम लीग से मिलने के गत इतिहास को दृष्टि में न रखकर गांधी जी का मि० जिन्नाह से मिलने जाना एक दूरदर्शिता शून्य राजनीतिक अपराध है और गांधी जी इस अपराध के पूर्णतया अपराधी हैं। लाहौर के 'ट्रिब्यून' ने ९ मई सन् १९४७ के अंक में गांधी-जिन्नाह मिलन पर बड़े मार्मिक शब्दों में समालोचना की है। उस में से कुछ पंक्तियों का भाषानुवाद नीचे लिखता हूं।

"गत बारह वर्षों से कांग्रेस आशा के विरुद्ध आशा बांधती रही है। मुड़-मुड़कर मि० जिन्नाह को अपना सहयोगी और भारतीय राष्ट्र का पक्षपाती बनाने का निष्फल प्रयत्न करती रही है जिसका यह परिणाम हुआ है कि लीग का न मानने का हठ इस सीमा तक पहुंच चुका है कि हमको भारतवर्ष के विभाजन की भयप्रद स्थिति से दो चार होना पड़ा है।"

कांग्रेस भूल पर भूल करती रही और ब्रिटिश साम्राज्य कृपा पर कृपा। और इन दोनों बातों ने लीग के हाथों में वह ईंटें सौंपी जिन से उन्होंने पाकिस्तान के दुर्ग को बनाया। अनेक बार मि० जिन्नाह को पछाड़ा गया परन्तु प्रत्येक अवसर पर दयापूर्ण कांग्रेस उसके बचाव के लिये आगे बढ़ी और उसको सहारे की लकड़ी दी जिससे वह अपने पांव पर खड़ा हो सका।

केवल यही नहीं बल्कि महात्मा गांधी ने उनको कायदे-आज़म की महत्त्वपूर्ण उपाधि दी और इनके गृह पर लगातार चक्कर लगाये। इनकी वेदी पर सुगन्धित धूप जलाई इस पूजा कार्य का उच्चतन भाग उस समय पूरा हुआ जबकि महात्मा गांधी ने मि० जिन्नाह से इनके मकान पर सन् १९४४ में बम्बई में दिन प्रतिदिन चक्कर लगाये।

इस प्रकार उन्होंने उस सीढ़ी को कुछ इंच और ऊंचा कर दिया है जहां से खड़े होकर मि० जिन्नाह गैर मुस्लिम "बावनों" को घृणा से देखते हैं और असम्भव शर्तें लिखाते हैं। यह अंतिम गांधी-जिन्नाह मिलाप भी धूम्र में परिणत होगया और इस धूम्र से कायदे-आजम एक देव की भांति यह गर्जता हुआ निकला कि पाकिस्तान अनिवार्य है।

हिन्दुओं के लिए एकमात्र मार्ग

कांग्रेसी हिन्दुओं ने मि० जिन्नाह से समझौता करने की जितनी कोशिश की वह हिन्दूहितों के उतनी ही विरुद्ध पड़ी तथा देश के लिये हानिकारक हुई। कांग्रेस की इस मनोवृत्ति के होते हुये कि स्वतन्त्रता का आन्दोलन मुसलमानों को साथ लिए बिना सफल नहीं हो सकता उसके लिये मुस्लिम लीग की उपेक्षा करना असम्भव है। इस विश्वास ने हिन्दुओं के मर्म स्थान को खा लिया है और उनके अंदर असमर्थता दीनता, पर-अवलम्बन और पराजय की मनोवृत्ति को उत्पन्न कर दिया

है। उनकी यह भावना हो गई है कि स्वराज्य की प्राप्ति के लिये वे लीग की दया पर आश्रित हैं। प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल ने अपने एक लेख में इस बात का बलपूर्वक खण्डन किया था कि मुसलमानों को मिलाये बिना स्वराज्य मिलना असम्भव है। उन्होंने लिखा—

"मैं कहता हूं कि यदि स्वयं हिन्दू अपनी रियासत नहीं बना सकते तो दूसरों की सहायता से कुछ भी लाभ न होगा। दोनों ही असफल होंगे। ......मैं इस घातक भावना के विरुद्ध कि 'हिन्दू स्वयं अपना स्वराज्य नहीं ले सकते' अपनी प्रबल आवाज उठाता हूं। यह विचार हिन्दुओं के लिये हलाहल विष है। .....हिन्दुओं से यह न कहो कि अन्य जातियों की सहायता आवश्यक है। प्रत्युत उन्हें यह सिखाओ कि यदि अन्य मतावलम्बी सहायता देना चाहें तो उसे स्वीकार न करो। यह स्वराज्य का कठिन मार्ग है। जिसे अपने बाहुबल पर विश्वास है इस से उसकी विजय होगी।"

श्री सावरकर जी ने भी हिन्दुओं को यही आदेश दिया है कि हिन्दुओं को मुसलमानों से कह देना चाहिए कि "यदि आप साथ आते हैं तो आपको साथ लेकर, यदि आप नहीं आते हो आपके बिना ही, और यदि आप विरोध करते हैं तो इस विरोध के होते हुये भी हम स्वतंत्रता युद्ध जारी रखेंगे।"

कवि सम्राट् मैथिलीशरण गुप्त ने "भारत–भारती" में इन्हीं भावों को निम्नलिखित पदों में दर्शाया है।

"अपनी प्रयोजन पूर्ति क्या हम
आप कर सकते नहीं?
क्या तीस कोटि मनुष्य अपना,
ताप हर सकते नहीं?
क्या हम सभी मानव नहीं,
किंवा हमारे कर नहीं?
रो भी उठें हम तो बने,
क्या अन्य रत्नाकर नहीं?"

आओ हम भी उन्हीं की भांति यह अनुभव करें!

(८)
झण्डा

झण्डे की महत्ता

प्रत्येक राष्ट्र व देश का कोई न कोई चिह्न 'पताका' अर्थात् झण्डे के रूप में होता है। झंडा उसके आदर्श व गौरव का सूचक और इस कारण भाव व भावनाओं का उत्पादक होता है। युद्ध में झंडा सैनिकों के हृदय में उत्साह व जीवन को बलिदान करने का साहस बढ़ाता है।

"यूनियन जैक" अंग्रेजों के दिलों में अभिमान उत्पन्न करता है। मुसलमान अपने इस्लामी धर्म का सूचक 'अर्धचन्द्र व सितारा' वाला झंडा ऊंचा करने में अपना गौरव समझता है। इसी तरह वैदिक धर्मावलम्बी 'ओ३म्' का झंडा लहराकर सारे संसार में वैदिक धर्म का नाद बजाना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

इंगलिस्तान में रोमन कैथोलिक व प्रोटेस्टैंट व अन्य कई धर्म अवलम्बी मनुष्य हैं। परन्तु 'यूनियन जैक' के अन्दर धार्मिक व साम्प्रदायिक भेदों का कोई स्थान नहीं है। परमात्मा की भक्ति करने, विवाह आदि व मरने–जीने की प्रथाओं को पूरा करने में प्रत्येक साम्प्रदाय एक दूसरे के लिये प्रेमभाव दर्शाते हुये अपनी पृथकता को स्थिर भी रखें तो भी विशेष हानि होने की सम्भावना नहीं है।

कांग्रेस भारतवर्ष में एक जाति व एक राष्ट्र बनाना चाहती है, परन्तु यह उसी समय हो सकता है जब सब देशवासी अपने आपको एक ही राष्ट्र का अंग समझें और उसी के लिये जीने व मरने के लिये उद्यत रहें। समस्त भारत का कोई झंडा आर्यों के राज्य के पश्चात् नहीं बना। हिन्दू व मुसलमान राजाओं व बादशाहों के बीच एकता व राष्ट्रीयता विद्यमान न होने के कारण झंडे भिन्न–भिन्न रहे। अंग्रेजों के आगमन के बाद हिन्दू व मुसलमान दोनों ही समान रूप में परतन्त्रता की अवस्था में आ गये। भारतवर्ष को स्वतन्त्र कराने के लिये एक राष्ट्रीयता को जन्म देना चाहिये था और इसीलिए कांग्रेस को भेदभाव व भिन्नता को मिटाकर सबको एक सूत्र में पिरोने के लिए ऐसे झण्डे का निर्माण करना चाहिए था जो

एक ही राजनैतिक जाति व एक ही राष्ट्रीयता का सूचक होता। परन्तु कांग्रेस ने इस सिद्धान्त का उल्लंघन किया और अपने झंडे में तीन रंग देकर भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की मौजूदगी को स्वीकार करके उनकी विभिन्नता को स्थिर कर दिया। वर्तमान समय में मुस्लिम लीग आदि साम्प्रदायिक वर्गों की ओर से कांग्रेस के मार्ग में जो बाधाएं डाली जा रही हैं और पाकिस्तान के लिए अखण्ड भारत को खण्डित करने के लिए जो प्रयत्न किया जा रहा है उनके लिए कांग्रेस यदि पूर्णतया जिम्मेवार न मानी जावे तो कम से कम इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि कांग्रेस इन विचारों को जन्म देने व फैलाने में सहायक अवश्य हुई है। कुछ एक बातों का उल्लेख तो पहले हो चुका है, झंडे के विषय में भी कांग्रेस की भूल का वर्णन करना अनुचित न होगा।

कांग्रेसी झण्डे का निर्माण

सन् १९२१ में श्री महात्मा गांधी जी ने बैजवाड़ा में जालन्धर निवासी रायज़ादा हंसराज जी से एक ऐसा झंडा तैयार करने को कहा, "जिस पर चर्खा हो और दो रंग हों। लाल रंग हिन्दुओं के लिये हो और 'हरा' मुसलमानों के लिए।" आज्ञानुसार झण्डा तैयार हुआ। तत्पश्चात् महात्मा जी ने यह विचार किया कि "अनेक अन्य धर्मावलम्बी सम्प्रदायों का सूचक कोई रंग भी हो" अतएव सफेद रंग को बढ़ाने का निश्चय किया।

इस प्रकार झंडे के तीन रंग, एक हिन्दुओं का सूचक, दूसरा मुसलमानों का और तीसरा अन्य सब धर्मों का प्रतिपादक रंग हो गये।

सिक्खों की मांग पर महात्मा गांधी जी

कांग्रेस ने हिन्दू मुसलमानों का पृथक्-पृथक् रंग देकर अन्य सम्प्रदायों को अपनी मांगें उपस्थित करने का अवसर दे दिया। सिक्खों ने अपना 'काला रंग' देने के लिये महात्मा जी के सामने अपनी मांग पेश की। परन्तु महात्मा जी ने इसको अस्वीकार किया। १८ मई १९२१ के 'यंग इण्डिया' में लिखा, "ये मित्र (सिक्ख) इस बात को भूलते हैं कि सफेद रंग प्रायः सभी जातियों का स्वरूप है। हमें प्रान्तीय, जातीय अथवा वर्गीय नहीं होना चाहिये। मुसलमानों और हिन्दुओं के ही भिन्न-भिन्न रंग केवल इसलिए नहीं रक्खे गये हैं कि उनकी संख्या अधिक है, बल्कि इसका प्रधान कारण यह है कि वे बहुत दिनों से अलग रहते चले

आ रहे हैं। इनका वैमनस्य और भेदभाव इतना अधिक बढ़ गया है कि बिना दो रंगों के उनकी राष्ट्रीयता का व्यक्तित्व स्थापित नहीं हो सकता। जब तक एसा नहीं होगा एक-दूसरे का विश्वास भी दृढ़ता से नहीं जम सकता और इसके बिना राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति नहीं हो सकती।''

दो भिन्न रंगों को देकर हिन्दू-मुसलमानों के भेदभावों को मिटाना कितनी आश्चयजनक युक्ति है। यदि महात्मा जी के कथनानुसार हिन्दू मुसलमानों का व्यक्तित्व स्थिर ही रहना है तो फिर भारत में एक राष्ट्रीयता का स्वप्न क्यों देखा जा रहा है। और क्यों हिन्दू मुसलमानों को मिलाकर एक नई जाति व नई भाषा का निष्फल यत्न किया जा रहा है ?

महात्मा गांधी जी ने सिक्खों की मांग को अनुचित ठहराते हुए बड़ी विचारहीन युक्ति दी। ४ अगस्त सन् १९२१ के यंग इण्डिया में लिखा, ''जो जाति अपना रंग दो से भिन्न चाहती है वह अपने इस व्यवहार से यही व्यक्त करना चाहती है कि वह इन प्रधान जातियों में से किसी से भी मिल जाना नहीं चाहती। यदि हिन्दू और मुसलमानों के बीच इस तरह का झगड़ा व वैमनस्य न रहा होता तो मैं एक ही रंग रखता।''

उन्होंने यह भी लिखा , ''हिन्दुओं के साथ सिक्खों का कभी झगड़ा नहीं रहा। यदि सिक्खों का अलग रंग देना हो तो पार्सी व यहूदी क्यों यों ही छोड़ दिये जावें।'' (यंग इण्डिया १८ मई १९२१) उपरोक्त युक्ति के अनुसार क्या झंडे में लाल व हरे रंगों का प्रयोग करना इस बात का सूचक नहीं कि मुसलमान व हिन्दू परस्पर एकता रखना नहीं चाहते। महात्मा जी की सम्मति के अनुसार यदि कोई सम्प्रदाय अपना रंग पृथक् दिखवाना चाहता है तो उसे दूसरे सम्प्रदायों से लड़ाई-झगड़ा करके अपना भिन्न अस्तित्व साबित करना चाहिये। इसलिये भिन्न-भिन्न रंगों का होना भेदभावों की मात्रा को बढ़ाना है। इस कारण कांग्रेस जितनी शीघ्रता के साथ अपने तिरंगे झंडे को बदलकर एक रंग का करदे, उतना ही अच्छा है।

इसका यह परिणाम होगा कि एक दृढ़ राष्ट्रीयता बढ़ने लगेगी।

'यंग इण्डिया' के ४ अगस्त १९२१ के अंक में महात्मा जी ने यह भी लिखा, ''परस्पर मतभेद या व्यक्तित्व पर जोर देना भूल और भय से भरा है।'' फिर लिखा, ''सिक्खों की मांग पर कुछ मान्य मुसलमानों ने

मुझसे कहा कि मैं सबके लिए एक रंग सफेद अथवा लाल स्वीकार करलूं, परन्तु मैंने उसे भी अनुचित समझा। हरा और लाल दोनों रंग झण्डे में होने चाहिएं ताकि उनसे हमारी बढ़ती हुई एकता दृढ़ होती रहे।''

विरोध को स्थिर करके एकता का स्वप्न कांग्रेसी हिन्दू देख सकते हैं अन्य मनुष्यों के लिये ऐसा समझना असम्भव है।

इसके बाद इस झंडे में लाल रंग के स्थान में गेरुवा रंग के अतिरिक्त और कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कांग्रेस ने सन् १९२९ में इस को नियमानुसार स्वीकार किया।

नया अभिप्राय

चूंकि इसके रंगों पर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के द्योतक होने के कारण चारों ओर से आक्षेप हो रहे थे अत: कांग्रेस के करांची अधिवेशन १९३१ के अवसर पर कांग्रेस की ओर से एक कमेटी इस अभिप्राय से नियुक्त की गई कि वह राष्ट्रीय पताका के प्रश्न पर पुन: विचार करके ३१ जुलाई १९३१ तक रिपोर्ट पेश करे। इस कमेटी में विचार विनिमय के पश्चात् यही सुझाव पेश किया कि पुराने रंगों को बदलना उचित नहीं है। परन्तु आक्षेप का उत्तर देने के लिये इस कमेटी ने रंगों के नये एवं नितान्त अनोखे अर्थ जड़ दिये, अर्थात् इन्होंने कहा कि वास्तव में, ''केसरिया रंग त्याग और वीरता का, सफेद रंग सत्य व शान्ति का तथा हरा रंग विश्वास और शक्ति का चिह्न है।'' हम नहीं कह सकते कि वह कमेटी उपरोक्त परिणाम पर कैसे पहुंची अर्थात् कैसे इन्होंने इन रंगों के यह अर्थ निकाले। गांधी जी के लेखों के यंग इण्डिया में से जो उद्धरण ऊपर दिये गए हैं उन से यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जाती है कि यह रंग वास्तव में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधित्व के लिये चुने गए थे और यही उनका अब भी अर्थ एवं महत्त्व है। अत: कमेटी के उपरोक्त अर्थ को हम केवल मात्र आलंकारिक व्याख्या समझते हैं।

तिरंगा झंडा, मुसलमान और कांग्रेस

मुसलमानों का रंग होते हुए भी मुसलमानों ने तिरंगे झंडे के लहराने पर अनेक सभाओं में आक्षेप किये और कई स्थानों में इसके लहराने पर दंगा किया। मुस्लिम लीग ने यह मांग पेश की कि तिरंगा झंडा बदल दिया जावे या दूसरी सूरत में मुस्लिम लीग के झंडे को समान महत्त्व दिया जावे। पं० जवाहरलाल जी ने ६ अप्रैल १९३८ को मि०

जिन्नाह के नाम एक पत्र में उत्तर दिया कि "वर्तमान तिरंगे झंडे के तीन रंग इसलिये चुने गए थे कि वह विभिन्न सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व कर सकें। किन्तु हम इस साम्प्रदायिक पहलू पर अधिक बल देना नहीं चाहते। भिन्न-भिन्न वर्गों के झंडे समूचे राष्ट्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते। पिछले कुछ महीनों में कई अवसरों पर राष्ट्रीय पताका का मुस्लिम लीग के सदस्यों और स्वयंसेवकों द्वारा अपमान किया गया है, हमने कड़ी आज्ञा जारी कर दी है और उसका अब पालन भी पूर्णतया हो रहा है कि यदि मुस्लिम लीग का झंडा अनुचित रूप में भी लहराया जाये तो भी इसमें कोई हस्तक्षेप न किया जावे।"

यदि कांग्रेस मुस्लिम लीग के झंडे को अनुचित रूप में लहराने को सहन कर सकती है तो फिर सत्य व न्याय कहां रहा ? क्या कांग्रेसी हिन्दू इस बात का जवाब देंगे कि जब सिक्ख व हिन्दू वा मुस्लिम लीग अपने-अपने झंडे लहरायेंगे तो फिर कांग्रेसी झंडे की क्या अवस्था होगी ?

झण्डा कैसा हो

कांग्रेसी झंडे के निशान पर अनेक सज्जनों ने अनेक दृष्टिकोण से आक्षेप किये हैं। उन सबका उल्लेख करना इस स्थान पर आवश्यक नहीं है। चरखा उद्योग धन्धे की महानता को प्रकट करता है और उद्योग धन्धे के बिना किसी देश व जाति की आर्थिक अवस्था को शिखर पर ले जाना असम्भव है परन्तु राष्ट्र के जीवन में उद्योग धन्धे ही सब कुछ नहीं हैं। राज्य की अवस्था को नियमबद्ध रखने के लिये तथा देश की रक्षा के लिये क्षात्र धर्म का होना अति आवश्यक है। महाराज कृष्ण ने अर्जुन को क्षात्र धर्म का उपदेश देकर ही रणक्षेत्र में धर्मयुद्ध के लिये खड़ा किया था। श्री रामचन्द्रजी, महाराज शिवाजी व गुरु गोविन्दसिंह जी ने भी इसी धर्म का अवलम्बन किया। महाराणा प्रताप ने इसी के आधार पर हिन्दूपन की लाज रखी। महाराज छत्रसाल ने इसी के सहारे बुन्देलखण्ड को स्वतन्त्र कराया। इसीलिये देश में राष्ट्रीयता के उत्थान व दृढ़ता के लिये क्षात्र धर्म का चिह्न होना चाहिये। इसके अतिरिक्त आस्तिकता के भाव को दर्शाने के लिये भी कोई चिह्न होना चाहिये। 'ओ३म्' का शब्द ईश्वर भक्ति का सबसे अधिक सूचक शब्द है। इन दोनों निशानियों से किसी को विरोध नहीं हो सकता। हिन्दू महासभा के झंडे पर 'ओ३म्', 'स्वास्तिक' व 'तलवार' के चिह्न हैं और झंडे का रंग

एक है। यह झंडा भारतीय सभ्यता व राष्ट्रीयता का द्योतक है। कांग्रेस को चाहिए कि वह इस झण्डे को राष्ट्रीय पताका के रूप में स्वीकार कर ले। फिर इस झण्डे के सम्मान को ऊंचा रखने के लिए हम ऐसे गीत बनावें जो हमारे मन में स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता व देशप्रेम के उच्च भाव भरने वाले राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाओं को उत्पन्न करने वाले हों तथा जिनसे हमारी संस्कृति और सभ्यता टपकती हों। इस प्रकार के कुछ गीतों के कुछ पद यहां पर उदाहरणार्थ पाठकों के मनोरञ्जन के लिये दिये जाते हैं।

भजन नं० १

जय जय प्यारा भारत देश।
जय जय प्यारा जग से न्यारा, शोभित सारा देश हमारा।
जगत् मुकुट जगदीश दुलारा, जग सौभाग्य स्वदेश॥
जय जय प्यारा भारत देश॥
जय जय शुभ्र हिमाचल शृंगा, कलरव नृत्य कलोलिनि गंगा।
भानु-प्रताप-चमत्कृत-अंगा, विश्व-विमोहक केश॥
जय जय प्यारा भारत देश॥

भजन नं० २

यही हिमालय-सा पहाड़ है,
यही गङ्ग की धारा है।
यमुना लहराती है सुन्दर,
भारत कितना प्यारा है॥
होकर बड़े देश की सेवा,
तन मन धन से तुम करना।
जीना इसके लिए इसी के,
हित हंसते-हंसते मरना॥

भजन नं० ३

उठाये ध्वजा देश की हम फिरेंगे।
उसी के लिये हम जियेंगे मरेंगे॥
गुंजायेंगे नभ को मधुर गीत गाकर।
बितायेंगे जीवन को सच्चा बनाकर॥
कहेगा इसे भक्ति से विश्व सारा।
यही वृद्ध भारत गुरु है हमारा॥

भजन नं० ४

भारतवर्ष हमारा प्यारा, भारतवर्ष हमारा है।
दुनिया भर में प्रकृति देवी की,
आंखों का यह तारा है।
भारतवर्ष हमारा प्यारा, भारतवर्ष हमारा है।
इसका मुकुट किरीट हिमाचल,
है यज्ञोपवीत गंगाजल।
फलकर इसमें विविध फूल फल,
सुरभि सुयश विस्तारा है।
भारतवर्ष हमारा प्यारा, भारतवर्ष हमारा है।
होने को बलिदान इसी पर,
तीस कोटि सिर रहते तत्पर।
कहते हैं सब गरज-गरजकर,
भारतवर्ष हमारा प्यारा, भारतवर्ष हमारा है।

भजन नं० ५

भारत के मानसरोवर में,
आशा के कमल खिला देंगे।
केसरिया बाना धारण कर,
हम तुम पर शीश चढ़ा देंगे॥
आलस को मार भगा देंगे।
बिछुड़ों को पुनः मिला देंगे॥
भारत के बच्चे-बच्चे को,
सेवा का पाठ पढ़ा देंगे॥

(९)
वन्दे मातरम्

'वन्दे मातरम्' देशप्रेम का गीत है। इसमें देश की सुन्दरता व वीरता का वर्णन किया गया है। यह गीत बंगाल के प्रसिद्ध विद्वान् श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा रचा गया था। तत्पश्चात् अपने एक उपन्यास 'आनन्दमठ' में इसे प्रविष्ट कर दिया। सन् १८९६ में सुप्रसिद्ध कवि स्व० श्री रविन्द्रनाथ ठाकुर ने इसको गाये जाने का रूप दिया। बंगाल में यह गीत सर्वसाधारण जनता में इतना प्रिय हुआ कि प्रत्येक अवसर पर गाया जाने लगा तथा धीरे-धीरे कांग्रेस आन्दोलन का एक अंग बन गया। एक बार इसके प्रभाव को देखकर अंग्रेजी सरकार ने इसके गाने पर कुछ बाधा भी की थी।

मुसलमानों में जैसे-जैसे इस्लामी राज्य तथा पाकिस्तान का भाव बढ़ता गया, उन्होंने प्रत्येक हिन्दू रूपरेखा धारण की हुई वस्तु पर आक्षेप करने प्रारम्भ किये। 'वन्दे मातरम्' का गीत भी उनकी दृष्टि से न बचा।

मुस्लिम लीग का प्रस्ताव

१५ अक्तूबर सन् १९३७ को मुस्लिम लीग ने लखनऊ कांफ्रेंस में निम्न प्रस्ताव पास किया—"मुस्लिम लीग कांग्रेस के इस व्यवहार को कि वह 'वन्दे मातरम्' के गीत को राष्ट्रीय गीत के रूप में भारतवर्ष में प्रचलित करना चाहती है, घोर निन्दा करती है। क्योंकि 'वन्देमातरम्' का गीत अत्यन्त क्रूर व निश्चयात्मक रूप से इस्लाम के विरुद्ध है। इसके विचारों व भावों से बुतपरस्ती टपकती है। यह भारतवर्ष में वास्तविक जातीयता के उत्पन्न होने में बाधक है।"

'वन्दे मातरम्' के गीत पर मुसलमानों की ओर से किये गये आक्षेप युक्तियुक्त हैं अथवा नहीं? इसका निर्णय करने के लिये मैं उपरोक्त सम्पूर्ण गीत का अर्थसहित पाठकों के सम्मुख विचारार्थ उपस्थित करता हूं।

वन्देमातरम् गीत

वन्देमातरम्
सुजलां सुफलां मलयज शीतलाम्
शस्य श्यामलां मातरम्
शुभ्र ज्योत्सना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदल-शोभिनीम्
सुहासिनीम् सुमधुर भाषिणीम्
सुखदाम् वरदाम् मातरम्। वन्देमातरम्॥ १॥
त्रिंशत्कोटि-कंठ कलकल-निनाद-कराले
द्वित्रिंशत्कोटि भुजैधृत खर-करवाले
के बोले मा! तुमि अबले;
बहुबल धारिणीम्, नमामि तारिणीम्
रिपुदल वारिणीम् मातरम्। वन्देमातरम्॥ २॥
तुमि विद्या, तुमि धर्म, तुमि हृदि, तुमि मर्म
त्वं हि प्राणाः शरीरे।
बाहुते तुमि मा शक्ति।
हृदये तुमि मा भक्ति।
तोमारई प्रतिमा गडि।
मंदिरे मंदिरे मातरम्। वन्देमातरम्॥ ३॥
त्वं हि दुर्गा दश प्रहरण धारिणी।
कमलां कमलदल हारिणी।
वाणी विद्यादायिनी! नमामि त्वाम्
नमामि कमलाम् अमलाम् अतुलाम्
सुजलाम् सुफलाम् मातरम्। वन्देमातरम्॥ ४॥
श्यामलाम् सरलाम् सुस्मिताय भूषिताम्
धरणीम् भरणीम् मातरम्। वन्देमातरम्॥ ५॥

नोट—प्रस्तुत गीत में संख्या ३ तथा ४ के पद मुस्लिम आन्दोलन के कारण कांग्रेस ने उड़ा दिये हैं।

गीत का अर्थ—भारतमाता को नमस्कार करता हूं। भारतमाता कैसी है—यह (सुजलाम्) अच्छे जल वाली है। (सुफलाम्) अच्छे फलवाली है। (मलयज शीतलाम्) यहां मलयाचल की शीतल वायु

प्रभावित होती है। (शस्यश्यामलाम्) खेती से हरी भरी है। (शुभ्र ज्योत्सना पुलकित यामिनीम्) यहां की (धवल) चांदनी रातें आनन्ददायक हैं। (फुल्ल कुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्) फूलों से लदे हुए वृक्षों के फल सुशोभित हो रहे हैं। (सुहासनीम् सुमधुर भाषिणीम्) यहां के वासी मधुर भाषी हैं। (सुखदां वरदां) यह भूमि सुख देने वाली तथा इच्छाओं को पूरा करने वाली है। ऐसी भारतमाता को नमस्कार करता हूं।

दूसरे पद में कवि ने यह विचार प्रकट किया है कि जिस माता के ३०-३२ करोड़ मनुष्यों के कण्ठों से निकली हुई ध्वनि शत्रुओं में भय उत्पन्न करने वाली हो और जिनके हाथों में तलवार धारण करने की शक्ति हो ऐसी माता को अबला कौन कह सकता है।

तृतीय व चतुर्थ पद जो मुस्लिम आन्दोलन के कारण उड़ा दिये गये हैं, उनका अर्थ भी ध्यान देने योग्य है।

तृतीय पद में कवि ने भारत माता को सम्बोधन करके माता के प्रति अपने हृदय की भावना को प्रकट किया है।

हे माता तुम्हीं विद्या कोष हो। अर्थात् धन देनेवाली हो तुम्हीं धर्म हो अर्थात् तुम्हारी सेवा ही धर्म है। तुम्हीं (हृदि धर्म) मर्म हृदय अर्थात् अन्तस्थल हो। जैसे शरीर में हृदय का उच्च स्थान है इसी प्रकार भारत माता का स्थान भारतवासियों के लिये है।

तुम्हीं (त्वं हि प्राणाः शरीरे) शरीर में प्राण हो, अर्थात् प्राण के बिना जैसे शरीर नहीं रह सकता उसी प्रकार भारतमाता के प्रेम के बिना जाति जीवन स्थिर नहीं रह सकता।

(बाहुते तुमि मा शक्ति) मेरी भुजाओं में तुम्हारे प्रेम के कारण ही शक्ति विद्यमान है। (हृदये तुमि मा भक्ति) मेरे हृदय में तुम्हारी ही भक्ति है। (तोमारई प्रतिमा गडि, मंदिरे मंदिरे मातरम्) हे माता! तुम्हारा ही ध्यान प्रत्येक हृदय-मन्दिर के भीतर बना रहे और तुम्हारे ही प्रति कर्त्तव्य का विचार सदैव उपस्थित रहे। यही हम सबकी इच्छा हो।

इस पद में कवि ने अलंकार रूप में यह बतलाया है कि भारत माता को स्वतन्त्र कराने का विचार हर समय प्रत्येक भारतवासी के हृदय में विद्यमान रहे। 'मंदिर' शब्द से उन मन्दिरों को समझना जो भारत में पौराणिक धर्मावलम्बियों ने एक विशेष आकार के बनाये हैं। और जो मूर्ति स्थापन के कार्य में लाये जाते हैं, युक्तियुक्त नहीं है। मन्दिर का

साधारण अर्थ 'स्थान' है! अतः यहां हृदयरूपी मन्दिर ही अभिप्रेत है।

चौथे पद में भारतभूमि की भौगोलिक उत्तमता व विशेषताओं का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

"हे भारत माता! तुम्हीं दुर्गा अर्थात् दश दिशाओं से सुरक्षित हो। हृदयरूपी कमल-पत्रों को शोभित करने वाली लक्ष्मी हो। (अर्थात् तुम धन धान्य से परिपूर्ण हो और देश निवासियों के हृदयों में विराजमान हो।)" (वाणी विद्यादायिनी) तुम्हीं विद्या देने वाली हो, अर्थात् सब प्रकार के ज्ञान का उत्पत्ति स्थान हो। (कमलाम्, अमलाम् अतुलाम्) इस कारण ऐसी निर्मल अनुपम विद्या के देने वाले देश को कि जिसका जल व फल अत्युत्तम हैं, नमस्कार करता हूं। (श्यामलाम्) हरी भरी (सरलाम्) सरल सीधी, मध्य में समुद्रादि रहित (सुस्मितां) मुस्कराहट भरी जिसके वासी सदा हंसमुख रहते हैं (भूषिताम्) सजी हुई धन धान्य रत्न अलङ्कारादि से परिपूर्ण (धरणीं) पृथ्वी (भरणीं) पालने वाली (मातरम्) माता को (वन्दे) नमस्कार हो।

कितना मधुर, भावपूर्ण सरस तथा हृदयग्राही गीत है! परन्तु जैसा मैंने निवेदन किया है कि मुसलमानों ने अपने पाकिस्तानी विचार के आधीन प्रत्येक आर्य हिन्दू रूपरेखा धारण की हुई वस्तु पर आक्षेप करना अधिक धार्मिक कर्तव्य समझा हुआ है। 'वन्दे मातरम्' के गीत में 'दुर्गा', 'कमला', 'मन्दिर', 'प्रतिमा' आदि शब्दों को देखकर मुसलमानों के लिये यह असम्भव था कि यह बुतपरस्ती के बहाने से इसको इस्लाम धर्म के विरुद्ध न कहते और उसको राष्ट्रीय गीत के आसन से गिराने का आन्दोलन न करते।

मि० जिन्नाह का आक्षेप

मि० जिन्नाह ने बंगाल मुस्लिम लीग कांफ्रेंस बरहानपुर के अवसर पर २३ अक्तूबर सन् १९३७ को कहा था—"हिन्दू 'श्री' 'कमल' 'वन्देमातरम्' तथा 'हिन्दी' को राष्ट्रीय भाषा के रूप में मुसलमानों पर ठूंसना चाहते हैं। क्या यही आपस की रवादारी है?" मुसलमानों के इस नये आन्दोलन ने बंगाल में बड़ी हलचल पैदा की। पं० जवाहरलाल नेहरू आदि कांग्रेसी नेता इस आक्षेप को दूर करने के लिये किसी मार्ग की खोज करने लगे। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने इस गीत का अर्थ कवि सम्राट् स्व० रवीन्द्रनाथ टैगोर से कराया। कवि जी ने सम्भवतः अपने

पुराने विचारों के आधीन और बंगालियों की आम प्रथानुसार 'दुर्गा' व 'कमला' का पौराणिक अर्थ स्वीकार करके यह सम्मति दे दी कि तृतीय व चतुर्थ पद उड़ा दिये जावें। इस आयोजना पर अंग्रेजी के एक समाचार-पत्र (Hindusran Standard) ने अक्तूबर १९३६ में लिखा "किसी वर्ग की चुनौती पर 'वन्देमातरम्' की बलि देना एक बहुत अत्यन्त कायरता का कार्य होगा। राजनैतिक सौदे के लिये इसको एक गिरवी की वस्तु बनाना एक बड़ा भारी जुर्म होगा।"

कांग्रेस वर्किंग कमेटी नवम्बर ३७

हिन्दुओं के आन्दोलन को कांग्रेसी कार्यक्षेत्र में कोई स्थान नहीं है। इस कारण हिन्दुओं की ओर से किये गये आन्दोलन की परवाह न करते हुए कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने यह निश्चय किया, "जहां कहीं राष्ट्रीय जलसों में 'वन्देमातरम' का गीता गाया जावे, वहां केवल इसके प्रथम के दो पद गाये जावें। और इसके अतिरिक्त जलसा करने वालों को यह स्वतन्त्रता होगी कि 'वन्देमातरम्' के स्थान में कोई ऐसा ही अन्य गीत गालें परन्तु वह आक्षेप रहित हो।" इसका अर्थ यह हुआ कि सार्वजनिक सभाओं में यदि कार्यकर्ता चाहें तो 'वन्देमातरम्' का पूर्णतया बहिष्कार हो सकता है। बिहार की कांग्रेसी सरकार ने यह घोषणा भी जारी करदी कि सर इकबाल के 'सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा' गीत को प्रचलित करने की ओर कदम उठाया जाय।

पं० जवाहरलाल

पं० जवाहरलाल जी ने मि० जिन्नाह के एक पत्र के उत्तर में ६ अप्रैल सन् १९३८ को एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने 'वन्देमातरम्' के सम्बन्ध में लिखा—किसी भी गीत को कांग्रेस ने अब तक नियमपूर्वक राष्ट्रीय गायन स्वीकार नहीं किया है। लेकिन यह सच है कि तीस साल से अधिक से 'वन्देमातरम्' गायन भारतीय राष्ट्रीयता के साथ बहुत अधिक सम्बन्धित रहा है और 'वन्देमातरम्' गायन के प्रति अनेक भावनाएं पैदा हो गई हैं तथा इसके लिये अनेक बलिदान हुए हैं। लोकप्रिय गीत लोक भावना से उत्पन्न होते हैं। तीस साल के लम्बे समय में यह गीत भारत की प्रशंसा में एक राष्ट्रीय गीत समझा जाता रहा है। सरकार के द्वारा राजनैतिक आधार पर किए गए आक्षेप के अतिरिक्त आज तक इस पर अन्य कोई आक्षेप नहीं हुआ है। अब मुसलमानों के

विरोध पर दो पद उड़ा दिए गए हैं तथा इसके साथ ही यह स्वतन्त्रता दे दी गई है कि इसके स्थान में कोई दूसरा कौमी गीत बनाया व गाया जा सकता है।''

चलो! राष्ट्रीय गीत का महत्त्व भी समाप्त हुआ। जिन्नाह साहेब तो 'वन्देमातरम्' शब्द पर भी आक्षेप करते हैं। इसलिये जब दूसरा गीत चालू हो जायेगा, तो 'वन्देमातरम्' का शब्द भी दृष्टि से ओझल हो जायेगा।

श्रीयुत सावरकर जी का विचार

श्रीयुत सावरकर जी ने अहमदाबाद हिन्दू महासभा के अधिवेशन पर ३१ दिसम्बर सन् १९३७ को प्रधान पद के भाषण में कहा, ''मुसलमानों ने 'वन्देमातरम्' के गीत को अपने लिये असह्य बताया और बेचारे एकता के इच्छुक कांग्रेसी हिन्दुओं ने तत्काल ही उसको कांट-छांटकर छोटा कर दिया, किन्तु मुसलमान इस काटे हुये टुकड़े को भी सहन नहीं करेंगे। सारा गीत उड़ादो और फिर देखोगे कि मुसलमान 'वन्देमातरम्' शब्द को उड़ाने के लिये अपनी मांग पेश करेंगे। आवश्यकता से अधिक उदार कवि रवीन्द्रनाथ जी से नया गीत बनवाओ मुसलमान उससे कोई नाता न जोड़ेंगे। क्योंकि वह हिन्दू होने के कारण संस्कृत का कोई न कोई शब्द जैसे 'कौम' के स्थान में 'जाति' व 'पाकिस्तान' की जगह 'भारत' या 'हिन्दुस्तान' प्रयोग में लाने का अपराध कर देंगे। उनको कभी सन्तोष नहीं हो सकता जब तक कि ठेठ उर्दू में सर इकबाल या मि० जिन्नाह से कोई न बनवाया जावे। एकता के इच्छुक कब यह समझेंगे कि मुसलमानों की अप्रसन्नता की नींव में कुछ शब्द या कोई गीत नहीं है। हम दर्जनों गीत व सैकड़ों शब्द स्वयं अपनी इच्छा से न्यौछावर कर सकते हैं, अगर इससे भारत में वास्तविक व दृढ़ एकता हो जाय। परन्तु यह प्रश्न इतना सरल नहीं है। यह तो भिन्न-भिन्न सभ्यताओं, व नसल व राष्ट्रों की टक्कर है। और ये छोटी-छोटी बातें तो केवल मुसलमानों के दिमागों में गहरा रूप धारण की हुई बीमारी के बाह्य चिह्न हैं।''

पाठकों की सेवा में अब यह निवेदन करना है कि 'वन्देमातरम्' के गीत से बुतपरस्ती नहीं टपकती और न ही दुर्गा व लक्ष्मी आदि के शब्दों से पौराणिक मूर्तियों का आभास होता है। भारतभूमि की सुन्दरता

व उत्तमता का वर्णन करते हुए कवि ने इसको 'दुर्गा' कहा है। अतः इसको ऊपर के भावों से पृथक् करके समझना सर्वथा असंगत है। उपरोक्त विशेषणों के साथ जब हम इस शब्द को पढ़ेंगे तो हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि भारतभूमि को ही दुर्गा व लक्ष्मी कहा है। यदि इसके विपरीत समझा जाये तो दुर्गा सजला जलयुक्त कहां है, मलयज शीतला कहां है, शस्य खेती से श्यामल कहां है, उसमें सफेद चांदनी-सी रात कहां तक पुलकित होती है, उसमें फूल वृक्ष कहां हैं। दुर्गा का क्षेत्र प्रायः बंगाल तक है वहां ३० या ३२ कोटि जनता कहां रहती है?

विशेषणों को विशेष्य से संगत होना चाहिये। हमें सारी कविता पर दृष्टिपात करने पर विशेष्य पद अन्तिम पंक्ति में मिलता है। यह संस्कृत शब्द पृथ्वी का द्योतक है। ('वसुधाधरिणी क्षोणी' धनंजयः) पृथ्वी का अर्थ यहां भारत भूमि ही हो सकता है। वही भारत भूमि सजला, सुफला, मलयज-शीतला-सफेद चांदनी रात वाली, फूलों फलों वाली हो सकती है—पर तब दुर्गा का क्या अर्थ होगा यह देखना है। दुर्गा का प्रचलित अर्थ न लेकर व्युत्पत्यर्थ लेवें तो 'दर' उपसर्गपूर्वक 'गम् प्रापणे' धातु से यह शब्द बना है, जिसका अर्थ दुःख या बड़ी कठिनाइयों से जिसे प्राप्त किया जा सके। भारत भूमि चारों ओर से पर्वत और समुद्र से दुर्गम है अतः यही दुर्गा हो सकती है। इसकी पुष्टि 'दश प्रहरण धारिणी' भी भारत भूमि ही है, क्योंकि कविता में प्रयुक्त कमल का अर्थ है ३२ कोटि मनुष्यों के हृदय-कमल।

भारत माता इस हृदय कमल पर विराजमान है। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतवासियों के हृदय अपने देश के प्रेम से परिपूर्ण है।

कुछ सज्जनों ने इस गीत की भाषा पर आक्षेप किया है। इस सम्बन्ध में इतना ही कह देना पर्याप्त है कि चूंकि यह गीत एक बंगाली कवि ने बनाया था अतः यह स्वाभाविक ही था कि इसमें बंगला के शब्दों का आधिक्य हो। यदि यह बंगला गीत भारत के अन्य प्रान्तों के रहने वालों के लिये समझना कठिन है तो यही आक्षेप किसी भी अन्य भारतीय भाषा में बनाए गए गीत के विरुद्ध हो सकता है। इस देश में अनेक भाषाएं हैं अतः ऐसा गीत तो बन ही नहीं सकता जो भारत के सभी वासियों के लिये समान मात्रा में ग्राह्य हो। सर मुहम्मद-इकबाल के गीत 'सारे जहां से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा' में अनेक शब्द फ़ारसी

भाषा के हैं जिनको सर्वसाधारण नहीं समझ सकते। तो फिर क्यों न 'वन्देमातरम्' गीत को ही राष्ट्रीय गीत रक्खा जावे। यह गीत जिसके लिये सहस्रों देश भक्तों ने अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया और हंसते-हंसते वीरगति प्राप्त की, जिसको सुनकर भारतीयों के हृदय देशभक्ति से ओतप्रोत हो जाते हैं और जो भारतीय स्वतन्त्रता के युद्ध के इतिहास के प्रत्येक पृष्ठ पर अङ्कित हैं, ऐसे महान् गीत को किसी भी जाति अथवा वर्ग की इच्छा पर काट डालना अथवा पूर्णतया बलिदान कर देना अत्यन्त कायरता की बात है। 'वन्देमातरम्' गीत के प्रश्न पर कांग्रेस ने जो निर्णय किया है वह उसकी मुस्लिम पोषक नीति का एक स्पष्ट उदाहरण है। इस गीत की बलि देने में कांग्रेस ने भारत की राष्ट्रीयता की बलि दे डाली है।

कांग्रेसी सज्जनों को यह सोचना चाहिए कि अब मुसलमानों को प्रत्येक ऐसी वस्तु पर विरोध होगा जिसका किसी न किसी रूप में हिन्दुओं से अथवा उनकी संस्कृति से सम्बन्ध है।

अत: कांग्रेसी हिन्दुओं को इस मनोवृत्ति को समझ लेना चाहिये और जितनी जल्दी वह इस मनोवृत्ति को छोड़ेंगे उतना ही वह सच्ची राष्ट्रीयता का प्रचार करेंगे।

(१०)

राष्ट्रीय भाषा व लिपि

मनुष्य को एक राष्ट्र में पिरोने और स्थिर रखने के लिये एक भाषा का होना तथा उस भाषा की सुन्दरता व सरसता के लिये एक ऐसी लिपि का होना जो स्वर आदि की दृष्टि से दोषरहित हो अत्यन्त आवश्यक है। प्राचीन काल में समस्त भारत में वैदिक भाषा ही राष्ट्रीय भाषा थी। तत्पश्चात् साधारण बोलचाल की भाषा संस्कृत हो गई। समय के हेर-फेर से संस्कृत केवल विद्वानों की भाषा बन गई और सर्वसाधारण की भाषा प्राकृत अथवा 'पाली' के नाम से प्रसिद्ध हो गई। वह चार शाखाओं मे विभक्त हुई—महाराष्ट्री, शौर सैनी, मागधी व अर्ध मागधी। जब विदेशियों के आक्रमण इस देश में हुए उस समय से इस भाषा को 'हिन्दी' अथवा 'हिन्दवी' कहने लगे, अर्थात् 'हिन्द' में बोली जाने वाली भाषा। भारत की भाषा का यह नाम करण आज से १३००-१४०० वर्ष पूर्व हुआ। खड़ी बोली के रूप में यह भाषा देहली, मेरठ के आसपास बोली जाती थी और साधारण परिवर्तनों के साथ समस्त देश की राष्ट्रीय भाषा यही थी। इस भाषा का शब्दकोष अधिकतर संस्कृत से लिखा गया है। वाक्यों की रचना, शब्दों के रूप परिवर्तन आदि भी संस्कृत व्याकरण के आधार पर ही हैं। इसकी लिपि भी वही है जो संस्कृत-वर्णमाला के लिखने में प्रयुक्त होती है।

बहुत समय तक मुसलमान बादशाहों के दफ्तरों के अधिकतर कार्य हिन्दी भाषा में ही होते रहे। केवल शाही-दरबारों के अन्दर ही अरबी व फारसी प्रयोग में लाई जाती थी। धीरे-धीरे मुसलमान बादशाहों ने भारत देश पर भली प्रकार शासन करने के निमित्त अर्थात् भारतीय प्रजा से सीधे रूप में वार्तालाप करने के निमित्त हिन्दी भाषा व देवनागरी लिपि को सीखना आवश्यक समझा। इस भाषा में प्रवेश करने के उपरान्त मुसलमान बादशाह तथा मुसलमान लेखक व कवि हिन्दी की सरलता, सुगमता व भावपूर्ण गुणों पर इतने मोहित हुए कि अनेक

मुसलमान कवियों ने इस भाषा में ऐसी कविताएं रची जिनकी आज तक भी विद्वान् लोग मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। 'अमीर खुसरो', 'कबीर', 'रहीम', 'मलिक मोहम्मद जायसी', 'उसमान', 'आलम' व रसखान आदि कवियों के अमूल्य रत्नों का अवलोकन कर भारत के प्रसिद्ध नाटककार व कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने एक बार लिखा, "इन मुसलमान जनन पर कोटिन हिन्दुअन वारिये।" मद्रास प्रान्त के 'अलौर' नामक शहर में सन् १७५० के लगभग 'बाकर आग़ा' नामी एक मुस्लिम कवि हुआ। उसने फारसी लिपि में लिखे हुए अपने कवित्त को भी 'दीवाने हिन्दी' नाम से ही प्रसिद्ध किया है। हिन्दी के प्रति मुसलमानों का यह भाव हिन्दी-गद्य के आरम्भ के दिनों तक बना रहा। सन् १८०० के लगभग सैयद इंसा अल्ला खां ने अपनी 'रानी केतकी की कहानी' लिखने के लिये जिस भाषा को अपनाने का संकल्प किया उसके विषय में स्वयं लिखा है, 'जिसमें हिन्दवी छुट और किसी बोली की पुट' न हो।

हिन्दी का विस्तार

भारतवर्ष में बाद के मुसलमान बादशाहों, मुस्लिम कवियों, लेखकों व जनता के द्वारा उर्दू व फारसी शब्दों से प्रभावित तथा मिश्रित जबान को चालू करने के लिये किये गये प्रयत्नों के उपरान्त भी हिन्दी भाषा तथा उससे सम्बन्धित अन्य प्रान्तिक भाषाओं का कितना विस्तार है यह निम्नलिखित उदाहरणों से विदित हो जायेगा।

(१) महाराज तिलक ने दिसम्बर सन् १९०५ में काशी नागरी प्रचारिणी सभा के अधिवेशन पर व्याख्यान देते हुए कहा, "हिन्दी, बंगाली, मरहटी, गुजराती और गुरुमुखी आदि भाषाएं सब संस्कृत से निकली हुई हैं।"

(२) थियोसोफ़िकल सोसायटी की प्रसिद्ध कार्यकर्त्री मिसेज़ एनीबेसेंट ने अपनी पुस्तक "The Birth of New India" (नये भारत का जन्म) में उल्लेख किया है—

"Among the various vernaculars that are spoken in different parts of India, there is one that stands out strongky from the rest as that which is most widely known, it is Hindi."

अर्थात् "भारतवर्ष के भिन्न प्रदेशों में जो भाषाएं बोली जाती हैं उन में से जो सबसे अधिक बोली और समझी जाती है वह हिन्दी है।"

आपने अन्य प्रान्तीय भाषाओं के सम्बन्ध में लिखा है—

"Panjabee & Gurumukhi are dialects of Hindi. Gujrati & Marahtti are again dialects of Hindi. Bengali is softer & more poetical Hindi. A man who knows Hindi can travel over India & find every where Hindi speaking people."

अर्थात् "पंजाबी और गुरुमुखी तथा गुजराती और मराठी सब हिन्दी ही की विभाषाएं हैं। बंगाली कोमल और कवित्वपूर्ण हिन्दी है। कोई व्यक्ति जो हिन्दी जानता हो, समस्त भारत में भ्रमण कर सकता है, क्योंकि प्रत्येक स्थान पर हिन्दी बोलने वाले मनुष्य मिल सकते हैं।"

३ भारत की जुबानों की जांच की रिपोर्ट के जिल्द १ के प्रथम भाग में लिखा है—(यह रिपोर्ट १९२७ में प्रकाशित हुई)

"Over the whole of this vast area including Rajputana, Central India & Gujrat, the great mass of vocabulary including nearly all the words in common use is, allowing for variations of pronunciation the same. It is thus commonly said & believed that throughout the Gangetic valley between Bengal & the Punjab, there is one language & onlyone, Hindi with numerous local dialects."

अर्थ—इस सारे विस्तृत प्रदेश में, जिसमें राजपूताना, मध्यभारत तथा गुजरात भी सम्मिलित हैं, उच्चारण की विविधता को छोड़कर, अधिकतर शब्दावली और प्रतिदिन उपयोग में आने वाला शब्दसमूह एक ही है। यह साधारणतया विश्वास किया जाता है कि सारी गंगा की घाटी में अर्थात् बंगाल और पंजाब के बीच के प्रदेश में केवल एक ही भाषा है। यह हिन्दी है जिसकी अनेक स्थानीय विभाषाएं हैं।

४. १४ जून सन् १९४२ के 'आर्य गजट' लाहौर में श्रीयुत् के एम. मुन्शी भूतपूर्व मन्त्री बम्बई सरकार का हिन्दी की व्यापकता पर एक लेख छपा है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि "१०००० व्यक्तियों में से ९९८२ व्यक्ति भारतीय भाषाएं बोल सकते हैं। इनमें से ७२२५ में से ४०५३ व्यक्ति देवनागरी लिपि में लिखित भाषाओं का प्रयोग करते हैं और २६६२ व्यक्ति उन भाषाओं का प्रयोग करते हैं जो देवनागरी के

विविध रूपों में लिखी जाती है। इसका अर्थ यह है कि ६७१५ व्यक्ति सुगमता से देवनागरी लिपि को स्वीकार करते हैं। १०००० में से लगभग ७०० व्यक्ति वह भाषा बोलते हैं जो साधारण तथा फारसी लिपि में लिखी हुई हैं।''

५. इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने लिखा है, ''व्यापक अर्थ में हिन्दी उस भाषा का नाम है जो अनेक बोलियों के रूप में आर्यावर्त के मध्य देश अर्थात् वर्तमान हिन्द प्रान्त संयुक्त प्रान्त, महाकोशल, राजस्थान, मध्यभारत, बिहार, दिल्ली तथा पूर्वी पंजाब प्रदेश की मूल जनता की मातृभाषा है। इन प्रदेशों में प्रवासी भाई भारत के अन्य प्रान्तों तथा विदेशों में भी आपस में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करते हैं। हिन्दी भाषा का आधुनिक प्रचलित, साहित्यिक रूप खड़ी बोली हिन्दी है जो मध्य देश की पढ़ी-लिखी मूल जनता की शिक्षा, पत्र-व्यवहार तथा पठन-पाठन आदि की भाषा है और साधारणतया देवनागरी लिपि में लिखी व छापी जाती है। भारतवर्ष की अन्य प्रान्तीय भाषाओं के समान खड़ी बोली हिन्दी तथा हिन्दी के लगभग समस्त बोलियों के व्याकरण, शब्दसमूह, लिपि तथा साहित्यिक आदर्श आदि का प्रधान आधार भारत की प्राचीन संस्कृति है जो संस्कृत, पाली, प्राकृत तथा अपभ्रंश आदि के रूप में सुरक्षित है। ब्रजभाषा, अवधी, मैथिली, मारवाड़ी, गढ़वाली, उर्दू आदि हिन्दी के ही प्रादेशिक अथवा वर्गीय रूप हैं।''

उर्दू भाषा

मुस्लिम आक्रमणकारियों के समय समस्त देश में जिस भाषा का प्रयोग होता था, वह हिन्दी अथवा देवनागरी के नाम से प्रसिद्ध थी। मुसलमानों को इस देश के निवासियों से सम्पर्क स्थापित करने तथा शासन का कार्य संचालन करने के निमित्त भारत की भाषा के कुछ शब्द सीखने पड़े और इसी भांति भारतीयों को अपनी अरबी, फ़ारसी व तुर्की भाषाओं के शब्द सिखाकर मुसलमानों ने 'काम चलाऊ' भाषा का निर्माण प्रारम्भ किया संसार के प्रसिद्ध नियमानुसार राज्य-वर्ग की प्रत्येक वस्तु मूल्यवान् व आदरणीय होती है। इस कारण फ़ारसी व अरबी शब्दों की संख्या इसी प्रकार बढ़ती चली गई, जैसे वर्तमान काल में अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इसी प्रकार की

हिन्दुस्तानी तथा अंग्रेजी शब्दों से मिश्रित भाषा के लिये 'गोराशाही' अंग्रेजी शब्द प्रचलित हो रहा है। अस्तु ! बादशाही काल में अरबी व फ़ारसी शब्दों से मिश्रित हिन्दी भाषा को 'लश्करी भाषा' अर्थात् 'उर्दू भाषा' के नाम से पुकारा गया। तातारी भाषा में 'उर्दू' का अर्थ लश्कर होता है। सर सैयद अहमद के निम्नलिखित शब्द भी इसी भाव का अनुमोदन करते हैं, ''यह जुबान बादशाही बाज़ारों में मुरव्वज थी, इस वास्ते उसको जुबान उर्दू कहा करते थे और बादशाही-अमीर-उमरा इसको बोला करते थे। गोया कि हिन्दुस्तान के मुसलमानों की यही जुबान थी।'' (असारुस सनादीद, प्रथम संस्करण, बाब चौथा सन् १८४८)।

मुसलमान बादशाहों का शासन ज्यों-ज्यों इस देश में बढ़ने लगा, और इस कारण उनके सम्बन्धी, मित्र व अन्य व्यवसाइयों का फारिस, अरब तथा अफ़गानिस्तान आदि देशों से आगमन बढ़ने लगा, त्यों-त्यों इस बात की आवश्यकता बढ़ती गई कि हिन्दी भाषा को अरबी, फारसी शब्दों से इस कदर रंग दिया जावे कि साधारण न्यूनता के साथ यह शासक वर्ग के लोगों की भाषा बन जावे तथा आगन्तुकों की राह में बोलचाल के विषय में अधिक कठिनाई न रहे। इसी हेतु इस लश्करी जबान को एक बामुहावरा व फ़सीह ज़बान बनाने के लिए मुस्लिम लेखकों व कवियों ने उर्दू 'शब्द' को महत्ता देकर इसको एक प्रभावशाली भाषा बनाने का प्रयास प्रारम्भ किया। सैयद इंशा ने भी निम्नलिखित शब्दों में इसे स्वीकार किया है—''शाहजहानाबाद में खुश बयान लोगों ने एकमत होकर अन्य अनेक भाषाओं से दिलचस्प शब्दों को जुदा किया और कुछ शब्दों तथा वाक्यों में हेर-फेर करके दूसरी भाषाओं से भिन्न एक अलग नई भाषा ईजाद की और उसका नाम 'उर्दू' रख दिया।''

सांस्कृतिक भेद

मुसलमानों ने उर्दू कविताओं व लेखों में इस्लामी धर्म की बातें, गाथाएं व अरब की प्रथा आदि भरनी आरम्भ कीं। 'भीम' का स्थान 'रुस्तम' ने लिया, 'धन्वन्तरी' का 'लुकमान' ने। 'कुबेर' के स्थान में 'कारू' का नाम प्रयोग में आया। गंगा को छोड़कर दज़ला के गीत गाये जाने लगे। अतएव उर्दू कविता में भारत की वीरता, ऋतु की सुन्दरता यहां की प्रथाओं व धर्म की गाथाओं का वर्णन करना अनुचित समझा

गया। मि० रामबाबू सक्सेना ने लिखा है, ''उर्दू कविता फ़ारसी से उत्पन्न हुई। इसमें ऐसे हिस्से प्रचलित हुए जिनसे भारत की पवित्र भूमि अपरिचित है। उदाहरणीय 'लैला मजनूं का किस्सा', 'शीरीं फरहाद' का प्रेम, 'रुस्तम व असफंद यार' की वीरता, ज्यूं हूं सिह्युं की बाढ़।''

इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर श्री पं० अमरनाथ झा ने एक बयान में कहा—

"Urdu has adopted the script, the material forms, frame work & symbolism of a literature that came from Persia & that except in rare instances does not depend upon inspiration on anything Indian."

अर्थात् उर्दू ने लिपि की आवश्यक सूरत व रंग-ढंग उस साहित्य से लिया है जो फारिस से आया है और कतिपय उदाहरणों को छोड़कर भारत की किसी भी वस्तु से कोई भी भाव अथवा भावना ग्रहण नहीं की है।

इसके विरुद्ध हिन्दी भाषा की कविताओं व लेखों में भारतवर्ष के दिल दिमाग़ व भुजाओं के कारनामे व यहां की प्रथाएं, ऋतु की सुन्दरता, पहाड़ी रमणीक स्थानों के वर्णन आदि व्यक्त हैं। तुलसीदास की रामायण, गुरुनानक के शब्द, कबीर के दोहे, महर्षि स्वामी दयानन्द जी के लेख व रचनाएं आर्य-संस्कृति व वैदिक धर्म के विचारों से भरपूर हैं।

इन दोनों भाषाओं में संस्कृति का इतना भेद हो गया है कि इन दोनों को मिलाकर इनको 'हिन्दुस्तानी' भाषा का नाम देकर और लिपियों की स्वतन्त्रता प्रदान करके मुसलमानों की मांग को पूर्ण करने के हेतु कांग्रेस का प्रयत्न सर्वथा व्यर्थ व निराशाजनक है। मुसलमान उर्दू को भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाने का स्वप्न देख रहे हैं परन्तु अरबी व फारसी शब्दों से ओतप्रोत उर्दूभाषा को इस की राष्ट्रीय भाषा बनाना असम्भव है। मुसलमानों के लिए जो अपना नाता विदेशी इस्लामी देशों से जोड़ने का स्वप्न देख रहे हैं हिन्दी भाषा को स्वयं सीखना तो दूर रहा इसका फूलना फलना भी उनके लिये असह्य है। वह तो जिस प्रकार भी सम्भव हो इस्लामी संस्कृति का प्रचार करना चाहते हैं और उर्दू की शिक्षा को उसी का साधन बनाना चाहते हैं।

सरहद प्रान्त में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के प्राइमरी स्कूलों में जहां कि

हिन्दू व सिक्ख लड़के भी पढ़ते हैं, उर्दू की पुस्तकें ऐसी पढ़ाई जाती हैं, जो इस्लामी धर्म की बातों से रंगी हुई हैं। पेशावर के 'फ्रंटियार एडवोकेट' पत्र (७ जुलाई सन् ३६) ने ऐसी पुस्तकों में से कुछ टुकड़े दिये हैं। पाठकों की सूचना के लिये उदाहरणार्थ उनमें से एक टुकड़ा पर्याप्त होगा—"मेरा अक़ीदा (विश्वास) है कि जब मुर्दा कब्र में दाखिल होता है और 'मुन्कीर व नकीर' दो फरिश्ते उसके पास आते हैं, उससे तीन सवाल करते हैं। (१) तेरा रब कौन है? (२) तेरा दीन क्या है? (३) तेरा नबी कौन है? यदि वह इन सवालों का जवाब दे कि मेरा रब अल्लाह है जिसने मुझे पैदा किया, जिसने मुझे खाने को दिया। मेरे नबी हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा हैं और मेरा दीन इस्लाम है तो उस पर खुदा की रहमत नाजिल होनी शुरू हो जाती है।"

मुसलमानों का प्रयत्न

उर्दू को भारत की राष्ट्रीय भाषा बनाने का मुसलमानों का प्रयत्न कोई नया नहीं है। वे बर्तानवी राज्य की स्थापना के समय से ही इस सम्बन्ध में पूरा प्रयत्न कर रहे हैं। बर्तानवी राज्य की स्थापना पर सरकार ने इस बात पर विचार किया कि कचहरी की भाषा व शिक्षा का माध्यम क्या हो? मुसलमानों ने उर्दू भाषा व फारसी लिपि को प्रचलित कराने के लिए बलपूर्वक आन्दोलन आरम्भ किया। हिन्दीप्रेमियों ने भी हिन्दी के पक्ष में कुछ आन्दोलन किया। एक बार यू०पी० और बिहार के प्रान्तों के सम्बन्ध में सरकार ने हिन्दी प्रेमियों के साथ कुछ सहानुभूति प्रकट की। इस पर मुसलमानों ने इतना क्रोध प्रकट किया, जिसका शब्दों में वर्णन करना असम्भव है। सन् १८७२ में बनारस के 'मेडिकल हाल प्रेस' में मुसलमानों की बैठक हुई। उस समय सर सैयद अहमद साहब ने निम्नलिखित शब्द कहे, "मुसलमानों के हक़ में अब यह बात मुफ़ीद नहीं है कि कोई अम्र उनके फ़ायदे और उनकी हालत के मुनासिब किया जाये.....तमाम देहाती और तहसीली मक़तब बिल्कुल हिन्दी और नागरी कर दिये जावें, तमाम अदालतों की जुबान और खत बिल्कुल हिन्दी और नागरी कर दिया जावे ताकि मुसलमानों की हालत ऐसी अबतर और खराब हो जाये कि उनकी तमाम चीजें तमाम जरूरियात बिल्कुल नेस्त और नाबूद हो जावे और किसी किस्म का रोजगार उनको मुयस्सर न हो।"

जब कांग्रेस भारतवर्ष के राजनैतिक रंग मंच पर आई, मुसलमानों ने मुस्लिम लीग तथा अन्य सभाओं द्वारा भारतवर्ष में राष्ट्रीय भाषा बनाने हेतु 'उर्दू' भाषा की आवश्यकता व उपयोगिता का शोर मचाकर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये इसको एकमात्र साधन बतलाना आरम्भ किया।

लखनऊ में १५ अक्तूबर सन् ३७ को मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ जिसमें 'उर्दू' के विषय में निम्न प्रस्ताव पास किया गया।

(१) उर्दू भाषा अपनी बनावट व तरतीब के अनुसार समस्त भारत की भाषा है। (२) उर्दू भाषा हिन्दू-मुस्लिम सभ्यता के परस्पर मेल से बनी है और इसमें दोनों सम्प्रदायों के विचारों व भावनाओं को रखने की सबसे अधिक शक्ति है। (३) उर्दू भाषा सर्वसाधारण भाषा के रूप में भारतवर्ष के अधिक भाग में बोली जाती है। और इस कारण विदेशियों ने भी इसे हिन्दुस्तानी अथवा हिन्दुस्तान की जुबान कहा है। (४) उर्दू भाषा ही भारत की सम्मिलित जातीय उन्नति के लिये आवश्यक साधन है। 'हिन्दुस्तानी' नाम से जो नई भाषा बनाई जा रही है वह बनावटी और जनता की साधारण बोलचाल से इतनी दूर है कि वह 'उर्दू' की जड़ ही उखाड़ देगी। और मुस्लिम जनता की बढ़ती हुई उन्नति में बाधा डाल देगी।

इस प्रस्ताव को पास करने के बाद मुस्लिम लीग ने अपील की। (१) जिस प्रान्त में उर्दू भाषा प्रचलित है उसकी रक्षा व उन्नति में कोई कमी न रक्खी जावे। (२) जिन स्थानों में साधारण रूप में प्रयुक्त नहीं हो रही हो वहां मुसलमानों को उर्दू के पढ़ने के लिये सुविधाएं दी जायें। (३) गवर्नमेंट के दफ्तरों, धारा सभाओं, रेलवे व डाकखानों में उर्दू के प्रयोग के लिये प्रबन्ध हों।

मद्रास में राज्य की ओर से हिन्दुस्तानी भाषा जारी करने की आज्ञाएं दी गईं। इस पर मि० जिन्नाह ने आक्षेप किया कि "मद्रास की कांग्रेसी बजारत हिन्दुस्तानी अथवा हिन्दी को चालू करके उर्दू को कुचलना चाहती है।"

इसका उत्तर ४ फरवरी सन् ३८ को मि० जिन्नाह के नाम पं० जवाहरलाल ने एक पत्र में दिया कि मद्रास की वजारत ने स्कूलों में जारी करने के लिये (पुस्तकें) खास तौर पर 'जामेमिलया' से तैयार करवाई हैं और यह पुस्तक देवनागरी व उर्दू लिपि में है।" कांग्रेसी हिन्दुओं का

मुसलमानों के पक्ष में इससे अधिक तरफदारी का उदाहरण मिलना कठिन है। क्या मद्रास सरकार ने हिन्दू-मुसलमान दोनों की कोई सम्मिलित कमेटी न बनाई गई ? और उसे केवल एक मुस्लिम सभा 'जामेमिलिया' की पुस्तकों को तैयार करने के लिये मिली ?

बंगाल सरकार के प्रधानमन्त्री मि० फ़ज़लुलहक़ ने १ अक्तूबर सन् ३८ को पटने में भारतवर्षीय मुस्लिम तालीमी कांफ्रेंस के प्रधान पद के आसन से भाषण देते हुए कहा कि "भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा के लिये 'उर्दू' सर्वथा योग्य है।" और सी०पी० प्रान्त में स्कूलों को 'विद्या मन्दिर' का नाम देकर मज़हबी तौर पर मुसलमानों के दिल को दुखाया जा रहा है।.....जिस विषय पर सब मुसलमान सर्वसम्मति से जोर दे रहे हैं वह उर्दू की शिक्षा देना है और हिन्दी की शिक्षा के लिये कांग्रेस की जद्दोजहद साम्प्रदायिक विचार पर निर्धारित है।"

मि० फ़ज़लुल्हक़ को उर्दू की शिक्षा तो साम्प्रदायिक नहीं दिखाई दी परन्तु हिन्दी को उन्होंने साम्प्रदायिक समझा। कांग्रेस को भी जो स्वयं हिन्दी का नाम लेती हुई डरती है, यह कहकर बदनाम किया, "कांग्रेस मद्रास में शब्द 'हिन्दुस्तानी भाषा' हिन्दी के लिए और सी०पी० में "पाठशालाओं" के लिये "विद्यामन्दिर" नाम देकर उर्दू को कुचलना चाहती है।"

हिन्दुस्तानी भाषा

कांग्रेस ने हिन्दी-उर्दू झगड़े को निपटाने की ओर ध्यान दिया। यदि कांग्रेस न्याय पर आरूढ़ रहती तो उसके लिये एक ही मार्ग था अर्थात् वह हिन्दी को भारत की राष्ट्रीय भाषा स्वीकृत कर लेती। परन्तु मुसलमानों को हर कीमत पर प्रसन्न करने के वहम ने उन्हें इस मामले में भी सीधे और न्याययुक्त मार्ग से भरमा दिया। कांग्रेस ने राष्ट्रीय भाषा की गुत्थी सुलझाने के लिए एक अनोखी बात निकाली और कहा कि भारत की राष्ट्रीय भाषा हिन्दुस्तानी है और देवनागरी तथा फारसी दोनों लिपियों में लिखी जा सकती है।

ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने सितम्बर सन् ३८ को देहली में 'हिन्दी' 'उर्दू' के प्रश्न पर अपनी नीति को स्पष्ट किया—"कांग्रेस भारत की राष्ट्रीय भाषा को 'हिन्दुस्तानी' नाम से पुकारती है, जो नागरी व फारसी दोनों लिपियों में लिखी जा सकती है।" इतना ही नहीं बल्कि

कमेटी ने कांग्रेसी जनता के लिये यह भी घोषणा की—"यह कमेटी सब कांग्रेसियों को हिदायत करती है कि वह 'हिन्दुस्तानी' को सर्वप्रिय बनावें और 'हिन्दी' 'उर्दू' के वाद-विवाद में कोई भाग न लें।"

कांग्रेस में मुसलमान तो बहुत थोड़े हैं इसलिये यदि वह भाग न भी लें तो भी 'उर्दू' के आन्दोलन में कोई हानि नहीं पहुंचती किन्तु 'हिन्दी' के पक्ष में हिन्दुओं की ओर सहायता न पहुंचने की सम्भावना अवश्य हो गई।

संयुक्त प्रान्त में सरकार की ओर से 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' के नाम से एक सभा बनाई गई है। इसमें 'हिन्दुस्तानी' भाषा की यह व्याख्या की है—

'हिन्दुस्तानी' भाषा से एक ऐसी भाषा अभिप्रेत है जिसको सावधानी के साथ प्राचीन भाषाओं की शब्दावली से स्वच्छ कर दिया गया हो और वह ऐसी न हो जिसका प्रयोग देहली और लखनऊ के प्रान्त में न होता हो।

देहली लखनऊ के प्रान्त की सर्वसाधारण भाषा के लिए 'हिन्दुस्तानी' शब्द यदि इस आधार पर छांटा गया है कि इस प्रान्त के आदमियों को साधारणतया अन्य प्रान्तों के मनुष्य 'हिन्दुस्तानी' के नाम से पुकारते हैं तो फिर 'हिन्दी' शब्द से कांग्रेस को क्यों डर लगता है। 'हिन्द' सारे देश का नाम है इसलिये इसमें सबसे अधिक प्रयोग में आने वाली भाषा को 'हिन्दी' शब्द से पुकारने में कोई अड़चन नहीं होनी चाहिये। सारे देश में प्रचलित व प्रयोग में आने वाली हिन्दी भाषा के स्थान में एक छोटे से प्रान्त की भाषा को 'हिन्दुस्तानी' कहकर उसको सारे देश की राष्ट्रीय भाषा बनाने का प्रयत्न करना कोई बुद्धिमत्ता व राजनैतिक हित का काम नहीं है। किन्तु मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए कांग्रेस को कोई नया शब्द निकालना ही था, इसलिये 'हिन्दुस्तानी' शब्द निकालकर हिन्दू-मुस्लिम एकता का ढोंग रच दिया।

२२ मार्च १९३८ को पटना में एक बैठक हुई। इसके सभापति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जी थे। इस सभा ने निश्चय किया कि "हिन्दुस्तानी वह ज़बान है जो शुमाली हिन्द में मामूली बोलचाल में और आपस के मेल-मिलाप के वक्त इस्तेमाल की जाती है तथा जो हिन्दी और उर्दू की मुश्तरिक बुनियाद है।"

अब यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि इस 'हिन्दुस्तानी' भाषा का शब्द कोष क्या हो। यह शब्द कोष तैयार करने का कार्य उपरोक्त कमेटी ने डॉ० मौलाना अब्दुल हक़ को सौंप दिया है। अब मौ० साहब ने कोष के सम्बन्ध में अपनी नीति को निम्न शब्दों में स्पष्ट किया है, "इसमें वह तमाम अरबी, फ़ारसी लफ्ज़ आ जाने चाहिएं, जो मुस्तनिद हिन्दु मुसन्निफ़ों ने इस्तेमाल किये हैं। इसी तरह वह तमाम हिन्दी और संस्कृत अल्फ़ाज़ भी शरीक़ किये जायें, जो मुस्तनिद उर्दू मुसन्निफों के कलाम में पाये जाते हैं।"

मुसलमानी काल के आरम्भ में उर्दू तो कोई जबान थी ही नहीं। समय के व्यतीत होने पर जब उर्दू का नाम प्रचलित हुआ तो वह ऐसी भाषा के लिये हुआ जो अरबी व फारसी शब्दों से ओतप्रोत थी। इसलिये उर्दू मुसन्निफों के कलाम में संस्कृत और हिन्दी के बहुत ही थोड़े शब्द मिल सकते हैं। इसके विपरीत हिन्दी लेखकों एवं कवियों में वे समस्त सज्जन शामिल हैं जो मुसलमानी काल में कविता रचते रहे हैं। अतः इनमें हिन्दू व मुसलमान, दोनों शामिल हैं। मुसलमानों ने हिन्दी रचनाओं में इस्लामी शब्द भरे और मुस्लिम बादशाहों को प्रसन्न करने के लिये हिन्दुओं ने भी उनका ही अनुसरण किया। 'रिसाला उर्दू' जनवरी सन् ३३ में प्रकाशित मौ० अब्दुल हक़ की सम्मति के अनुसार "उस वक्त की किसी हिन्दू मुसन्निफ़ की किताब को उठाकर देखिये। वही तर्ज तहरीर है और वही असलूब बयान है। इब्तदा में बिस्मिल्लाह लिखता है। हम्द व नातव मन्कबत से शुरू करता है। शरई इस्तलाहात तो क्या हदीस व नत कुरान तक बेतकल्लुफ लिखा जाता है। इन किताबों के मुताला से किसी तरह मालूम नहीं हो सकता कि यह किसी मुसलमान की लिखी हुई नहीं।"

मुसलमान साहेबान को हिन्दी-लेखकों की ओर से तो कोई चिन्ता ही नहीं, क्योंकि उनकी रचनाओं से तो फारसी व अरबी के शब्द ही लेने हैं, इसलिये उनमें कांट-छांट की आवश्यकता ही नहीं। रहा मुस्तनिद 'उर्दू मुसन्निफ़' का प्रश्न, इस क्षेत्र में मुसलमानों ने हिन्दुओं को जहां तक हो सका निकालने का प्रयत्न किया। दरियाये लताफत अंजुमन तरक्की उर्दू सन् १९१६ में लिखित सैयद इंशा की सम्मति के आधार पर मुस्तनिद उर्दू वह है जो अहले इस्लाम की और उनमें भी विशेषता

हिन्दुस्तान के बादशाह, उनके उमरा व बेगमात की जबान है।''

अत: यह बात स्पष्ट है कि मौलवी अब्दुलहक़ के आधीन तैयार किया हुआ कोष अरबी व फारसी शब्दों का कोष होगा और इसी कोष के आधार पर 'हिन्दुस्तानी' भाषा तैयार होगी।

स्वयं कांग्रेस की दृष्टि से 'हिन्दुस्तानी' भाषा क्या और कैसी होगी, इसका अनुमान निम्न पंक्तियों से लगाया जा सकता है। कांग्रेस की ओर से हिन्दुस्तानी भाषा को पाठशालाओं में पढ़ाने के लिये 'महमूद सीरीज़' के नाम से कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इनमें दशरथ जी व रामचन्द्र जी के लिये 'महाराज' के स्थान में 'बादशाह' का शब्द लगाया गया है। इसी सीरीज़ की एक पुस्तक जगत्गुरु शंकराचार्य के सम्बन्ध में है। एक अछूत के प्रति जगद्गुरु के मुख में जो शब्द रक्खे गए हैं, वे अत्यन्त आश्चर्यजनक है—''हां बेशक हिन्दूधर्म के हिसाब से तू यकीनी काबिले नफरत है।'' एक और पुस्तक 'रंग में भंग' के अन्दर पंडितों की परस्पर की बातचीत दी गई है। उसमें हिन्दी के शब्द 'सन्तान', 'स्वर्ग', 'नरक' आदि के स्थान में फारसी शब्द 'औलाद' तथा जन्नत रक्खे गये हैं।

पं० रामलाल—औलाद से सिवा रंज के कुछ नहीं मिलता।

पं० श्यामलाल—औलाद दुनिया को जहन्नुम बना देती है।

पं० कर्ता किशन—औलाद दुनिया को जन्नत बना देती है।

हिन्दुस्तानी भाषा के इस कलेवर को देखकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के शिमला अधिवेशन के सभापति श्री बाबू राजविष्णु पराड़कर ने इसके सम्बन्ध में कहा—''हिन्दुस्तानी नाम की जिस भाषा का प्रचार मद्रास सरकार अपने स्कूलों में करने जा रही है उसके सम्बन्ध में उर्दू के अभिमानियों को संतुष्ट रखना ही प्रचारकों का मुख्य उद्देश्य मालूम होता है। एक क्षुद्र कांग्रेस जन के नाते ही मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि कांग्रेस में यह प्रवृत्ति बहुत बढ़ गई है और इसका परिणाम बुरा हो रहा है।''

कांग्रेस ने उपरोक्त प्रकार की हिन्दुस्तानी भाषा को दोनों लिपियों (देवनागरी तथा फारसी) में चालू करने का प्रयत्न करके राष्ट्रीय भाषा की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया, परन्तु मुसलमान तो 'उर्दू' शब्द व फारसी लिपि को ही भाषा के रंगमंच पर देखना चाहते हैं। उनके लिये कांग्रेस की ओर से गढ़ा हुआ 'हिन्दुस्तानी' शब्द भी सर्वथा

अमान्य एवं घृणास्पद है। इसलिये कांग्रेस का यह प्रयत्न राष्ट्रीय भाषा की गुत्थी को सुलझाने में असमर्थ है।

राष्ट्र लिपि

भारत की विविध भाषाओं की विविध लिपियां हैं। परन्तु सबसे अधिक प्रयुक्त होने वाली लिपि देवनागरी है। क्योंकि वह हिन्दी भाषा की तो लिपि है ही परन्तु थोड़े हेर-फेर के साथ भारत की कई अन्य प्रान्तिक भाषाओं की भी लिपि है इस दृष्टि से देवनागरी लिपि ही भारत की राष्ट्रीय लिपि होने की अधिकारिणी है। इस लिपि की व्यापकता तथा प्राचीनता के अतिरिक्त सरलता और वैज्ञानिकता की दृष्टि से यह लिपि न केवल भारत में अपितु संसार भर की लिपियों में अपना जोड़ नहीं रखती। इसकी इस लिपि में एक ध्वनि के लिये एक ही अक्षर है और एक अक्षर की एक ही ध्वनि। इसकी उत्तमता की संसार के अनेक भाषाविज्ञों ने मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। इस सम्बन्ध में मैं कुछ राय पेश करता हूं—

महाराज तिलक ने दिसम्बर १९०५ में नागरी प्रचारिणी सभा के अवसर पर व्याख्यान देते हुए कहा, "अक्षरों व आवाजों को पाणिनि मुनि ने ऐसे पूर्णरूप में श्रेणीबद्ध किया है कि किसी और भाषा में इसका उदाहरण नहीं मिलता। इस भाषा में एक अक्षर के लिये एक आवाज और एक आवाज के लिये एक ही अक्षर है।"

अनेक मुसलमान विद्वानों ने पक्षपात रहित होकर देवनागरी लिपि की उत्तमता व श्रेष्ठता को दर्शाया है। 'जमाना' पत्रिका के जुबली अङ्क (सन् १९२८) में मुसलमानों के प्रसिद्ध नेता ख्वाजाहसन निजामी ने लिखा है, "मुसलमानों को यह खयाल करना चाहिये कि हिन्दी रस्म-उल-खत हिन्दुस्तान का है जो हमारा मौजूदा वतन है और हमारे हिन्दू पड़ौसियों और मुल्की भाइयों का रस्म-उल-खत है। इस वास्ते हमें भी इस रस्म-उल-खत की हिफ़ाजत और तरक्की में हिस्सा लेना चाहिये।"

श्रीमान् हारूं खां साहब शेरवानी प्रोफेसर उस्मानिया कालेज हैदराबाद दक्खिन, रिसाला 'उर्दू' अक्तूबर सन् १९२२ में लिखते हैं, "इसमें किसी किस्म का शुबा करने की गुंजाइश ही नहीं कि हिन्दी में तो हत्त-उल-मकदूर हर तहरीर का मकसद यह ही होता है कि पढ़ने वाला वही पढ़े जो लिखने वाले ने लिखा है। मौजूदा उर्दू रस्म-उल-खत में यह खूबी नहीं पाई जाती।"

रिसाले 'ज़माना' जुलाई १९३७ में जनाब सैयद इब्न हसन शारक़ बी.ए.बी.टी. ने एक लेख में लिखा है, "हिन्दी रस्म-उल-खत दरहकीकत बहुत सहल और आसान है।"......उर्दू रस्म-उल-खत में आवाज और हर्फ में मुताबक़त नहीं है।

उर्दू लिपि में अनेक दोषों का उपरोक्त लेखक तथा अन्य कई लेखकों ने उदाहरण दिया, उनमें से कुछेक इस जगह पर लिखता हूं—

उर्दू लिपि के अक्षर	देवनागरी लिपि में उसी ध्वनि का अक्षर	उर्दू अक्षरों का उच्चारण	इच्छित ध्वनि से अधिक ध्वनियां जो उर्दू अक्षरों में निकलती हैं
ا	अ	अलिफ	लि+फ
ج	ज	जीम	इ+म
د	द	दाल	आ+ल
س	स	सीन	ई+न
ص	स	सुवाद	उ+वा+द
ط	त	तोए	ओ+ए
ت	त	ते	ऐ

उपरोक्त विवरण से उर्दू लिपि की एक और भी न्यूनता प्रकट होती है कि एक ही ध्वनि के लिये एक से अधिक अक्षर बनाये गये हैं। जैसे—'س' 'ص' 'ث' भिन्न-भिन्न शक्लों के अक्षरों की ध्वनि एक ही प्रकार की है। जैसे उर्दू इमला में 'सालिम', 'साबिर', 'सालिस' लिखने के लिए कर्म अनुसार س ص ث का प्रयोग करते हुए एक ही ध्वनि 'स' से पुकारे जाते हैं।

हिन्दी भाषा तथा लिपि की सुन्दरता, कोमलता, मधुरता व सरलता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है, कि इस्लामी राज्य का प्रभुत्व दूर होते ही देवनागरी लिपि में रचित पुस्तकों की संख्या बढ़ने लगी। सन् १८८९ में संयुक्त प्रान्त में प्रकाशित उर्दू पुस्तकों की संख्या ५६९ थी और हिन्दी पुस्तकों की ३६१। परन्तु सन् १९३६ में केवल

२५२ उर्दू पुस्तकें प्रकाशित हुईं और हिन्दी में २१३९ पुस्तकें। दूसरे प्रान्तों में भी इसी प्रकार हिन्दी की उन्नति हुई।

महात्मा गांधी जी ने राष्ट्रीय भाषा और राष्ट्र लिपि पर अपने विचार अनेक बार प्रकट किये हैं। वे आजकल इस बात पर बहुत जोर दे रहे हैं कि प्रत्येक भारतीय को दोनों लिपियां सीखनी चाहिएं। परन्तु कुछ दिन पहले ही वे हिन्दी तथा देवनागरी लिपि के कट्टर पक्षपाती थे। उन्होंने ता० ३-४-३७ के एक भाषण में यह कहा कि "सर्व सामान्य लिपि देवनागरी ही हो सकती है और कोई नहीं। उर्दू को इसकी प्रतिद्वन्द्वी बताया जाता है। लेकिन मैं समझता हूं कि 'उर्दू' या 'रोमन' किसी में भी वैसी सम्पूर्णता और ध्वन्यात्मक शक्ति नहीं है जैसी कि देवनागरी में है।" इसी आशय को उन्होंने एक पत्र का उत्तर देते हुये दुहराया है, "मैं पत्र लेखक की इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं कि 'उर्दू' ज्यादा विकसित, ज्यादा खूबसूरत, ज्यादा लुभावनी, ज्यादा मुख्तसिर और ज्यादा अर्थसूचक यानी थोड़े में बहुत करने वाली जबान है।" एक और स्थान पर उन्होंने लिखा कि "जहां तक देवनागरी का सवाल है सौन्दर्य या सजावट की दृष्टि में लज्जित होने जैसी कोई बात इसमें नहीं है।" परन्तु मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये गांधी जी ने अपने विचार बदल लिये हैं। फरवरी १९४५ में वर्धा में उर्दू कांफ्रेंस का सभापतित्व करते हुये महात्मा गांधी जी ने कहा—"उर्दू और हिन्दी दोनों लिपियां सीखनी चाहिएं।"

लिपि पर दिये हुये गांधी जी के उपरोक्त विचारों में कितना अन्तर है। यह पाठकगण स्वयं जान लेंगे। देश को शिक्षित बनाने जैसे आवश्यक विषय को किसी वर्ग की प्रसन्नता के निमित्त तोड़-मरोड़कर जनता के सम्मुख रखना कांग्रेस के महान् नेता को शोभा नहीं देता।

उपरोक्त परिस्थिति पर दृष्टिपात करते हुए यह कहना पड़ता है कि केवल मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिये ही कांग्रेसी हिन्दू हिन्दी का गला घोटना चाहते हैं। उर्दू को हिन्दी के बराबर मानना अथवा हिन्दी के स्थान पर 'हिन्दुस्तानी' को स्थापित करने का प्रयत्न करना नितान्त अन्यायपूर्ण, पक्षपात युक्त तथा मानसिक दुर्बलता व दब्बूपन का परिणाम

है। कांग्रेस तथा कांग्रेसी नेताओं को जो पथ-प्रदर्शक का कार्य करने वाले कहे जाते हैं, यह शोभा नहीं देता कि वह ऐसे गम्भीर प्रश्नों पर सीधा व निश्चित मार्ग बताने से हिचकिचावें। फारसी या नागरी लिपि में जो भी उनकी सम्मति में ठीक हो उसका उनको निर्भयता से प्रचार करना चाहिये।

कांग्रेस ने फ़ारसी व हिन्दी दोनों लिपियों को सीखने की स्वतन्त्रता दी है। मगर मुसलमानों को वह भी सहन नहीं है। २५ अक्तूबर सन् ३६ को लाहौर में अहरार पार्टी के उत्सव पर यह प्रस्ताव पास हुआ, "यह जलसा कुछेक हिन्दू नेताओं के उन प्रयत्नों के विरुद्ध जो वे भारत की सम्मिलित 'भारतीय' भाषा को हिन्दी 'लिपि' के साथ जोड़ने के लिये कर रहे हैं, शोक प्रकट करता है और करांची कांग्रेस के उस निश्चय के विरुद्ध समझता है जो मौलिक अधिकारों पर निर्धारित था। इसलिये यह कांफ्रेंस कांग्रेस से अनुरोध करती है कि वे साहस से काम लेकर उन साम्प्रदायिक हिन्दू नेताओं का घोर विरोध करें।"

प्रस्तावक ने अपने भाषण में कहा—"उर्दू हिन्दी का झगड़ा पैदा करके दो जातियों के बीच झगड़ा पैदा न किया जावे, जिससे हिन्दुस्तान में नया साम्प्रदायिक युद्ध आरम्भ हो जावे। इसलिये एकता पैदा करने के लिये 'उर्दू' ही राष्ट्रीय भाषा रखी जावे।"

रोमन लिपि

सन् १९३८ की हरीपुर कांग्रेस के प्रधान पद के भाषण में श्रीयुत बाबू सुभाषचन्द्र बोस ने 'रोमन लिपि' को प्रयोग में लाने के पक्ष में युक्ति देते हुए कहा—

"I am inclined to think that the ultimate solution and the best solution would be the adoption of a script that would bring us into line with the rest of the world."

अर्थ—"मेरी यह विचारधारा है कि इस प्रश्न का सबसे उत्तम और अन्तिम हल यह है कि हम ऐसी लिपि को धारण करें, जिससे हमारा सम्बन्ध दुनियां के अन्य देशों से होकर एक समान हो जावे।"

लिपि का निर्णय करने के लिये श्रीयुत् सुभाष बाबू ने बतलाया "भारत में लिपि की समानता का निर्णय "वैज्ञानिक व पक्षपात रहित" भाव से करना चाहिए।"

बाबू सुभाष बोस के "वैज्ञानिक व पक्षपात रहित" भाव ने उनको

रोमन लिपि धारण करने के पक्ष में आवाज़ निकालने के लिये उद्यत किया।

उनका यह भाव इस आधार पर वैज्ञानिक रूप लिये हुए था कि यूरोप के भ्रमण में उन्होंने टर्की में यह देखा कि अरबी लिपि के स्थान में तुर्की ने रोमन लिपि को धारण कर लिया है।

अरबी लिपि की कठिनाई के कारण टर्की में ऐसा हो जाना असम्भव नहीं था। परन्तु देवनागरी लिपि के स्थान में रोमन लिपि को प्रचलित करने का विचार सर्वथा निर्मूल व असंगत होने के कारण किसी भी भारतीय को ग्राह्य नहीं हो सकता।

अन्त में हिन्दीभाषा के सम्बन्ध में मैं आधुनिक भारत के महान् सुधारक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की राय पेश करता हूं। महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय भाषा बनाने के लिये स्वयं गुजराती होते हुये भी अपने सब ग्रन्थ हिन्दी भाषा में रचे। एक बार स्वामी जी से किसी सज्जन ने निवेदन किया कि वे अपनी पुस्तकें अंग्रेजी व उर्दू में अनुवाद कर दें। इसका उत्तर स्वामी जी ने निम्न पंक्तियों में दिया।

अनुवाद तो ''विदेशियों के लिये होता है। नागरी के अक्षर थोड़े दिनों में सीखे जा सकते हैं। आर्यभाषा का सीखना कोई कठिन काम नहीं है। फारसी और अरबी के शब्दों को छोड़कर भारतवर्ष की सभ्य भाषा ही आर्यभाषा है। यह अति कोमल और सुगम है। जो इस देश में उत्पन्न होकर अपनी भाषा के सीखने में कुछ भी परिश्रम नहीं करता उससे और क्या आशा की जा सकती है। उसमें धर्म लगन है इसका भी क्या प्रमाण है। आप तो अनुवाद की सम्मति देते हैं, परन्तु दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं, जब काश्मीर से कन्या कुमारी (रास कुमारी) तक और अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का प्रचार होगा मैंने आर्यावर्त भर में भाषा का एक ही सम्पादन करने के लिये अपने सकल ग्रन्थ आर्यभाषा में लिखे और प्रकाशित किये हैं।''

अन्त में इतना ही निवेदन करना चाहता हूं कि भारतीय नेताओं को निर्भयता से काम लेना चाहिये और इस देश के हितार्थ यह प्रयत्न करना चाहिये कि शीघ्र अति शीघ्र इस देश की राष्ट्रीय भाषा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी हो।

(११)
पाकिस्तान

भारतवर्ष में इस्लामी राज्य तथा इस्लामी प्रभुत्व की समाप्ति के समय से ही मुसलमानों का यह प्रयत्न जारी है कि किसी न किसी प्रकार भारतवर्ष में पुनः इस्लामी सत्ता व राज्य को स्थापित किया जावे। पाकिस्तान इस प्रान्तीय ध्येय की प्राप्ति के लिये एक आवश्यक कदम है। निस्सन्देह भारतीय मुसलमानों की आकांक्षा केवल पाकिस्तान पर ही समाप्त नहीं हो जाती। वे चाहते हैं कि पाकिस्तान स्थापित करने के पश्चात् पड़ोस के समस्त मुस्लिम राज्यों से सम्बन्ध स्थापित किया जावे और उनकी सहायता से सारे भारत पर पुनः मुस्लिम सत्ता स्थापित की जावे।

खिलाफत आन्दोलन भी इसी नीति का एक अंग था। खिलाफत की स्थिरता मुस्लिम शासकों को एक लड़ी में पिरोए रखने और सुअवसर आने पर गैर मुस्लिमों के विरुद्ध आक्रमण आदि करने के लिए कर लाभदायक आवश्यक शस्त्र था। परन्तु कांग्रेसी हिन्दुओं ने इस आन्दोलन के वास्तविक महत्त्व को न समझकर इसमें मुसलमानों से भी बढ़कर जिस प्रकार भाग लिया और मुसलमानों में इस्लामी जोश को उभारने में सहायता दी, वह भारत के आधुनिक राजनैतिक इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण परन्तु दुःखद घटना है। उस पर अधिक लिखना इस अध्याय का क्षेत्र नहीं है। यहां पर तो केवल इतना ही लिखना पर्याप्त है कि पाकिस्तान की मांग उसी पान-इस्लाम आन्दोलन का अंग है और यह कि इस आन्दोलन को स्वयं गांधी जी व कांग्रेसी हिन्दुओं ने पुष्ट किया है।

इस्लामी संघ व हकीम अजमल खाँ

समस्त इस्लामी प्रदेशों को मिलाकर एक इस्लामी संघ स्थापित करने और फिर भारतवर्ष में इस्लामी राज्य स्थापित करके उपरोक्त इस्लामी संघ का इसको एक अंग बनाने की आयोजना के समर्थन में,

मैं साधारण मुस्लिम नेता के नहीं अपितु कांग्रेस और खिलाफत के एक साथ प्रधान हकीम अजमल खां साहिब के अहमदाबाद खिलाफत सम्मेलन के प्रधान पद से निम्न शब्द देता हूं।

"India on the one side and the Asia Minor on the other are but two extreme links in a chain of future Islamic federation which are gradually but surely joining together all intermediatory states in one great system."

(A.I.R. 1922)

"आगामी इस्लामी संघ की शृंखला में जिसमें धीरे-धीरे बीच की रियासतें शामिल होने लग रही हैं एक और हिन्दुस्तान है और दूसरी ओर एशियाये कोचक।"

योरुप का महायुद्ध और इस्लामी सत्ता का प्रयत्न

योरुप का पहला महायुद्ध सन् १९१४ में आरम्भ हुआ उसके आरंभ होते ही मुस्लिम नेताओं ने ऐसी कार्रवाइयां करनी आरम्भ कीं जिससे अमीर काबुल का भारतवर्ष पर आक्रमण करना सम्भव हो सके। श्री गांधी जी तथा उनके विचारानुकूल हिन्दू कांग्रेसी नेताओं ने भी मुसलमानों का इस बारे में साथ दिया। गांधीजी ने सन् १९२० व २१ में अपने पत्र 'यंग इण्डिया' में कई लेख ऐसे निकाले और ऐसे शब्दों का प्रयोग किया कि यदि वह पूर्णरूप में निमन्त्रण वाले नहीं कहे जा सकते तो कम-से-कम ऐसे आक्रमण के अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने वाले अवश्य थे।

मौलाना मोहम्मद अली व अनेक मुस्लिम नेताओं ने अमीर हबी-बुल-रहमान और उनके पुत्र अमीर अमान उल्ला साहब के साथ भारत पर आक्रमण करने के लिये जो पत्र-व्यवहार किया वह अंग्रेजी राज्य के अधिकारियों से छिपा न रह सका। अंग्रेज अधिकारियों ने भारत में इस षड्यन्त्र के नेताओं को बन्दी करने का विचार किया तो उनके मार्ग में बाधा उपस्थित करने के लिये या मुस्लिम नेताओं के विरुद्ध अपराधों की सत्यता को संदिग्ध बनाने के लिये श्री गांधी जी ने १० मई सन् २१ को इलाहाबाद में भाषण देते हुए कहा—

"यदि उन्होंने अमीर साहब को कोई सन्देश भेजा है तो मैं भी एक सन्देश द्वारा उनको यह सूचना देने के लिये लिखूंगा कि यदि वे

आक्रमण करें तो जहां तक कि मैं उनकी सहायता कर सकता हूं कोई हिन्दुस्तानी इस (अंग्रेजी) सरकार को उनको (अफ़गानों को) वापिस धकेलने में सहायता नहीं देगा।''

युद्ध के समय अंग्रेजी सरकार अफगान राज्य से सन्धि करना चाहती थी। परन्तु कहा जाता है कि मुस्लिम नेताओं ने श्री गांधी जी के साथ होकर अमीर काबुल को निम्नलिखित तार दिया।

"Don's sign the treaty. Situation in India hopeful."

अर्थात् ''सन्धि पर हस्ताक्षर न करें, भारतवर्ष की स्थिति आशाजनक है।'' स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी को मौ० मुहम्मद अली से बातचीत करते हुए यह ज्ञात हुआ और स्वयं उन्होंने देखा कि उपरोक्त तार का मसौदा गांधी जी ने अपने हाथ से लिखा था यह सब कुछ स्वामी जी के पत्र 'Liberatar' तिथि २९-६-२६ से ज्ञात होता है।

जब अमीर अमान-उल्ला साहिब बादशाह बने तो उन्होंने भारतीय नेताओं से गुप्त मंत्रणा जारी रखी। इसका आभास अमीर अमान-उल्ला के नाम वायसराय के एक पत्र से मिलता है—

"Letter dated 20-4-1919 written by the Foreign Minister of your majesty, has been discovered in the papers of your Majesty's envoy at Simla. It instructs the envoy to make treaties with the leaders of the Hindus & Muslimes in India. It also contains instructions that he should in cite them to write artieles in newspapers calculated to create disaffection in the minds of the people and to inform them that golden opporiunity was drawing very near. The Indian leaders were advised to continue their correspondence, without a break with the Commander-in-Chief Sardar Nadir Khan." (Parliamentary papers iii Afghan Wars)

अर्थात्—''शिमला स्थित आपके राजदूत के कागजात में आपके परराष्ट्र सचिव का २९-४-१९१९ का लिखा एक पत्र पाया गया है। उसमें आपके दूत को आदेश दिये गये हैं कि वह हिन्दुस्तान के हिन्दू और मुस्लिम नेताओं से मित्रता की सन्धि करे! उनको समाचार-पत्रों में ऐसे लेख लिखने के लिये उकसाये जो जनता में असन्तोष के भाव पैदा करें, और उन्हें यह भी सूचना देने वाले हों कि सुनहरी अवसर समीप आ रहा है। इसके अतिरिक्त हिन्दुस्तानी नेताओं को यह भी कहा गया

है कि ये कमाण्डर-इन-चीफ सरदार नादिर खां के साथ अपना पत्र-व्यवहार बराबर करते रहें।''

मौलाना आज़ाद सोभानी तथा मुस्लिम पत्रों के इस्लामी स्वप्न

अमीर काबुल को भारत पर आक्रमण करने के लिये सम्मिलित करने की तह में मुसलमानों की जो मनोवृत्ति काम कर रही थी उसको मौलाना आज़ाद सोभानी ने स्पष्ट शब्दों में २७ जनवरी १९३७ को सिलहट में निम्नलिखित शब्दों में वर्णित किया है (यह व्याख्यान अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित हुआ है।) मौलाना के उस व्याख्यान के निम्नलिखित शब्द ध्यान देने योग्य है—

"The British power is gradually waning. Therefore I maintain that if we do not wage a fight against the Hindus and enfeeble them, they will not only establish Hindu Raj in India but also dominate the whole Islamic world."

अर्थात्—''ब्रिटिश शक्ति धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही है। इसलिये मैं कहता हूं कि यदि हम हिन्दुओं के विरुद्ध लड़ाई न करेंगे और उनको कमजोर नहीं कर देंगे तो वे न केवल भारतवर्ष में ही हिन्दू राज्य स्थापित करेंगे बल्कि वे सारे मुस्लिम संसार पर छा जायेंगे।''

अपने इस भाषण में आपने मुसलमानों की भविष्य की नीति के विषय में कहा—

"After a provisional agreement with the Hindus through the Muslim League, it would be easy enough to expell the British from India and to found a Muslim Raj here."

अर्थात्—''मुस्लिम लीग के द्वारा हिन्दुओं के साथ अस्थायी सन्धि करके अंग्रेजों को हिन्दुस्तान से निकालने के पश्चात् यहां मुस्लिम राज्य स्थापित कर सकना बहुत ही सरल हो जायेगा।''

ये विचार अकेले मौलाना आजाद सोमानी के ही नहीं हैं और न ही मुसलमानों के ये कोई नवीन विचार हैं बल्कि उपरोक्त शब्दों से सभी मुसलमानों के उस व्यापक दृष्टिकोण का पता लगता है जो वे भारत के बारे में बहुत समय से रख रहे हैं। इसके समर्थन में केवल एक उदाहरण दे देना पर्याप्त होगा। सितम्बर १९२५ में लेजिस्लेटिव एसेम्बली में राष्ट्रीय मांग (National Demand) का एक प्रस्ताव पास हुआ। मुस्लिम

सदस्यों ने भी इसके पक्ष में राय दी। इस पर जो समालोचना मुसलमानों के एक अखबार 'मुस्लिम आउटलुक' लाहौर ने की उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है—

"लैजिसलेटिव एसेम्बली में राष्ट्रीय मांग का साथ हमने इसलिये दिया कि जब अंग्रेज हिन्दुस्तान को अधिकार सौंपेंगे तो इस अधिकार को मुसलमान स्वाभाविक ही अपने हाथों में ले लेंगे और यदि आवश्यकता पड़ी तो इसके लिये अफ़गानों की मदद मिल जायेगी। आगामी विश्वयुद्ध के फल स्वरूप ही ब्रिटेन के हाथ से हिन्दुस्तान निकल जायेगा। इसके बाद अपने आप ही मुस्लिम राज्य स्थापित हो जायेगा क्योंकि सम्भावना पूर्णतया इस बात की है कि उस समय अफ़गान लोग हिन्दुस्तान के स्वामी होंगे। यदि हिन्दुओं को इस बात की जल्दी है कि जो अवश्य ही होना है वह और जल्दी हो जाय और वह अंग्रेजों को तत्काल ही अधिकार छोड़ देने के लिये मजबूर करना चाहते हैं, तो हमें इसमें कोई हर्ज दिखाई नहीं देता। दूसरे शब्दों में, हमें हिन्दू राजनीतिज्ञों को अपने कार्य सिद्धि का साधन बनाये रखने में कोई आपत्ति नहीं है और साथ ही साथ हमें यह सच्चाई भी प्रकट कर देनी है कि हम भविष्य में हिन्दुस्तान में मुस्लिम राज्य की स्थापना के लिये ही प्रयत्नशील हैं। हमें विश्वास है कि अबकी बार जब हिन्दुस्तान में मुस्लिम राज्य होगा तो सुलतान महमूद गजनवी और औरंगजेब द्वारा प्रारम्भ किया गया पवित्र कार्य जारी रक्खा जायेगा।"

देश इस्लामी दृष्टिकोण से

मुसलमानों की धार्मिक शिक्षा के दृष्टिकोण से वह देश जिसमें सब मुसलमान हों 'दार-उल-इस्लाम' अर्थात् 'इस्लाम का घर' है। जिस देश में मुसलमान बादशाह का राज्य हो या इस्लामी शरीयत के अनुकूल राज्य विधान हो वह 'दार-उल-अमन' और 'शान्ति का स्थान' कहलाता है। किन्तु जिस देश में उपरोक्त बातों में से कोई भी न हो, वह देश उनकी दृष्टि में 'दार-उल-हरब' अर्थात् रणक्षेत्र है।

मुसलमान प्रचार से, लूट मार से व बच्चों तथा स्त्रियों को उठाने से, मन्दिरों को तोड़ने और पुस्तकालयों को जलाने, जनता में पीर फकीर की कब्रों व मजारों के प्रति भक्ति बढ़ाने से, झगड़े-फ़िसाद व क़तल

करने से और हर प्रकार से हिन्दुओं के ऊपर अपना प्रभाव जमाकर उन्हें मुसलमान बनाकर हिन्दुस्तान को दार-उल-इस्लाम बनाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं।

सर इक़बाल और पाकिस्तानी विचारधारा

सर इक़बाल १९३० में इलाहाबाद में होने वाले मुस्लिम लीग के अधिवेशन के प्रधान नियुक्त हुए। उन्होंने अपने भाषण में कहा—

"As far as I have been able to read the Muslim mind, I have no hesitation in declaring that if the principle that the Indian Muslim is entitled to full and free development on the basis of his own culture & tradition in his own homeland, is recognised as the basis of a permanent Communal settlement, he will be ready to stake his all for the freedom of India."

अर्थात्—"जहां तक मैं मुसलमानों की विचारधारा को जान सका हूं उसके आधार पर मुझे यह कहने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं है कि यदि स्थिर रूप से पारस्परिक समझौते के लिये यह सिद्धान्त मान लिया जाए कि भारतवर्ष के मुसलमान को इस बात का पूर्ण अधिकार है कि वह अपनी निवास भूमि में अपनी सभ्यता व परम्परागत रीति रिवाज के अनुसार पूर्ण स्वतन्त्रता से अपनी उन्नति कर सके तो प्रत्येक मुसलमान भारत को स्वतन्त्र कराने के लिये अपना सब कुछ दाव पर रख देगा।"

सर इक़बाल के भाषण के बाद मुसलमानों की विचारधारा भारत के विभाजन की ओर प्रबल वेग से बहने लगी। यह बात याद रखने के योग्य है कि इस समय एक 'पाकिस्तान' का शब्द भारत के राजनैतिक क्षेत्र में विद्यमान नहीं था। १९३३ में पंजाब के एक मुसलमान चौ० रहमत अली ने उस शब्द का निर्माण किया। धीरे-धीरे कई योजनाएं जिनका आधार पाकिस्तान का विचार था जनता के सामने आईं। उनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं—

१. 'एक पंजाबी मुसलमान' की आयोजना

(इस आयोजना के निर्माता ने अपना वास्तविक नाम न देकर लेखक के स्थान पर एक 'पंजाबी मुसलमान' नाम दिया है।) इस आयोजना में हिन्दुस्तान को पांच संघों में विभक्त किया गया है और यह

भी लिखा गया है कि ये सब संघ एक केन्द्रीय भारतीय संघ में सम्मिलित रहेंगे।

२. अलीगढ़ यूनिवर्सिटी के दो प्रोफेसरों की आयोजना

इस आयोजना को मुस्लिम कालिज अलीगढ़ के दो प्रोफेसरों सयद ज़फ़रूल हसन और मोहम्मद अफ़जल हुसैन कादिरी ने प्रकाशित किया। इसमें भारतवर्ष को पूर्ण स्वतन्त्रता रूप धारण करने वाली छः रियासतों में विभक्त किया गया। ये सब रियासतें आपस में एक-दूसरे से सन्धि करेंगी और बर्तानियां के साथ भी। इस आयोजना के अन्तर्गत भावों के सम्बन्ध में कांग्रेसी नेता बाबू राजेन्द्रप्रसाद भी अपनी 'India Divided' में निम्नलिखित शब्द लिखने पर विवश हुए।

"In short, it is a scheme for creating seperate independent muslim states based on only one intelligible principle which runs through the whole scheme viz heads you loose, tails we win."

अर्थात्—"सारांश यह कि यह आयोजना पृथक् स्वतन्त्र मुस्लिम रियासतें निर्माण करने के लिए है और इसके मूल में केवल एक ही सिद्धान्त मालूम होता है। वह यह कि "चित्त भी मेरी पट भी मेरी।"

३. चौ० रहमत अली की आयोजना

चौ० रहमत अली ने अपनी आयोजना को एक पुस्तक "The Millat of Islam & the menance of Indianism." में सन् १९४० में प्रकाशित किया है। यह लेखक पाकिस्तान आन्दोलन का संस्थापक है जो उसने १९३३ में जारी किया। उसने कुछ समय के बाद एक दूसरी पुस्तक "The Millat and the Mission" में सात आज्ञाएं जारी कीं—

1. Avoid minorityism.
2. Avow nationaliam.
3. Acquire proportional terrirory.
4. Consolidate them the individual nations.
5. Co-ordinate under the 'Pak Common' wealth of Nations.
6. Convent 'India' into 'Dinia'.
7. Organise 'Dinia' & its dependencies into 'Pak asia'.

अर्थात्—

१. लघुसंख्यकपन को दूर करो।
२. अपने आपको कौम का रूप दो।
३. अपनी आबादी के हिसाब से अपने लिये पृथक् भूमि नियत कराओ।
४. उपरोक्त प्रत्येक इकाई को संगठित करो।
५. उन सबको 'पाक' राष्ट्रसंघ में सम्मिलित करो।
६. 'हिन्दुस्तान' का नाम 'दीनस्थान' कर दो।
७. दीन स्थान और इसके आधीन प्रदेशों को मिलाकर 'पाकेशिया' का निर्माण करो।

उपरोक्त आयोजना का कुछ भाग मुसलमानों ने ग्रहण कर लिया है और शेष अवसर मिलने पर चालू करेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। मुसलमानों के प्रति सहानुभूति रखने वाले बाबू राजेन्द्र प्रसाद जी ने भी इस आयोजना के अन्दर आगामी युग में भीषण भय का संकेत किया है। आप लिखते हैं—

"Who knows that in the course of time, the other parts of his scheme aleady published & yet to be published will also be not accepted by the League & the Indains must be prepared to look forward for the day when the very name 'India' will have disappeared & the Millat being established all over the continent will have acquired the name of 'Dinia' ("India Divided" 1st Edition. Page 176).

अर्थात्—"कौन जानता है कि समय पाकर इस आयोजना के दूसरे भाग भी जिनमें से कुछ प्रकाशित हो चुके हैं और कुछ प्रकाशित होनेवाले हैं, लीग द्वारा स्वीकृत न कर लिये जायेंगे। इस तरह हिन्दुस्तानियों को उस आने वाले दिन के लिये तैयार हो जाना चाहिये जबकि हिन्दुस्तान का नाम ही मिटा दिया जायेगा और इस सारे भूमि खण्ड पर मिल्लत स्थापित होकर इस देश का नाम 'दीनिया' (दीनस्थान) बन जाएगा।"

४. डॉ० एस०ए० लतीफ की आयोजना

डॉ० लतीफ़ ने अपनी आयोजना "The Muslim Problem in India" नामी पुस्तक में प्रकाशित की। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने इस आयोजना का सार निम्न शब्दों में लिखा है—

(अ) "इस आयोजना का अभिप्राय भारतवर्ष में समान संस्कृति रखने वाले लोगों की रियासतें बनाकर उनको एक संघ में सम्मिलित कर ऐसे राष्ट्र का निर्माण करना है जो लगभग कनाडा देश के संघ जैसा हो, जहां दो पृथक् जातियां अलग दायरों मे रहती हैं और मिलजुलकर सारे देश का कार्य करती हैं।"

(आ) जनसमुदाय की संस्कृति को ध्यान में रखकर भारतवर्ष का विभाजन इस प्रकार हो कि ४ प्रदेश मुसलमानों के बनें और ११ हिन्दुओं के।

(इ) मुस्लिम भागों में रहने वाले हिन्दू और हिन्दू भागों में रहने वाले मुसलमान अपने-अपने निकटवर्ती भागों में बसाये जावें।

(ई) हरिजनों को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वे किसी भी भाग को अपना भाग मानकर उसमें निवास करें।

(क) प्रत्येक प्रान्त व केन्द्र में शक्तिशाली तथा स्थायी प्रबन्ध-कारिणी सभायें हों और सभा की नीति आपस के निर्णय से निश्चित हो।

(ख) भारतीय संघ का यह रूप होगा कि इसमें सम्मिलित प्रान्तों को केन्द्र के विषय को छोड़कर शेष सब विषयों में यथासंभव अधिक से अधिक मात्रा में पूर्ण स्वराज्यभोगी बना दिया जावेगा।

(ग) केन्द्र के आधीन ऐसे विषय होंगे जिनका सम्बन्ध समस्त देश से होगा अर्थात् 'देशरक्षा', 'वैदेशिक विषय', 'व्यापार', 'यातायात' और इसी प्रकार के अन्य विषय।

(घ) 'शेष सत्ता' (Residuary Powers) प्रान्तों में स्थित रहे।

५. सर सिकन्दर हयात खाँ की आयोजना

इन्होंने भारतवर्ष को सात भागों में विभक्त किया है और सबके ऊपर एक भारतीय संघ की आवश्यकता बतलाई है।

६. सर अब्दुल्ला हारून कमेटी की आयोजना

१९४० में मुस्लिमलीग ने सब आयोजना वालों को बुलाया। इस कमेटी के प्रधान सर अब्दुल्ला हारून नियत हुए। इस कमेटी ने मुसलमानों के लिए दो प्रदेश बनाए। एक उत्तर-पश्चिमी प्रदेश और दूसरा उत्तर-पूर्वी प्रदेश। इस कमेटी ने कहा कि केन्द्रीय सभा नहीं होनी चाहिये।

मुस्लिम लीग सम्मेलन लाहौर १९४०

लाहौर में मार्च सन् ४० में मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ। २३

मार्च को मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान का नया विधान निर्माण करने पर विचार आरम्भ किया और २६ मार्च को वह प्रस्ताव जो 'पाकिस्तानी' प्रस्ताव के नाम से पुकारा जाता है, स्वीकार किया। उनकी मूल बातें ये हैं—

१. "मुस्लिम लीग जोर से कहती है कि भारत सरकार एक्ट सन् १९३५ के अनुसार संघ की आयोजना इस देश की विशेष परिस्थिति के कारण सर्वथा अयोग्य और कार्यरूप में परिणित होने वाली नहीं है। और यह भारतीय मुसलमानों को सर्वथा अमान्य है।"

२. "मुस्लिम लीग जोर से कहती है कि वह १८ अक्तूबर १९३९ को कहे गये वायसराय महोदय के इन शब्दों को कि "जहां तक भारत सरकार एक्ट १९३५ की नीति और आधार का सम्बन्ध है उस पर पुनः विचार भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न दलों, हितों व सम्प्रदायों के मशवरे से होगा", विश्वास-उत्पादक समझती है। किन्तु भारतवर्ष के मुसलमानों को उस समय तक सन्तोष न होगा जब तक समस्त विधान-निर्माण आयोजना पर नये सिरे से विचार न किया जावे और न ही कोई संशोधित आयोजना मुसलमान उस समय तक स्वीकार करेंगे जब तक कि वह उनके समर्थन और स्वीकृति से न बने।"

इतना कह चुकने के बाद फिर यह पास किया—

३. "अखिल भारतीय मुस्लिम लीग अधिवेशन का यह विचार पूर्वक स्थिर किया हुआ मत है कि निम्नलिखित आधारभूत सिद्धान्त को अपनाये बिना कोई भी शासन-विधान न तो इस देश में चालू हो सकता है और न मुसलमानों को मान्य हो सकता है। अर्थात् भौगोलिक दृष्टि से एक दूसरे से लगे हुए प्रदेशों का, उनकी सीमाओं का आवश्यक हेरफेर करके, इस प्रकार पुनः निर्माण किया जाए कि देश के उत्तर-पश्चिमी और पूर्वीय भाग, जैसे वे प्रदेश जिनमें जनसंख्या की दृष्टि से मुसलमानों का बहुमत है, स्वतन्त्र राष्ट्र बन जायें और इन राष्ट्रों के अन्तर्गत प्रदेशों को शासन-सम्बन्धी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो।"

मुस्लिम लीग ने अपनी कार्य समिति को इस बात का अधिकार दिया कि वह "इन आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार विधान की योजना तैयार करे कि अन्त में देश के ये भाग अपने-अपने क्षेत्र में 'सैन्य-संगठन' और 'वैदेशिक सम्बन्ध', 'आने जाने के साधन', 'कर' तथा

अन्य आवश्यक विषयों के सम्बन्ध में अधिकार ग्रहण कर सकें।"

इस प्रस्ताव के अन्तिम भाग के अध्ययन से मालूम होगा कि मुसलमान इन भागों के हाथ में क्या-क्या अधिकार देखना चाहते हैं। जब 'सैन्य-संगठन' और 'वैदेशिक सम्बन्ध' भी इन स्वराज्य भोगी प्रदेशों के आधीन होगा तो मुसलमानों का व्यवहार पड़ोसी विदेशी देशों के साथ कैसा होगा और हिन्दुओं के भाग के साथ कैसा, इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन नहीं है।

अंग्रेजी सरकार ने भारतवर्ष में सब प्रान्तों के ऊपर एक राष्ट्रीय संघ (Federation) बनाने का विचार प्रकट किया। परन्तु मुस्लिम लीग ने इसका घोर विरोध करते हुए कहा कि इस प्रकार का राष्ट्रीय संघ वास्तविक रूप से हिन्दू जाति का राज्य होगा। इसलिए जब हिन्दुस्तान में दो कौमें आबाद हैं, अर्थात् एक हिन्दू जाति और दूसरी मुस्लिम जाति, तो क्यों न इसी आधार पर दो राष्ट्रीय संघ हों-एक हिन्दू राष्ट्रीय संघ और दूसरा मुस्लिम संघ और यदि वे दोनों चाहें तो मिलकर एक सम्मिलित संघ बना लें।

पं० नेहरू

मुस्लिम लीग के इन विचारों और प्रयत्नों के इतिहास को दृष्टिगोचर करते हुए श्री पं० नेहरू जी ने अपनी पुस्तक "मेरी कहानी" में लिखा "मुस्लिम लीग लाजमी तौर पर ज्यादा से ज्यादा गलत रास्ते पर चलती गई। आखिरकार वह खुले आम हिन्दुस्तान में प्रजातन्त्र के खिलाफ ही नहीं खड़ी हो गई, बल्कि देश के टुकड़े करने तक की हामी हो गई।"

श्री पं० जी ने उपरोक्त पुस्तक के ५६वें अध्याय में स्पष्ट शब्दों में लिखा, "हिन्दुस्तान में मुस्लिम राष्ट्र, राष्ट्र के भीतर एक और राष्ट्र, वह भी ठोस नहीं बल्कि डांवाडोल, बिखरा हुआ और अनिश्चित! राजनैतिक दृष्टि से यह विचार बिल्कुल वाहियात है, और आर्थिक दृष्टि से शेख-चिल्लाना है। यह तो ध्यान में लाने लायक भी नहीं है। लेकिन फिर भी इसके पीछे जो मनोवृत्ति छिपी है इसके जरिये थोड़ा बहुत उसे समझने में सहायता मिलती है।'मुस्लिम-राष्ट्र' की बात चलाने का अर्थ यह है कि राष्ट्र कोई चीज नहीं है केवल एक धार्मिक सूत्र है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी राष्ट्र (आधुनिक परिभाषा में) को बढ़ने न दिया जावे। दूसरा अर्थ यह है कि वर्तमान सभ्यता को धत्ता बता दी जाये और हम

सब मध्यकाल के रस्म-रिवाज अख्तियार करलें। इसका मतलब है या तो तानाशाही सरकार या विदेशी सरकार।"

यह खेद सहित लिखना पड़ता है कि कांग्रेस ने पाकिस्तान के सम्बन्ध में अपनी विचारधारा को उपरोक्त शब्दों के अनुकूल न रखकर अन्ततः पाकिस्तान को स्वीकार कर लिया है।

कांग्रेस-मुस्लिम लीग सम्मेलन देहली सन् १९४२

जब १९४२ में सर स्टैफ़र्ड क्रिप्स भारत में नये विधान का प्रस्ताव लेकर आए तो उनके सम्मुख मुसलमानों ने पाकिस्तान की मांग उपस्थित की। ६ अप्रैल १९४२ को कांग्रेस ने सम्मिलित मांग उपस्थित करने के लिए देहली में मुसलमानों के साथ बातचीत की। कांग्रेसी नेताओं ने यह निश्चय किया—"भारतवर्ष में एक ही राष्ट्रीय संघ हो। परन्तु मुसलमान—यदि वे ऐसा चाहें—तो किसी भी स्वतन्त्र रूप धारण किए हुए अपने बहुसंख्यक प्रान्त को उपरोक्त अखिल भारतीय राष्ट्रीय संघ से पृथक् रख सकते हैं।"

मुसलमानों की यह मांग थी कि कोई केन्द्रीय धारा सभा न हो। इसी बात को सर क्रिप्स ने माना और इसी का समर्थन कांग्रेस ने भी किया। क्या इस प्रस्ताव से कांग्रेस ने पाकिस्तान की मांग को उत्तेजना नहीं दी?

अलाहाबाद कांग्रेस-कमेटी और पं० जगतनारायण लाल

यह घोर दुःख के साथ कहना पड़ता है कि उपरोक्त निश्चय कांग्रेस के द्वारा पास किये गये अनेक ऐसे प्रस्तावों के विरुद्ध था जिनमें कांग्रेस ने भारतवर्ष की अखण्डता और इसकी आवश्यकता पर पूर्ण जोर दिया है।

कांग्रेस के उपरोक्त निश्चय पर देश में बहुत हलचल मची। अलाहाबाद में ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बैठक हुई। उस बैठक में श्रीयुत जगतनारायण लाल जी का निम्न प्रस्ताव बहुसंख्यक रायों से १ मई सन् १९४२ को पास हुआ—

"The A.I.C.C. is of the opinion that any proposal to disintegrate India by giving liberty to any component state or territorial unit to secede from the Indian Union or Federation, will be highly detrimental to the best interests

of the people of the different states and provinces and the country as a whole, and the Congress, therefore, cannot agree to any such proposal."

अर्थात्—अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी की सम्मति में भारतीय राष्ट्रीय संघ से किसी रियासत या प्रान्त को पृथक् होने की स्वतन्त्रता देकर भारत का विभाजन करने की कोई भी आयोजना रियासतों, प्रान्तों तथा समस्त देश की जनता के अत्युत्तम हितों के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगी। इस कारण कांग्रेस किसी ऐसी आयोजना को स्वीकार नहीं करेगी।

इस प्रस्ताव के विरोध में श्री राजगोपालाचार्य ने एक प्रस्ताव पेश किया कि भारतीय राष्ट्रीय संघ से किसी प्रदेश के पृथक् होने के अधिकार को स्वीकार कर लिया जावे, यदि उस प्रदेश के व्यक्तियों की ऐसी सम्मति हो। इस प्रस्ताव के पक्ष में १५ राय और विपक्ष में १२० राय हुई। अत: यह रद्द कर दिया गया।

इस प्रस्ताव ने मुसलमानों के हृदयों में सन्देह उत्पन्न किया कि देहली वाला प्रस्ताव इस प्रस्ताव से कट तो नहीं गया। इसलिये इसको अधिक स्पष्ट कराने के लिए डॉ० लतीफ़ ने राष्ट्रपति मौ० अब्बुल-कलाम आजाद तथा पं० जवाहरलाल से पत्र-व्यवहार किया। उन सज्जनों ने उत्तर दिया कि देहली वाला प्रस्ताव पूर्णतया सुरक्षित है और कांग्रेस उससे बाध्य है! यह है कांग्रेस के प्रस्तावों की कीमत! इससे अधिक नियम विरुद्धता और शिरोमणि सभा के प्रस्तावों को रद्दी की टोकरी में फेंकना क्या होगा?

अगस्त सन् ४२ में अनेक नेता जेलों में चले गये। श्री गांधी जी सन् ४४ में बाहर आए और श्री राजगोपालाचार्य ने अलाहाबाद वाली मीटिंग में रद्द किये हुए अपने प्रस्ताव को एक नए फार्मूला अर्थात् आयोजना के रूप में श्री गांधी जी के आशीर्वाद के साथ पेश कर दिया। गांधी जी ने इसको लाहौर वाले पाकिस्तानी प्रस्ताव का निचोड़ बतलाया और ९ सितम्बर सन् ४४ से २७ सितम्बर सन् ४४ तक बम्बई में उन्होंने मि० जिन्नाह से बातचीत की।

मि० जिन्नाह का दो राष्ट्रों का सिद्धान्त

इस बातचीत का कोई परिणाम नहीं निकला, क्योंकि मि० जिन्नाह

की ओर से इस मांग पर बहुत जोर दिया गया कि भारतवर्ष में दो कौमों का मानना आवश्यक है। श्री गांधी जी ने उस समय इसको मानने से इन्कार कर दिया, परन्तु यह स्वीकार कर लिया कि जनता की सम्मति के आधार पर भारतवर्ष को विभक्त कर लिया जावे जैसे कि भाई-भाई आपस में करते हैं।

इस तरह श्री गांधी जी ने विभाजन सिद्धान्त को राजनैतिक क्षेत्र में उपस्थित कर दिया। क्या अब हिन्दू-मुस्लिम एकता हो जाएगी? कदापि नहीं। हमको यह जान लेना चाहिये कि जब यह विभाजन सिद्धान्त भारतवर्ष पर लागू होगा तो यह यहीं तक सीमित न रहकर नगरों व ग्रामों में भी फैलेगा। इस देश में हिन्दू और मुस्लिम रजवाड़े भी हैं। उनमें भी यह विभाजन का विष फैल सकता है।

क्या इस दुरावस्था का कांग्रेसी हिन्दू अनुमान नहीं लगाते? कांग्रेसी हिन्दू इस विचारधारा में बहते रहे कि जब तक मुसलमान स्वतन्त्रता के आन्दोलन में कांग्रेस के साथ न होंगे उस समय तक भारतवर्ष को अंग्रेजों से मुक्त नहीं कराया जा सकता। मुसलमानों की मांग को पूर्ण करने के हेतु ही कांग्रेस ने अंग्रेजों की आयोजना, अर्थात् एक्ट १९३५ का स्वागत किया जिसके आधीन प्रान्तों को अधिक से अधिक मात्रा में स्वराज्य भोगी (autonomous) बना दिया गया। इसी एक आयोजना ने केन्द्र को मिटा देने का भाव उत्पन्न कर दिया और साथ ही मुसलमानों के हृदयों में यह लालसा भड़का दी कि मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों को पूर्णरूप में 'दार-उल-अमन' बना दिया जावे।

कांग्रेस ने पाकिस्तान के मार्ग में केवल जनमत गणना की अड़चन लगाई थी। उसको भी मुसलमानों ने स्वीकार नहीं किया। कांग्रेसवादी कहते हैं कि जो प्रान्त केन्द्र से पृथक् होना चाहता है उसको केन्द्र के साथ रहने के लिये कैसे बाधित किया जा सकता है। सम्भवतः उनका यह विचार है कि प्रान्त को केन्द्र के साथ रहने के लिये बाधित करने में आपसी कलह है और बाधित न करने में देश में शान्ति और एकता हो जावेगी।

डॉ० बेनीप्रसाद जी ने अपनी पुस्तक 'पाकिस्तान' में कहा है कि "देश के सामने दो मार्ग खुले हुए हैं। यह कहना कि एक मार्ग तो (भारत की) अखण्डता का है और दूसरा स्वतन्त्रता का, समकालीन

घटनाओं के सम्बन्ध में खेदजनक अज्ञान का परिचय देना है। इस युग की परिस्थिति को देखते हुये भारत के सामने जो दो मार्ग हैं वे और ही हैं।"

"एक मार्ग है अखण्डता और स्वतन्त्रता का और दूसरा मार्ग है अनैक्य और परतंत्रता का।"

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति पूना सितम्बर १९४५

प्रान्तों के 'आत्म निर्णय' के अधिकार के बारे में १९४२ में दो प्रस्ताव स्वीकार किये गये थे—एक देहली और दूसरा इलाहाबाद में। इनका उल्लेख पूर्व पृष्ठों में हो चुका है। उक्त दोनों प्रस्तावों में बहुत विरोध था इसलिये कुछ मुस्लिम सज्जनों ने कांग्रेसी नेताओं से पूछताछ की। मौलाना आजाद तथा पं० जवाहरलाल जी ने यह कहकर उनको शान्त करना चाहा कि उन दोनों प्रस्तावों में कोई अन्तर नहीं है परन्तु वास्तविक रूप में यह कोई उत्तर नहीं था। जनता ने अपना यह आन्दोलन जारी रखा कि कांग्रेस उक्त दोनों प्रस्तावों के विरोधात्मक भावों के सम्बन्ध में अपनी सम्मति का स्पष्टीकरण करे। अतएव १९४५ में कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने एक आश्चर्यजनक रूप में अपने पूर्वकथित कथनों को ठीक रखने के लिये दो भागों में एक प्रस्ताव पास किया। एक भाग में इलाहाबाद वाले प्रस्ताव का अनुसरण करते हुए भारत की अखंडता की आवश्यकता का वर्णन किया और दूसरे में दिल्ली वाले प्रस्ताव का अनुमोदन किया। वह प्रस्ताव निम्न है—

प्रथम भाग "कांग्रेस किसी रियासत या प्रान्त को भारतीय राष्ट्रीय संघ से पृथक् होने की स्वतन्त्रता देकर भारतवर्ष का विभाजन करने के किसी भी सुझाव को स्वीकार नहीं कर सकती। कांग्रेस भारतवर्ष की स्वतंत्रता व अखंडता पर स्थिर है। इसलिये उस अखंडता में किसी प्रकार का खण्डन भी विशेषकर आधुनिक संसार में जब कि मनुष्य बहुत बड़े संघों के बनाने का विचार कर रहे हैं सबके लिये हानिकारक होगा। अतएव इसका तो सोचना भी दुःखप्रद होगा।"

द्वितीय भाग "ऐसा होते हुए भी वह किसी प्रान्त की प्रजा को उनकी दृढ़ व प्रकट की हुई इच्छा के विरुद्ध भारतीय संघ में रहने के लिये बाधित नहीं कर सकती।"

यह है कांग्रेस के मत का नूतन स्पष्टीकरण कि जिसमें सन् ४२ के दोनों विरोधी प्रस्ताव एक जगह मिला दिये गये हैं। जब पृथकता चाहने

वालों के सामने पृथकता का खुला मार्ग है तो उनके आन्दोलन को दबा कौन सकता है ? इस प्रस्ताव का यह अर्थ है कि पृथकता चाहने वालों की इच्छा प्रकट होने के बाद पृथकता प्रदान करने या न करने वाली जो भी सभा या सरकार होगी उसके सामने ३ मार्ग होंगे। (१) पृथकता प्रदान करदें। (२) पृथकता को अस्वीकार करदें। (३) पृथकता चाहने वालों से प्रार्थना, याचना करके उनको अपनी मांग छोड़ने पर सहमत करलें।

मुसलमान पृथकता चाहते हैं ताकि भारतवर्ष के पाकिस्तानी भाग को एक विशाल इस्लामी संघ बना दिया जावे और इस प्रकार यदि समस्त भारत को नहीं तो कम-से-कम पाकिस्तानी भाग को तो 'दार-उल-इस्लाम' या 'दार-उल-अमन' बना दिया जावे। अब पृथकता के लिए मुसलमानों की ओर से स्वयं मांग न हो या वह प्रार्थना-याचना से मान जायें, ऐसा मान लेना इस्लामी आन्दोलन की ओर से आंखें मूंद लेना है। इसलिये दो ही मार्ग रह जाते हैं—पृथकता प्रदान करें या न करें।

पृथकता प्रदान कर दी तो भारतवर्ष दो भागों में विभक्त होगा और यदि नहीं तो दंगे-फिसाद होंगे। इस प्रकार कांग्रेस ने अपने आपको ऐसे जाल में फंसा लिया है कि कोई न कोई अनिष्ट अवश्य होगा।

पूना कांग्रेस कमेटी के उक्त प्रस्ताव और इलाहाबाद वाले प्रस्ताव के परस्पर विरोध पर बहुत शोर मचा। पं० जगतनारायण लाल जी ने अपने वक्तव्य में कहा—

"मैंने कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को केवल यही निश्चय कराने का प्रयत्न नहीं किया कि मेरा प्रस्ताव पूर्ण तथा स्पष्ट और मिश्रित था और उसमें ऐसी घोषणा के लिये कोई स्थान नहीं था कि भारतवर्ष के किसी प्रान्त को केन्द्रीय सभा से पृथक् होने का अधिकार है चाहे उस प्रान्त की बहुमत जनता ऐसा करने के लिए अपना मत प्रकट क्यों न करे। मैंने उनको यह भी कहा था कि इससे अधिक घातक और क्या हो सकता है कि कांग्रेस वैधानिक परिवर्तन होने के समय ऐसी मनोवृत्तियों को उत्पन्न करने में सहायक हो जो आपस में दरार डालने वाली हैं और जो इतनी सड़ी हुई है कि उनको आने वाले अवसर पर भीषण भयप्रद रूप धारण करने की सम्भावना है। कांग्रेस अपने आपको उन आन्तरिक कलह व कटुता के लिए जिनका

विभाजन की किसी भी आयोजना को कार्यरूप में लाने पर उत्पन्न होना अनिवार्य है क्यों उत्तरदाता बनाती है।"

मौलाना आजाद ने पाकिस्तानी आन्दोलन की एक और सेवा यह की कि उन्होंने पूना कार्यकारिणी समिति के उक्त प्रस्ताव को अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी में उपस्थित करने से रोक दिया। सम्भवतः उनको यह भय हुआ होगा कि कहीं यह प्रस्ताव अस्वीकार न हो जावे। मौलाना आजाद ने पुनः नई दिल्ली में १९ सितम्बर १९४५ को कहा—

"The Poona resolution has made crystal clear that Mr. Jagat Naraian Lal's resolution does not cancel the resolution adopted in April 1942. Infact the latest Poona resolution marks a definite advance on the position."

भावार्थ—"पूना वाले प्रस्ताव से यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया है कि मिस्टर जगतनारायण लाल के प्रस्ताव से अप्रैल १९४२ वाला प्रस्ताव काटा नहीं गया। वास्तव में पूना प्रस्ताव ने इस बात को अधिक साफ़ कर दिया है।"

इन शब्दों के पढने से क्या यह मानना अनुचित है कि कांग्रेसी हिन्दुओं के बड़े नेताओं ने पूना में पाकिस्तान की ओर छलांग लगाई और इसके पक्ष में वातावरण उत्पन्न करने में निश्चयात्मक रूप से सहायक हुए। व्यक्तिगत रूप में किसी नेता का पाकिस्तान के विरुद्ध शोर मचाना सर्वथा व्यर्थ है। हिन्दू महासभा के उस समय के मन्त्री मि० भोपतकर ने भी यही लिखा—

"Self determination as adumberated by Maulana Abul Kalam Azad to territorial units is nothing but a thin end of the wedge of Pakistan, because self determination spells the right to secede which means vivisection of India."

अर्थात्—"प्रान्तों को आत्म-निर्णय का अधिकार जैसा कि मौलाना अब्बुल क़लाम आजाद ने छाया रूप में बतलाया है पाकिस्तानी खूंटे का बारीक सिरा है। क्योंकि आत्म-निर्णय का अर्थ है पृथकता का अधिकार और इसका अभिप्राय है भारतवर्ष को विभक्त करना।" विभाजन के पश्चात् क्या गति होगी आगामी समय बतलावेगा।

□□□

(१२)

भारतवर्ष में एक जाति है अथवा दो

कांग्रेसी नेता इस बात का प्रचार कर रहे हैं कि भारतवर्ष के कहे जाने वाले भौगोलिक सीमाबद्ध देश के अन्दर रहने वाले हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई व अनेक जनसमुदाय एक ही धागे में पिरोए हुए हैं तथा वह ऐसे जनसमुदाय को 'हिन्दुस्तानी जाति' का नाम देते हैं। हिन्दुओं को सम्प्रदाय का नाम देकर अपनी रवादारी व उदारता का परिचय कराकर अपने आपको देशभक्त समझते हैं। मुसलमान स्वयं अपने को एक पृथक् मुस्लिम जाति का रूप देने और उसे शक्तिशाली बनाने में लगे हुए हैं।

अब पाठकगण इस पर विचार करें कि मुस्लिम लीग का यह विचार कितना असत्यता पूर्ण है ? मुसलमान अपने आपको एक पूर्ण जाति का रूप दे भी सकते हैं या नहीं, और कांग्रेस का यह कथन कि हिन्दू-मुस्लिम मिलकर एक हिन्दुस्तानी जाति बन जाती है वास्तविक रूप में सत्य हो भी सकता है या नहीं ?

इसके उत्तर के लिये हमें जातीयता के आधारों की ओर ध्यान देना चाहिये।

जातीयता के आधार

(१) भौगोलिक सीमा

एक मनुष्य सम्प्रदाय को एक 'जाति' का नाम देने के लिये उन मनुष्यों का एक विशेष भौगोलिक सीमाबद्ध प्रदेश अर्थात् एक नाम से पुकारे जाने वाले देश में रहना आवश्यक है। देश में रहने का अभिप्राय यह है कि उस भौगोलिक देश से सम्बन्ध रखने वाले मनुष्यों के अन्दर उस देश की ऋतुओं, नदियों, पर्वतों व प्रथाओं से प्रेम हो। उसकी आर्थिक, राजनैतिक अवस्थाओं को सुधारना तथा उसकी मान-मर्यादा बढ़ाना उनके जीवन का सार हो। सर इकबाल ने पाकिस्तान का बहम अपने अन्दर उत्पन्न करने से पहले एक अत्यन्त सुन्दर तराना गाया था। जिसके कुछ पद निम्नलिखित हैं—

सारे जहां से अच्छा, हिन्दोस्तां हमारा।
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिस्तां हमारा॥
गुरबत में हों अगर हम, रहता है दिल वतन में।
समझो हमें वहीं ही, दिल हो जहां हमारा॥
पर्वत वो सबसे ऊंचा, हमसाया आस्मां का।
वो सन्तरी हमारा, वो पासबां हमारा॥
गोदी में खेलती हैं, जिसके हजारों नदियां।
गुलशन है जिसके दम से, रश्के जिना हमारा॥
यूनान मिश्र रोमां, सब मिट गये जहां से।
अब तक मगर है बाकी, नामो निशां हमारा॥

कितना देशभक्ति के भावों से पूर्ण यह गीत है! यदि इन्हीं भावों को सब मुसलमान अपने जीवन में ढाल लेते तो वर्तमान कठिनाइयों की एक गिरह कम हो जाती। परन्तु मुसलमानों को न ही बसन्त से कोई प्रेम है और न होली के रंग से! यदि किसी हिन्दू से उस समय किसी मुसलमान पर चाहे वह रंग बेचने वाला हो या नीलगर, रंग का छींटा लग जावे तो एकदम झगड़ा हो जाता है। मुसलमान केवल हिन्दुस्तान को ही नहीं बल्कि सारे भूमण्डल को अपना देश समझते हैं।

एक मुस्लिम 'पंजाबी' ने 'पाकिस्तान' पुस्तक में लिखा—

"....One very important point which we want to make clear about the muslims is that they are not a 'Nation' a term which implies a relationship territorial & ethnological in its nature. In fact, they are a fraternity, a brotherhood, who derive their very life-blood from a particular faith Islam. In their case, the use of the term 'nation' is misnomer."

अर्थ—मुसलमानों के सम्बन्ध में इस बात को स्पष्ट करना आवश्यक है कि वह 'जाति' नहीं है। क्योंकि 'जाति' शब्द से भौगोलिक व नसली सम्बन्ध का स्पष्टीकरण होता है। वास्तव में मुसलमान भाईचारा अर्थात् सब बिरादरी है, जो अपने जीवन स्रोत को धर्म, इस्लाम मत से प्राप्त करते हैं।

इसी कारण अरब की भूमि और 'दज़ला', फ़रात 'नदियां' और इस्लामी रस्मो-रिवाज़ उसके अन्दर उमंग व उत्साह उत्पन्न करते हैं—

सारे जहान को अपना वतन समझने वाले मुसलमान हिन्दोस्तान को अपना एकमात्र देश कैसे समझ सकते हैं ? यदि मुसलमान हिन्दुस्तान को अपना देश समझ भी लें तो भी एक देश के अन्दर रहने के आधार पर उस मनुष्य समुदाय को एक जातीयता का रूप नहीं दिया जा सकता। अनेक पुरुष तिजारत व व्यापार आदि के लिये अपने देशों को छोड़कर दूसरे देशों में जा बसते हैं। जैसे हिन्दुस्तान में अंग्रेज, फ्रांसीसी, जर्मन व जापानी आदि। इसी प्रकार अन्य देशों में हिन्दुस्तानी। इंग्लिस्तान में रहता हुआ एक हिन्दुस्तानी अंग्रेज नसल का अंग नहीं बनता और न ही हिन्दुस्तान में रहने के कारण एक अंग्रेज या जर्मन आर्य नस्ल का सभासद कहला सकता है। इसलिये जातीयता का निश्चय करने के लिये एक भौगोलिक सीमाबद्ध देश के आधार के साथ-साथ हमें किसी दूसरे आधार का विचार करना होगा।

(२) भाषा

भाषा राष्ट्रीयता का दूसरा आधार है। प्रत्येक देश के अन्दर उत्पन्न हुई व पली हुई भाषा व लिपि के अन्दर ही उस देश की वीरता, सुन्दरता आदि की भावनायें भरी होती हैं। वही भाषा उस देश के पूर्वकालीन कृत्य कार्यों से सुशोभित होती है। भारत देश की भाषा हिन्दी है और लिपि देवनागरी।

मुसलमान सज्जन इस देश में विदेशी फारसी व अरबी भाषाओं की शब्दावली को ग्रहण किये हुए हैं और उनकी ही लिपि पर निर्धारित उर्दू भाषा को चालू करने का घोर प्रयत्न कर रहे हैं। उनका ऐसा कार्य उनको भारतीय राष्ट्र का अंग माने जाने में बाधक है। इसके अतिरिक्त यदि कुछ मनुष्य अनेक कारणों के आधीन किसी देश विशेष की भाषा को सीख भी लें, तो भी वह उस देश की जाति की माला के मनके नहीं बन सकते। क्या रहीम, रसखान आदि मुसलमान हिन्दी भाषा के उत्तम कवि होते हुए भी आर्य हिन्दू जाति के अंग बन गये ? उनका पूजा का ढंग व अन्य प्रथायें भारतवर्ष की प्रथाओं व पूजापाठ आदि की रीति से विरुद्ध थीं। और इसी कारण इस देश में बसने और यहां की भाषा सीखने के बावजूद भी वो पृथक् ही रहे, इसी प्रकार समाजों के नियम भी मनुष्यों

को एक-दूसरे से पृथक् खड़ा कर देते हैं। समस्त भारत देश में कोई भी ऐसा आर्य हिन्दू नहीं है जो अपने चाचा, बुआ व मामा की लड़की से विवाह करना धर्मयुक्त समझता हो। इसलिए किसी मनुष्य समुदाय को एक जाति का नाम देने के लिए जहां एक देश के अन्दर रहना और उसी देश की भाषा को अपनाना आवश्यक है वहां एक धर्म का होना भी आवश्यक है।

(३) धर्म

धर्म 'राष्ट्र' का तीसरा आधार है। धर्म का प्रश्न बड़ा कठिन प्रश्न है। भारतवर्ष में आर्य-हिन्दुओं के अन्दर भी अनेक मत हैं और परस्पर लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। परन्तु इतना होते हुए भी इनका बहुत कुछ बाह्य रंग-रूप ऐसा है, जो राजनैतिक क्षेत्र के अन्दर इन सब को एक रंगमंच पर खड़ा कर देता है, परन्तु वास्तविक सच्चाई से हमको अपनी आंखें बन्द नहीं कर लेनी चाहिएं। धार्मिक एकता को प्राप्त करने के लिये महर्षि दयानन्द जी ने अपने जीवनकाल में देहली दरबार के अवसर पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, ब्रह्मसमाजी आदि धर्मों के अनेक नेताओं को एकत्रित करके यह आयोजना की थी कि जो बातें सब धर्मों में समान हैं, वे सब मान लें और विरोधी बातों पर न्याय व युक्ति सहित विचार करके विरोध को शान्त करदें। परन्तु किसी कारण यह आयोजना सफल न हो सकी। स्वामी दयानन्द जी ने 'सत्यार्थप्रकाश' उत्तरार्ध भाग की भूमिका में लिखा है—

"मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुये होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या-द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है।"

सारे भारतवर्ष में हिन्दू कहे जाने वाले मनुष्यों के विवाह व मरने-जीने की रीति व नीति, खान-पान व रहन-सहन के ढंग बहुत कुछ

समान ही हैं। मगर मुसलमानों का हिन्दुओं से बिल्कुल अलग व्यवहार है। इसलिये धर्म जातीयता के लिये एक जरूरी अंग है जैसा कि देश और भाषा है। परन्तु गहरे विचार से किसी और चीज की आवश्यकता भी प्रतीत होती है। जिसके बिना जातीयता का रूप कुछ अधूरा रहता है।

शिमले की पहाड़ियों में एक ईसाई पादरी मि० स्टोक्स ने वैदिक धर्म स्वीकार करके अपना नाम पं० सत्यानन्द रखा। वे नस्ल के लिहाज से अंग्रेज ही कहलाते हैं क्योंकि उनका इतिहास वही है जो अंग्रेजों का है।

(४) इतिहास

जातीयता के लिये एक इतिहास का सबके लिये मानना जरूरी है। जो मनुष्य महाराज रामचन्द्र की याद में दशहरा व दिवाली मनाते हैं, महर्षि कपिल, कणाद, व्यास, दयानन्द आदि से अपना नाता जोड़ते हैं, कुरुक्षेत्र व हल्दी घाटी आदि में अपनी वीरता व आन का परिचय पाते हैं, सबसे प्रथम कानून बनाने वाले मनु महाराज की आज्ञा के अनुकूल अपना कार्य करने में गौरव समझते हैं, वे सब मनुष्य एक ही जाति के अंग कहे जा सकते हैं। मुसलमान राजा दाहर पर हमला करने वाले मुहम्मद बिन कासिम की तारीफ़ के राग अलापते नहीं थकते। महाराज शिवाजी व गुरु गोविन्दसिंह जी उनको इस्लाम के दुश्मन दिखाई देते हैं। वीर हकीकतराय व बन्दा वैरागी का बलिदान उनकी दृष्टि में एक कांटा है। भूषण कवि की रचित 'शिवा बावनी' उनको हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए बाधक जंचती है। अरब के 'हसन' व 'हुसैन' की याद में ताजिये निकालना और कब्रों पर फल चढ़ाना उनको बुतपरस्ती नहीं जंचती। ऐसी बातें सिद्ध करती हैं कि मुसलमानों को भारतवर्ष के इतिहास से कोई लगाव नहीं है। इसलिये जिन-जिन सम्प्रदायों में वर्णित आधार अनुकूल बातें मिलें वही जनसमुदाय उस देश के राष्ट्र का रूप धारण करता है। महर्षि दयानन्द जी ने लिखा है, ''सृष्टि की आदि में आर्य लोग आर्यावर्त देश में आकर बसे।''

हिन्दू महासभा के अनुसार 'हिन्दू' वह है जो इस भूमि को 'पितृभूमि' व 'पुण्यभूमि' समझता हो। श्री महावीर स्वामी, स्वामी

रामकृष्ण परमहंस, श्री बल्लभाचार्य, महात्मा बुद्ध, श्री गुरुनानक आदि महापुरुषों ने इसी देश में जन्म लिया और इसी भूमि में अपने विचारों को फैलाया। इसलिये इनके मानने वाले राजनैतिक तौर पर सभी हिन्दू हैं।

उपरोक्त विचार जब तक मुसलमान न छोड़ेंगे उस समय तक वे कभी हिन्दुस्तान को अपना देश नहीं समझेंगे। यदि वे समझते तो कभी भारत में दो कौमों की समस्या उपस्थित न करते। इस समस्या के सम्बन्ध में सिन्ध सरकार के पूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय खान बहादुर अल्लाबख्श ने २७ अप्रैल सन् १९४० को मुसलमानों की कांफ्रेंस के अवसर पर कहा—

"नौ करोड़ हिन्दुस्तानी मुसलमानों की संख्या जो हिन्दुस्तान के सबसे पहले आबादकारों की सन्तान हैं, निश्चय आत्मिक रूप में इसी देश की द्रविड़ या आर्यन नस्ल की सन्तति है और इस भूमि पर सबसे प्रथम बसने वालों में गिने जाने का अधिकार रखते हैं। मनुष्य अपनी नस्ल को केवल इस आधार पर नहीं छोड़ सकते कि उन्होंने एक दूसरा मजहब ग्रहण कर लिया है।"

इसलिये भारतवर्ष में केवल एक जाति है। और वह केवल आर्य हिन्दू जाति है। हिन्दू महासभा के भूतपूर्व प्रधान वीर सावरकर जी ने उचित ही कहा है, "हमें सम्प्रदाय कहना मूर्खता है। हम हिन्दुस्तानी राष्ट्र हैं। जिस प्रकार जर्मनी में जर्म लोग राष्ट्रीय हैं और यहूदी सम्प्रदाय है। टर्की में तुर्क लोग राष्ट्रीय हैं और अरब तथा आरमीनियन सम्प्रदाय हैं। उसी प्रकार हिन्दुस्तान में हिन्दूलोग राष्ट्रीय हैं और मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि सम्प्रदाय हैं।"
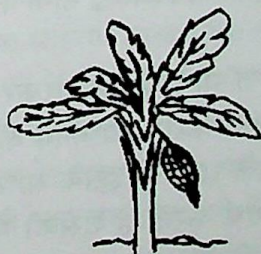
(१३)

कांग्रेस व हिन्दू महासभा

कांग्रेस ने भारतवर्ष के कोने-कोने व घर-घर में परतन्त्रता के विषैले प्रभाव व परिणाम को दृष्टिगोचर कराने और स्वतन्त्रता के लिये इच्छा व लगन उत्पन्न करने में जो कार्य किया है वह अत्यन्त गम्भीर, महत्त्वपूर्ण व सराहनीय है। जिन महानुभावों ने इन विचारों को फैलाने के निमित्त अपने आपको न्यौछावर किया, बन्दीगृहों में सड़कर, पुलिस की लाठी चार्ज व अन्य मनुष्यता से गिरे हुए व्यवहारों के कारण जो कष्ट सहन किये हैं अथवा कर रहे हैं, कौन ऐसा भारतवासी है जो इनसे अपरिचित है और जिनके दिल में इन कष्टों के लिये दुःख नहीं है? कांग्रेस का किसी प्रकार का अहित हो यह न मेरा उद्देश्य है, और न ही किसी का होना चाहिये। किन्तु किसी सभा के विशेष कार्यक्रम से मतभेद होना और उसको प्रकट करने के लिये प्रयत्न करना किसी प्रकार भी निन्दनीय व हानिकारक नहीं है। कांग्रेस किसी मत या मनुष्य समुदाय के किसी वर्ग विशेष की प्रतिनिधि नहीं है स्वयं कांग्रेस भी—जहां तक शब्दों का सम्बन्ध है—अपने आप को किसी सम्प्रदाय या मत की प्रतिनिधि नहीं मानती।

स्वतन्त्रता के युद्ध को शक्तिशाली और देशव्यापी बनाने के हेतु कांग्रेस ने सबको एकत्रित करने के निमित्त मुसलमानों का झुकाव और सम्बन्ध अपनी ओर करना चाहा और इसके लिये उचित अनुचित रूप में उनको प्रसन्न करना और न्याय विरुद्ध मांगों को स्वीकार करना आरम्भ किया।

कांग्रेस यदि अपना मार्ग वीर सावरकर जी की भांति निश्चित करती कि देश को स्वतन्त्र कराने का कार्य कांग्रेस ने करना है, "जो इसके साथ आता है उसके साथ जो इसके साथ नहीं आता उसके बिना ही और जो इसका विरोध करता है उसकी परवाह न करते हुए भी देशहित का काम जारी रहेगा" तो यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता

है कि वर्तमानकाल में जो अनेक विकट बाधाएं उपस्थित हो रही हैं उनमें से बहुत-सी उत्पन्न न होती।

श्री पं० जवाहरलाल जी नेहरू ने अपनी पुस्तक "मेरी कहानी" के ६७वें अध्याय में सेण्ट्रल एसेम्बली में साम्प्रदायिक निर्णय अर्थात् कम्युनल अवार्ड पर सम्मति देने के विषय में कांग्रेसी सदस्यों के मौन धारण करने पर आलोचना करते हुए लिखा, "यह उसकी पिछली तटस्थता की नीति का या यों कहो कि कमजोर नीति का लाज़मी परिणाम था। शुरू से ही दृढ़ नीति अखत्यार की जाती और बिना किसी तात्कालिक परिणाम की चिन्ता किये उसका पालन करते रहना अधिक शानदार और सही तरीका होता।"

कांग्रेसी सदस्य अधिकतर हिन्दू हैं यह सबको विदित है, ऐसा होते हुए भी हिन्दू मुस्लिम विवादास्पद विषयों का निर्णय करने में कांग्रेस का झुकाव मुसलमानों की ओर ही रहा है और इसका परिणाम वही हुआ है कि प्रत्येक ऐसे अवसर पर हिन्दू हितों पर आघात किया गया है या उनका दमन किया गया है।

लाहौर में 'सत्यार्थप्रकाश' के फरमे एक जिल्द बांधने वाले महाशय परमानन्द के पास गये। उसके मुस्लिम सेवकों ने उन फर्मों को जला दिया और महाशय जी का वध कर दिया। परन्तु किसी कांग्रेसी नेता ने दुःख प्रकट नहीं किया। लाहौर में चौदहवें समुल्लास पर प्रतिबन्ध लगवाने के लिये दिवानी अदालत में दावा दायर किया इसको तो महात्मा गांधी जी ने बुरा न समझा और अपने एक वक्तव्य में यह कहने का जरूर साहस किया कि चौदहवें समुल्लास से मुसलमानों का दिल दुखता है, इसलिये इसमें संशोधन कर देना चाहिये। उन्होंने यह न सोचा कि लेखक की इच्छा व आज्ञा के विरुद्ध किसी पुस्तक में एक बिन्दु का भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता। अच्छा यह होता कि वे मुसलमानों को यह उपदेश देते कि कांच के महल में बैठकर दूसरों पर पत्थर फैंकने से अपना भी नाश हो जाता है। सिन्ध सरकार ने चौदहवें समुल्लास के मुद्रण पर भारत रक्षा विधान के अनुसार प्रतिबन्ध लगाया, इसके विरुद्ध आवाज उठाने के लिये श्री भाई परमानन्द जी ने केन्द्रीय धारा सभा में प्रस्ताव उपस्थित किया, परन्तु तीन कांग्रेसी सदस्यों को छोड़कर शेष सब अनुपस्थित हो गये, ऐसा है कांग्रेसी नेताओं का रवैया।

इसलिये हिन्दुओं के दृष्टिकोण को शासकों व प्रजा के सम्मुख रखने के लिए समस्त हिन्दुओं की शिरोमणि सभा अर्थात् हिन्दू महासभा की अत्यन्त आवश्यकता है। वीर सावरकर जी ने इस क्षेत्र में जो कार्य किया है वह प्रशंसनीय और सन्तोषजनक है।

कांग्रेस एक कपोलकल्पित भारतीय जाति की विद्यमानता के अंधविश्वास के कारण हिन्दू महासभा को एक साम्प्रदायिक और पूंजीपतियों की सभा कहकर अपनी द्वेषानल को शान्त करना चाहती है। हिन्दुओं को कहा जाता है कि बताओ हिन्दू महासभा ने देश के लिये क्या कुछ किया है इसमें और मुस्लिम लीग में क्या भेद है ? ऐसे आक्षेपों के उत्तर में केवल यही कहना पर्याप्त होगा कि कांग्रेस की दब्बूनीति के घातक परिणामों के जाहिर होने से पूर्व देशहित के कार्यों के लिये अपने आपको बलिदान करने वाले वीर हिन्दू सज्जन कांग्रेस को ही सबसे उत्तम क्षेत्र समझते थे। इसलिये कांग्रेस के नाम पर जिन हिन्दू सज्जनों ने कष्ट सहन किये और अपना बलिदान चढ़ाया उनको हिन्दू जाति का अंग न मानना मूर्खता है।

हिन्दू महासभा का उद्देश्य 'कांग्रेस की नाईं' देश को आजाद कराने का है। यह भारतवर्ष को अखंड देखना चाहती है और इसके लिये समय पड़ने पर हर प्रकार के कष्ट सहने को उद्यत है। अभी कुछ काल पूर्व भागलपुर में हिन्दूसभा के अधिवेशन पर पाबन्दी लग गई। हिन्दू सभा ने सफलता के साथ सत्याग्रह किया। रियासत हैदराबाद में आर्यसमाज ने अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये जो महान् सत्याग्रह किया और समस्त हिन्दुओं ने उसे जो सहायता दी, इसको जानते हुए कुछ एक पुरुषों का यह कहना है कि कांग्रेस के नाम के अतिरिक्त और किसी नाम पर बलिदान नहीं होते, सर्वथा निर्मूल व आश्चर्यजनक है।

कांग्रेस की वर्तमान नीति में परिवर्तन हो और शुद्ध राष्ट्रीय सभा का रूप अपने वचन व कर्म से धारण करे, यही मेरी इच्छा है। मैं यह भी स्वीकार करता हूं कि परिवर्तन के कुछ-कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। प्रत्येक भारतवासी का यह विश्वास होना चाहिये कि कांग्रेस का आन्दोलन किसी न किसी सीमा पर पहुंचकर भारतवर्ष को वर्तमान परतन्त्रता से मुक्त कराएगा और भारतवर्ष में स्वतन्त्र शासन विधान प्रचलित होगा।

(१४)

यदि पाकिस्तान नहीं तो क्या ?

मुसलमान एक ओर तो अपने लिये स्वतन्त्र सत्ताधारी पाकिस्तान प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न कर ही रहे हैं परन्तु साथ ही दूसरी ओर वे यह भी सोच रहे हैं कि यदि पाकिस्तान किसी न किसी कारण से प्राप्त न हो सके अथवा प्राप्त करने के पश्चात् भी आर्थिक एवं राजनैतिक कारणों से उन्हें स्वयं छोड़ना पड़े तो उस अवस्था में उन्हें, जैसे भी हो, केन्द्रीय तथा प्रान्तीय राज्य में अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त हो जाएं। अधिकारों की यह मांग बढ़ते-बढ़ते इस अनुचित सीमा तक जा पहुंची है कि उन्हें केन्द्र में हिन्दुओं के बराबर अधिकार प्राप्त होने चाहिएं। अब वे इससे भी एक कदम आगे बढ़ने लगे हैं और यह मांग रखने लगे हैं कि प्रत्येक प्रान्त में भी उनकी जनगणना के अनुपात की बात छोड़कर उन्हें हिन्दुओं के बराबर अधिकार दिये जावें। संसार के किसी भी भाग में लघुसंख्यक वर्ग की ओर से यदि ऐसी मांग पेश की जाती तो

उसे तुरन्त ठुकरा दिया जाता, परन्तु भारत में हिन्दू-मुस्लिम समझौते के फेर में पड़े हुए कांग्रेसी हिन्दू इस विष को भी पीने के लिये उद्यत हो गए। "बराबरी" की इस मांग को धीरे-धीरे कांग्रेसी हिन्दुओं ने स्वीकार करना आरम्भ कर दिया और कई योजनाओं में इस सिद्धान्त को भारत के भावी शासन विधान का आधार-स्तम्भ मान लिया जिनका अगले पृष्ठों तथा अध्यायों में वर्णन होगा।

आयंगर-अकबर अली आयोजना

इस जंजीर की एक कड़ी "आयंगर-अकबर अली" आयोजना है। बम्बई के अंग्रेजी पत्र "Sentinel" के २२ जून १९४० के अंक में एक आयोजना प्रकाशित हुई। इसको प्रकाशित कराने वाले हैदराबाद के एक मुसलमान मीर अकबर अली हैं। उन्होंने उस पत्र में यह भी लिखा है कि इस आयोजना का प्रकाशन कांग्रेस के भूतपूर्व प्रधान मि० श्रीनिवास आयंगर की सम्मति और अनुमति से हुआ है। और इसीलिए यह

आयोजना 'आयंगर अकबर अली आयोजना' कही जाती है। इस आयोजना की सारी बातों का उल्लेख करना असंगत है इसलिये केवल इस पुस्तक से सम्बन्ध रखने वाली दो-चार बातें ही लिखना पर्याप्त होगा। इस आयोजना में सबसे अधिक बल 'हिन्दू-मुस्लिम सम संख्या' की स्थापना पर लगाया गया है। इस आयोजना में यह स्थिर किया गया है कि शान्ति स्थापना के लिए यह आवश्यक है कि हिन्दू और मुसलमान 'हिन्दुस्तानी सेना' में और केन्द्रीय व प्रान्तिक मन्त्रिमण्डलों में 'सम-संख्या' में हों। इस आयोजना में यह भी लिखा है कि चुनाव की उत्तम व हितकर रीति 'सम्मिलित लोकमत' है परन्तु वर्तमान वातावरण के कारण यही उचित है कि 'पृथक् लोकमत' को ही चालू रखा जावे। इसमें एक बहुत खराब व युक्ति शून्य सुझाव यह रखा गया है कि "हिन्दू मन्त्रियों का चुनाव धारा सभा के हिन्दू सदस्य करेंगे और मुसलमान मन्त्रियों का चुनाव मुस्लिम सदस्य।" और उनको हटाने के सम्बन्ध में यह बतलाया गया है कि इस कार्य के लिये धारा सभा के सदस्यों का दो-तिहाई की मात्रा में बहुमत हो और इस दो-तिहाई बहुमत में हिन्दू व मुसलमान 'सम संख्या' में हो।

इस धारा का स्पष्ट उद्देश्य यह है कि धारा सभा में हिन्दू व मुसलमान 'सम संख्या' में हो।

सर सुलतान अहमद सुझाव

पाकिस्तान का विरोध हिन्दू महासभा तो कर ही रही है परन्तु अनेक इस्लामी सभाएं व मुस्लिम नेता भी कर रहे हैं। परन्तु उनके विरोध का आधार किसी उच्च सिद्धान्त पर नहीं है अपितु अवस्था पर निर्भर है। वे हिन्दुओं के विरोध को शान्त करने के लिये अथवा उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के लिये पाकिस्तान को मुस्लिम लीग की दृष्टि से न देखकर मुसलमानों के लिये अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। इसी प्रकार की एक आयोजना वायसराय की कार्यकारिणी समिति के भूतपूर्व सदस्य सर सुलतान अहमद ने "A Treaty Between India and the United Kingdom" नामी पुस्तक में प्रकाशित की है। उन्होंने आर्थिक व व्यापारिक उलझनों के कारण पाकिस्तानी भाग का हिन्दू बहुसंख्यक प्रान्तों के संघ से पृथक् रखना मुसलमानों के लिये हानिकारक जंचने के कारण यह लिखा है कि सब प्रान्त एक ही केन्द्र से जुड़े रहें। परन्तु ऐसा लिखते हुए भी उन्होंने

पाकिस्तान का विरोध करने वालों को यह कहकर लताड़ा है—

"Objectors to Pakistan have not so far been able to offer the muslims a suitable alternative one that he may be satisfied with."

अर्थात्—"पाकिस्तान के विरोधियों ने मुसलमानों को पाकिस्तान के बदले में ऐसी कोई उचित चीज़ नहीं दी है जिससे उनको संतोष हो।"

उन्होंने शासन विधान सम्बन्धी बहुत-सी बातें लिखी हैं। उन सब का उल्लेख न करके इस अध्याय से लागू कुछ बातें ही लिखना पर्याप्त है। उन्होंने केन्द्रीय धारा सभा के लिये यह सुझाव पेश किया है कि हिन्दू व मुस्लिम प्रतिनिधियों की संख्या 'समभाग' में हो अर्थात् वे दोनों ४०-४० प्रतिशत मात्रा में हों। शेष २० प्रतिशत दलितों तथा अन्य वर्गों में विभक्त की जावें।

नोट—पाठकगण यह ध्यान रखें कि इन्होंने हिन्दुओं को दो भागों—स्वर्ण हिन्दू तथा दलितों में विभक्त करने की ओर अपना पग उठाया है।

सम्भव है कुछ कांग्रेसी सज्जन यह कहें कि सर सुलतान अहमद ने तो मुसलमानों को ४० प्रतिशत देकर अन्य भारतवर्ष में रहने वालों को ६० प्रतिशत दिया है। यदि वह सर सुलतान अहमद की आयोजना को पढ़ें तो उनका यह भ्रम दूर हो जावेगा। उन्होंने लिखा है कि इस ४० प्रतिशत आयोजना पर मुसलमानों को घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि गत वर्षों का अनुभव यह बतलाता है कि दलित जातियां तथा अन्य जातियां सदा हिन्दुओं के साथ नहीं जुड़ी रहतीं। ये किसी का भी साथ दे सकती हैं। हो सकता है कि कभी उनको साथ मिलाकर मुसलमान बहुसंख्या में हो जावें।

उन्होंने 'शेष अधिकार' (Residuary Powers) को प्रान्तों में स्थित रहने को लिखा है। अन्य बहुत कुछ लिखते हुए मुसलमानों के धार्मिक अधिकारों के संरक्षण पर विचार प्रकट किये हैं, उन सबका उल्लेख न करके केवल निम्नलिखित बातें लिखता हूं। उनके पढ़ने से विदित होगा कि उच्च पद वाला मुसलमान भी अपने इस्लामी विचारों में उतना ही संकुचित व पक्षपातपूर्ण है जितना एक साधारण मुल्ला। वह लिखते हैं—

1. Cow slaughter should be tolerated but done in

undemonstrative manner.
अर्थात्—गौ वध को सहन करना चाहिये परन्तु वह प्रदर्शनीय के ढंग से न हो।

2. A lull in the music before mosque should ensure that Hindu processions would not be disturbed.
अर्थात्—मस्जिदों के सामने बाजा बन्द करने पर यह विश्वास उत्पन्न होना चाहिए कि हिन्दुओं के जलूसों पर कोई गड़बड़ न होगी।
3. The Azan question should present no difficulty.
अर्थात्—अज़ान के बारे में कोई बाधा या अड़चन नहीं होनी चाहिए।
4. Muslim insignia be given a place on congress flag.
अर्थात्—कांग्रेस झंडे पर मुसलमानों का निशान (अर्धचांद) होना चाहिए।

डाक्टर अम्बेदकर

इसी प्रकार अनेक सज्जनों ने इस विषय पर विचार प्रकट किये हैं। इन सब विचारों व आयोजनाओं को सन्मुख रखते हुए वायसराय की कार्यकारिणी समिति के भूतपूर्व सदस्य अम्बेदकर ने अपनी पुस्तक "Thoughts on Pakistan" (प्रकाशित सन् १९४१) में मुसलमानों की आगामी मांगों का अनुमान लगाकर एक सूची लिखी है। वह निम्नलिखित है—

१. केन्द्रीय व प्रान्तीय धारा सभाओं में पृथक् चुनाव द्वारा मुसलमान ५० प्रतिशत प्रतिनिधित्व प्राप्त करेंगे।
२. केन्द्र व प्रान्तों के प्रबन्धकों में मुसलमान ५० प्रतिशत होंगे।
३. नागरिक (civil) नौकरियों में मुसलमानों को ५० प्रतिशत पद दिये जावेंगे।
४. युद्ध करने वाली सेनाओं के सिपाहियों व अफसरों में मुसलमान ५० प्रतिशत होंगे।
५. सब प्रजातन्त्र सभाओं अर्थात् कौनसिलों और प्रजातन्त्र कार्यों के लिये बनाई गई जांच सभाओं में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व ५० प्रतिशत होगा।
६. समस्त अन्तर राष्ट्रीय संस्थाओं में कि जिनमें भारतवर्ष भाग लेगा मुसलमानों का प्रतिनिधित्व ५० प्रतिशत होगा।
७. यदि प्रधानमन्त्री हिन्दू हो तो उप-प्रधानमन्त्री मुसलमान होगा।

८. यदि सेनापति हिन्दू हो तो उप-सेनापति मुसलमान होगा।
९. प्रान्तिक सीमाओं में उस समय तक कोई परिवर्तन नहीं किया जावेगा जब तक धारा सभा के मुस्लिम सदस्यों के दो-तिहाई भाग की स्वीकृति न हो ले।
१०. किसी मुस्लिम प्रदेश के विरुद्ध कोई युद्ध या संधि प्रमाणित नहीं समझी जावेगी जब तक कि धारा सभा के मुस्लिम सदस्यों के दो-तिहाई भाग की स्वीकृति प्राप्त न करली जावे।
११. मुसलमानों की संस्कृति, मज़हब या मजहबी रसम व रिवाज पर लागू होने वाली कोई धारा धारा सभा के मुस्लिम सदस्यों के दो-तिहाई भाग की स्वीकृति के बिना न बन सकेगी।
१२. देश की राष्ट्रीय भाषा उर्दू होगी।
१३. गौ वध करने, इस्लाम धर्म का प्रचार करने और तबलीग करने के कार्य में रुकावट या कमी करने के निमित्त कोई धारा प्रमाणित नहीं होगी जब तक वह धारा सभा के मुस्लिम सभासदों के दो तिहाई भाग की स्वीकृति से पास किया जावे।
१४. शासन विधान में कोई परिवर्तन प्रमाणित नहीं होगा जब तक कि ऐसा करने के लिये सदस्यों की आवश्यक बहुसंख्या में धारा सभा के मुस्लिम सदस्यों का दो-तिहाई भाग शामिल न हो।

उपरोक्त मांगों में से कुछ की पूर्ति होने के पश्चात् और कुछ की प्राप्ति के लिये अनुकूल वातावरण व अवसर पाकर आगामी युग में मुसलमान भारतवर्ष को 'दार-उल-इसलाम' बनाने के लिये कौन-सा मार्ग ग्रहण करेंगे, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। मुसलमानों की इन बढ़ती हुई मांगों का एक मुख्य कारण हमारे कांग्रेसी हिन्दुओं का बार-बार उनकी ओर दौड़ना और उनके सामने समझौते के लिये झुकना है। क्या कांग्रेसी हिन्दू कभी यह सोचने का कष्ट करेंगे कि मुसलमानों को बढ़ावा दे देकर हिन्दुओं के विरुद्ध विषपूर्ण वायुमण्डल उत्पन्न करने में उनका कितना भाग है ? कौन कह सकता है कि पाकिस्तान प्रदान होने के पश्चात् जब कभी भारतवर्ष को पुनः अखण्ड बनाने का विचार हिन्दू मुसलमानों के सामने रखेंगे तो मुसलमान किसी ऐसी आयोजना को पेश न करेंगे ? अब भी अनेक हिन्दू कहलाने वाले सज्जन अपनी रवादारी का ढोल पीटने के लिये हिन्दू-मुस्लिम समझौता कराने के निमित्त समय-समय पर कोई न कोई आयोजना निकालते रहते हैं और प्रत्येक आयोजना मुसलमानों की कोई न कोई मांग पूरी करने का साधन बनती है।

(१५)

सर सप्रू आयोजना

राजा गोपालाचार्य आयोजना पर गांधी–जिन्नाह वार्तालाप असफल हुआ। इसके पश्चात् हिन्दू–मुस्लिम गुत्थी को सुलझाने के निमित्त कुछ सज्जन भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में कोई न कोई मार्ग ढूंढ निकालने के इच्छुक बने, ताकि वे संसार में ख्याति प्राप्त कर सकें। सर सप्रू ने इस सम्बन्ध में पहिला कदम उठाया और उन्होंने भारत के कुछ व्यक्तियों को आमन्त्रित किया। फलस्वरूप ३० सज्जनों की एक टोली बनी जो 'सप्रू कमेटी' के नाम से प्रसिद्ध है। इन ३० में से ५ मुसलमान थे और शेष हिन्दू, सिख आदि। इस कमेटी का निर्माण सर तेज बहादुर सप्रू ने श्री गांधी जी की अनुमति व सहानुभूति से किया। कमेटी के अनेक सभासदों ने देश के भिन्न–भिन्न स्थानों में जाकर और पत्र–व्यवहार द्वारा अनेक विद्वानों व सभाओं के कार्यकर्ताओं से विचार विनिमय करके एक रिपोर्ट तैयार की। उसमें उन्होंने अपनी समिति प्रकट की जो भारत का शासन विधान बनाने में प्रयुक्त होनी चाहिये। उनकी आयोजना का मुख्य प्रयोजन सर स्टैफर्ड क्रिप्स की आयोजना में वर्णित 'शासन विधान निर्मात्री समिति' के निर्माण का ढंग और उसके कार्य क्षेत्र की व्याख्या करना प्रतीत होता है। उनके सुझावों के तीन भाग हैं—

१. प्रथम भाग में यह बतलाया गया है कि जब तक नया शासन विधान न बने उस समय तक एक अन्तःकालीन सरकार बनाई जावे और इसके साथ ही यह भी बतलाया गया कि ऐसी अन्तःकालीन सरकार की स्थिति क्या होगी और इसका तथा गवर्नर–जनरल का सम्बन्ध कैसा होगा।

२. दूसरे भाग में यह वर्णन है कि शासन निर्मात्री समिति के सभासदों की संख्या क्या होगी वह किस ढंग से कार्य करेगी। उन्होंने इस समिति की संख्या १६० रखी है और यह निश्चय किया है कि

इस संख्या में स्वर्ण हिन्दू तथा मुसलमान समसंख्या में अर्थात् ५१, ५१ होंगे। शेष ५८ सीटें दलितों, सिखों, यूरोपियन, ईसाई आदि वर्गों में विभक्त करदी गई है।

कमेटी ने यह लिखा है कि स्वर्ण हिन्दुओं तथा मुसलमानों को 'सम संख्या' में रखा जाना इसलिये स्वीकार किया गया है कि सब मिलकर चुनाव में पृथक् लोकमत की रीति को छोड़ दें और उसके स्थान में 'सम्मिलित लोकमत' चालू करें।

इस कमेटी के कुछ एक सदस्यों ने इस 'सम भाग संख्या' की आयोजना पर इस शर्त के साथ हस्ताक्षर किये हैं कि इस 'सम संख्या' का प्रयोग केन्द्र को छोड़कर अन्य किसी स्थान में न होगा।

३. तीसरे भाग में यह बताया है कि नया शासन विधान किन सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर बनाना चाहिये। इसमें राजकाज सम्बन्धी बहुत-सी बातों का वर्णन किया गया है उन सबका उल्लेख करना इस पुस्तक का क्षेत्र नहीं है इसलिये इस पुस्तक से सम्बन्ध रखने वाली दो एक बातों का वर्णन करना ही पर्याप्त होगा।

(i) कमेटी ने यह बतलाया है कि देश को दो या दो से अधिक पृथक् रियासतों में विभक्त न किया जावे क्योंकि ऐसा करना देश की उन्नति व शान्ति के लिये हानिकारक होगा।

(ii) और साथ ही यह भी कहा है कि ऐसी आयोजना बनाई जावे कि जिसके कारण बरतानवी भारत का कोई भी प्रान्त ऐसा निश्चय न कर सके जिससे कि वह केन्द्रीय सभा से पृथक् हो सके।

(iii) केन्द्रीय धारा सभा में सभासदों की संख्या भारतवर्ष की आबादी के प्रति १० लाख पर एक सदस्य के हिसाब से बनाई जावे।

(iv) इस कमेटी ने यह भी निश्चय किया है कि विशेष हितों के स्थानों को छोड़कर अन्य स्थानों के लिये राय देने का अधिकार प्रत्येक बालिग़ को होगा।

(v) केन्द्रीय धारा सभा के सदस्य किस-किस वर्गों में से और

कितनी संख्या में लिये जावें इसका भी निश्चय कमेटी ने निम्न प्रकार किया है। उन्होंने लिखा है कि यदि मुसलमान सम्प्रदाय यह स्वीकार करे कि वह 'पृथक् लोकमत' को छोड़कर 'सम्मिलित लोकमत' की रीति को इस अवस्था के साथ चालू करें कि उनके स्थान निश्चित हों तो कमेटी यह आयोजना करती है कि विशेष हितों के स्थान को निकालकर शेष स्थानों में मुसलमानों की संख्या वर्ण हिन्दुओं के बराबर हों।

सप्रू कमेटी में विधान निर्मात्री समिति और उसकी ओर से बनने वाली केन्द्रीय धारा सभा के सदस्यों की संख्या में स्वर्ण हिन्दुओं व मुसलमानों को समान संख्या प्रदान की गई है और रिपोर्ट के शब्दों के अनुसार ऐसा करना सर सप्रू आदि की समिति में साम्प्रदायिक एकता में बाधक पृथक् लोकमत की रीति को हटवाने के बदले कोई बहुत अधिक मूल्य देना नहीं है।

सप्रू कमेटी ने इस प्रकार यह समझौता बतलाया कि २७ प्रतिशत मुसलमानों को ५१ प्रतिशत स्वर्ण हिन्दुओं के साथ बराबरी का मूल्य देकर सम्मिलित चुनाव की स्वीकृति मोल ले ली जावे।

कांग्रेस का गत इतिहास साक्षी है कि समय-समय पर सम्मिलित चुनाव की स्वीकृति का मूल्य बढ़ता रहा और जब कभी भी मुसलमानों ने इसको बेचना चाहा और हिन्दुओं ने कोई मूल्य मुसलमानों के सामने रखा तो उसी समय अंग्रेजों ने मुसलमानों को वही मूल्य देकर सम्मिलित चुनाव को मानने से रोक दिया और मुसलमानों ने वह मूल्य प्राप्त करके हिन्दुओं के सामने उसका मूल्य और अधिक बढ़ा दिया अर्थात् उन्होंने अपनी मांगों का क्षेत्र अधिक विस्तृत कर दिया।

रिपोर्ट में कमेटी ने स्वयं ही यह स्वीकार किया है कि जब-जब भी कांग्रेस या हिन्दुओं ने मुसलमानों की मांगों को किन्हीं शर्तों के साथ स्वीकार किया, अंग्रेजी सरकार शर्तों को छोड़कर उन मांगों की पूर्ति करती रही। इसलिये सप्रू कमेटी का यह कहना कि उपरोक्त समितियों में सवर्ण हिन्दुओं और मुसलमानों को सम-संख्या में इस शर्त पर कर

दिया जावे कि मुसलमान सम्मिलित चुनाव मान लें हास्यप्रद और आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। क्या इस कमेटी के अनुभवी और विद्वान् सज्जनों को इतनी सूझ भी नहीं आई कि सम-संख्या की आयोजना के साथ सम्मिलित चुनाव की शर्त का भी क्या इसी प्रकार अन्त्येष्टि-संस्कार नहीं होगा जिस प्रकार अन्य शर्तों का होता रहा है।

इस 'सम-भाग' सुझाव पर सप्रू कमेटी के सभी उपस्थित सज्जनों ने हस्ताक्षर किये। उनमें से कुछ एक मेम्बरों ने इस रिपोर्ट में दिखलाई गई उदारता से भी अधिक उदारता प्रकट करने की अनुमति दी है। और लिखा है कि मुसलमानों को समभाग प्रदान करने के लिये इस शर्त से बान्धना नहीं चाहिये कि वे सम्मिलित लोकमत की रीति को अवश्य स्वीकार करें। कमेटी के सदस्य सर महाराज सिंह के नोट से यह बात स्पष्ट होती है। उनके शब्द हैं—

"The condition requiring Muslims to accept joint electorates before parity of representation in the Central Legislative Assembly is conceded to them, should preferably not be imposed."

अब यही 'सम भाग संख्या' कभी 'मुस्लिम लीग-कांग्रेस' के बीच और कभी 'मुसलमान-स्वर्ण हिन्दू' के बीच क्रीड़ा करती रहती है।

मुसलमान अब और अधिक मांगें उपस्थित करेंगे वा नहीं—इस प्रश्न का सप्रू कमेटी ने एक बड़ा भोलेपन का उत्तर रिपोर्ट के पृष्ठ ३२८ पर दिया है—

"The minorities will when they come to think of it coolly, appreciate that what they have obtained is not the recognition of right inherent in them, but the grant of a concession & the concession is so big that it would be unfair on their part to try to expend its scope or to use it as a mere stepping stone for further demands."

अर्थात्—"लघुसंख्यक वर्ग जब शान्त होकर सोचेंगे तो यह स्वीकार करेंगे कि जो कुछ उन्होंने प्राप्त किया है वह उनको उनके किसी अन्तःस्थित अधिकार के कारण नहीं किन्तु एक रियायत के

कारण प्रदान किया गया है और वह रियायत इतनी महान् है कि यदि वे इसके क्षेत्र को विस्तृत करने का प्रयत्न करेंगे या इसको नई मांगों की उत्पत्ति का साधन बनायेंगे तो यह उनके लिये अनुचित होगा।''

Residuary powers :–

५. सप्रू कमेटी ने यह सुझाव दिया है कि 'शेष अधिकार' प्रान्तों में स्थित होंगे सप्रू कमेटी पृष्ठ १७७ पर स्वयं यह स्वीकार करती है कि वैधानिक दृष्टिकोण से तो यही उचित है कि ऐसा न हो, किन्तु समझौते के लिए वे ऐसा करने पर उद्यत हैं।

सप्रू कमेटी ने यह सुझाव पेश करते हुए महात्मा गांधी जी की सम्मति का भी आश्रय लिया। रिपोर्ट के १७८ पृष्ठ पर महात्मा गांधी जी से किया गया प्रश्न और उसका उत्तर दिये गये हैं—

प्रश्न—"Have you any objection to the provinces and states anjoying the fullest autonomy with Residuary powers vested in them?"

उत्तर—None what so ever.

कमेटी ने यह सुझाव सर्वसम्मति से नहीं किन्तु बहुमत से पेश किया है। इसके विरोधी सदस्यों की सम्मति रिपोर्ट के पृष्ठ ३३० पर लिखित है। उनके मत को बतलाने के लिये दो चार पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती हैं—

".......for the last 150 years India has enjoyed a unitary form of Government. If India has developed a sense of nationality to day it is because the unitry form of Government has been a strong unifying factor. From unitary form of Government to federation is itself a break with the past, but to vest residuary powers in certain artificial units which were created for administrative purposes, and which have varied from time to time is to effect such a violent break that it may well lead to chaos."

अर्थात्—''गत १५० वर्षों से भारतवर्ष केन्द्रीय ढंग की हुकूमत का आनन्द लेता रहा है। भारतवर्ष में राष्ट्रीयता की भावना की उत्पत्ति का कारण यदि कोई है तो यह है कि इस देश में एक केन्द्रीय हुकूमत

सब प्रान्तों को एक सूत्र में बांधने वाली शक्ति रही है। 'एक केन्द्रीय' प्रणाली से 'संघ प्रणाली' की ओर जाना ही भूतकाल की मर्यादा का उल्लंघन करना है और इसके उपरान्त 'शेष सत्ता' को कुछ एक बनावटी प्रान्तों में जो केवल शासन के सुभीते के लिये ही बनाए गए थे और जिनकी सीमाओं में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा है, स्थित करना उस मर्यादा से एक ऐसा भयंकर उल्लंघन है कि उसके परिणाम स्वरूप बहुत भारी गड़बड़ हो सकती है।''

ऐसे ही अनेक सज्जनों ने सप्रू कमेटी के इस सुझाव सिफारिश का विरोध किया परन्तु बहुमत ने प्रान्तों में शेष सत्ता को स्थित करने की आयोजना करदी। इसी बात को बाद में कांग्रेस ने स्वीकार किया और गवर्नमेंट ने कैबिनेट मिशन की आयोजना में १६ मई सन् ४६ को घोषित किया।

इन बातों के अतिरिक्त और बहुत-सी बातें इस रिपोर्ट में लिखी गई हैं जिनका विस्तृत रूप से यहां उल्लेख करना अनावश्यक है।

अन्त में यह निवेदन करदूं कि कमेटी ने मि० जिन्नाह को बुलाना चाहा परन्तु आना तो दूर रहा उन्होंने किसी प्रकार का सहयोग देना भी अपनी मानहानि समझा।

हिन्दुओं ने इस कमेटी का कोई स्वागत नहीं किया, परन्तु अंग्रेज अधिकारियों पर इसका यह प्रभाव अवश्य पड़ा कि उन्होंने यह जान लिया कि हिन्दुओं में कुछ ऐसे मनुष्य भी हैं जो ५१ प्रतिशत स्वर्ण हिन्दुओं को गिराकर २७ प्रतिशत मुसलमानों के बराबर करने को उद्यत हैं। इस प्रभाव का आभास हमें वेवल आयोजना तथा अन्य आयोजनाओं में मिलता है।

(१६)

लियाक़त-देसाई आयोजना

सन् १९४४ की गांधी-जिन्नाह वार्तालाप विफल होने के बाद कांग्रेसी हिन्दू नेता मि० भूलाभाई देसाई ने नवाबजादा लियाकत अली खां को साथ मिलाकर एक "हिन्दू-मुस्लिम सम भाग आयोजना" वायसराय महोदय के सामने रखने के लिये बनाई। यह बहुत समय के बाद स्पष्ट रूप में जनता के सामने आई, परन्तु आरम्भ से ही समाचार-पत्रों के लेखों से और शिमला सम्मेलन के अवसर पर दिये गये एक दो वक्तव्यों से पता चलता है कि 'लार्ड वेवल आयोजना' बहुत कुछ इस आयोजना पर निर्धारित थी। १५ जून १९४५ को A.P.I. के संवाददाता ने लिखा कि लार्ड वेवल के भाषण को सुनकर मि० भूलाभाई देसाई बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि उनके मुख्य सुझाव इस आयोजना में सम्मिलित कर लिये गये थे।

गांधी जी ने एक प्रश्न के उत्तर में लियाक़त-देसाई आयोजना के बारे में कहा—

"भूलाभाई देसाई के सुझावों में जात-पात का कोई रंग नहीं था। उसमें तो दो राजनैतिक संस्थाओं में ५० प्रतिशत का हिसाब था। उस आयोजना के अनुसार यदि कांग्रेस चाहे तो वह गैर हिन्दू, स्वर्ण हिन्दू और अवर्ण हिन्दुओं में से ५० प्रतिशत नियुक्त कर सकती है। यदि कांग्रेस को स्वर्ण हिन्दुओं या अवर्ण हिन्दुओं में से ही अपने भाग को छांटने के लिये बाधित किया गया तो फिर कांग्रेस भारतीय राष्ट्रीय सभा नहीं रहती।"

श्री गांधी जी किन दो संस्थाओं को राजनैतिक सभाएं कहते हैं। यह निम्नलिखित शब्दों से साफ हो जाता है। कांग्रेस कमेटी की एक बैठक की कार्यवाही छापते हुए दैनिक "ट्रिब्यून" लाहौर ने जून २४, १९४५ को जो कुछ लिखा इसका भाषा अनुवाद निम्नलिखित है—

"महात्मा जी की यह उत्कट इच्छा है कि इस आयोजना को सामूहिक रूप से साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से नहीं अपितु राजनैतिक दृष्टिकोण से देखना चाहिए। उनके विचार से देसाई-लियाक़त आयोजना

एक राजनैतिक आयोजना है क्योंकि उसके अनुसार दो राजनैतिक संस्थाओं के रूप में कांग्रेस और मुस्लिम लीग को सम भाग में प्रतिनिधित्व प्रदान होता है।''

उपरोक्त दोनों टुकड़ों को एक साथ पढ़कर यह बात साफ हो जाती है कि जियाकत-देसाई आयोजना में 'हिन्दू-मुसलमान सम भाग' न कहकर 'कांग्रेस-मुस्लिम लीग सम भाग' कहा गया है। एक विशेष मज़हब को मानने वालों की अर्थात् एक साम्प्रदायिक संस्था-मुस्लिम लीग को कांग्रेस के सामान राजनैतिक संस्था मानना और उसको 'समता' का स्थान देना महात्मा गांधी और उनके अन्य भक्त कांग्रेसी हिन्दुओं के लिये सम्भव हो सकता है, अन्य विचारशील मनुष्यों के लिये नहीं।

आयोजना से हिन्दू अहित

कांग्रेस-मुस्लिम लीग में 'सम-भाग' की आयोजना को यदि गहराई के साथ देखा जावे तो विदित होता है कि 'वेवल आयोजना' के मुकाबले में इसके द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों को बराबर के अधिकार दिये गये हैं अर्थात् अवर्ण हिन्दुओं और सिखों को मिलाकर स्पष्टतया हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से अधिक हो जाती है। अब देसाई-लियाक़त आयोजना को देखिये। इस आयोजना के अनुसार कांग्रेस को उतने ही प्रतिनिधि छांटने का अधिकार है जितने मुस्लिम लीग को।

मुस्लिम लीग तो केवल मुसलमानों की सभा है। इसलिये इस आयोजना के अनुसार कांग्रेस सब ग़ैर-मुस्लिमों की संस्था हुई। इसका स्पष्ट अर्थ यही हुआ कि मुसलमानों को मुस्लिम लीग छांटे और ग़ैर-मुस्लिमों को कांग्रेस। ऐसा होने से हिन्दुओं की संख्या मुसलमानों से बहुत कम रह जाती है और सवर्ण हिन्दुओं की और भी कम। कारण यह कि पहले तो कांग्रेस हिन्दुओं की सूची में सिख व दलितों को अवश्य लेगी। इसके अतिरिक्त पारसी, देसी देसाई व एंग्लो इण्डियन वर्गों में से भी कांग्रेस अवश्य मेम्बर लेगी। यदि वह केवल एक ही मेम्बर इन वर्गों में से ले और १०-१० प्रतिनिधि कांग्रेस व लीग के लिये जावें तो मुसलमान १० होंगे और सवर्ण, अवर्ण हिन्दू व सिक्ख मिलकर अधिक से अधिक ९ और शेष वर्गों का कम से कम एक। परन्तु उपरोक्त स्थिति को भी कांग्रेस कभी स्वीकार न करेगी, क्योंकि ऐसा करने से कांग्रेस का राष्ट्रीय रूप नहीं रहता। इसलिए वह मुसलमानों को भी चुनेगी। यदि कांग्रेस अपनी राष्ट्रीयता की धुन में कम-से-कम एक मुसलमान ११ होंगे और शेष सब ९।

हिन्दुओं के लिये कितनी अहितकर है यह 'लियाक़त-देसाई' आयोजना!

उपरोक्त आयोजना को गुप्त रखने का मि० देसाई ने बहुत प्रसत्र किया। परन्तु शिमला सम्मेलन के पश्चात् उपरोक्त आयोजना गुप्त छिद्र से रिसने लगी। बम्बई के एक पत्र "People's War" में लियाक़त देसाई आयोजना के नाम से एक आयोजना प्रकाशित हुई। उस लेख में यह भी लिखा गया कि मि० भूलाभाई देसाई ने बातचीत आरम्भ करने से पूर्व श्री गांधी से लिखित आज्ञा प्राप्त कर ली थी। इसके अतिरिक्त यह भी बतलाया गया कि जनवरी १९४५ के द्वितीय सप्ताह में देहली में मि० भूलाभाई देसाई व मि० लियाक़त अली खां के इस समझौते पर हस्ताक्षर हुए थे।

उपरोक्त लेख के प्रकाशित होने पर सम्वाददाताओं ने उसकी सत्यता को जानना चाहा। मि० देसाई ने कहा, 'जो लियाक़त-देसाई आयोजना कही जाती है वह प्रकाशित नहीं की जा सकती। उसके बनाने में मेरा और मि० लियाक़त अली का समान हाथ है।'

इसका मि० लियाक़त अली ने विरोध किया और उस तमाम गुप्त मन्त्रणा पर से परदा हटा दिया। उन्होंने १८ सितम्बर १९४५ के वक्तव्य में बतलाया कि मि० देसाई कुछ सुझाओं की दो प्रतियां मेरे पास लाये। एक पर उनके हस्ताक्षर थे और दूसरे पर उन्होंने मेरे हस्ताक्षर करा लिये। अपने हस्ताक्षर वाली प्रति उन्होंने मुझे दे दी और मेरे हस्ताक्षर वाली प्रति अपने पास रख ली और यह संकेत किया कि इसको गुप्त रखा जावे और इसके अनुसार भारतीय सरकार निर्माण करने का परामर्श दिया। इस वक्तव्य के साथ ही मि० लियाक़त अली खां ने वह आयोजना भी जनता के सन्मुख प्रकट कर दी जिसका भाषा अनुवाद निम्न प्रकार है।

कांग्रेस और लीग इस पर सहमत हैं कि दोनों को मिलाकर केन्द्र में अन्त:कालीन सरकार बनाई जावे। इस सरकार का निर्माण निम्न-लिखित आधार पर होगा—

(अ) वायसराय की कार्यकारिणी सभा के लिये कांग्रेस और लीग बराबर संख्या में सदस्यों को तथा नियुक्त करेंगी। यह आवश्यक नहीं है कि नियुक्त होने वाले व्यक्ति धारा सभा के सभासद हों।

(आ) लघुसंख्यक वर्गों के प्रतिनिधि, विशेषकर दलितों व सिक्खों के।

(इ) सेनापति।

यह सरकार वर्तमान भारत सरकार एक्ट के अनुसार बनेगी और कार्य करेगी। परन्तु यह स्वीकार कर लेना चाहिये कि यदि कार्यकारिणी सभा किसी विशेष प्रस्ताव को केन्द्रीय धारा सभा से स्वीकार न करा सके तो वह उसको स्वीकार कराने के लिये गवर्नर-जनरल या वायसराय के विशेष अधिकारों का सहारा नहीं लेगी। ऐसा होने से यह सरकार गवर्नर-जनरल के आधिपत्य से पर्याप्त मात्रा में मुक्त हो जावेगी।

कांग्रेस और लीग ने यह निश्चय किया है कि यदि यह अन्तः-कालीन सरकार बन गई तो उनका सर्वप्रथम कार्य यह होगा कि वह कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्यों को बन्दीगृहों से मुक्त करावें।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये निम्नलिखित पग उठाए जावेंगे—

उपरोक्त समझौते के आधार पर कोई ऐसा मार्ग निकाला जावे जिससे गवर्नर जनरल अपनी ओर से यह विचार पेश करे कि वह कांग्रेस व मुस्लिम लीग के समझौते के आधार पर केन्द्र में अन्तःकालीन सरकार बनाना चाहते हैं और जब गवर्नर-जनरल मि० जिन्नाह और मि० भूला भाई देसाई को एक साथ अथवा अलग-अलग बुलावें तो दोनों की ओर से यह इच्छा प्रकट की जावे कि वे अन्तःकालीन सरकार बनाने के लिये आपस में मिलने को तैयार हैं और उपरोक्त समझौता उपस्थित कर दिया जावे।

"अगला पग होगा धारा ९३ को तुड़वाना और यथासम्भव 'Coalition' (संयुक्त) मन्त्रिमण्डल के आधार पर प्रान्तीय सरकारों को बनवाना।"

इस आयोजना को जानकर, प्रत्येक हिन्दू मि० भूला भाई जैसे कांग्रेसी नेता की मनोवृत्ति और सूझ पर शोक प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। इस आयोजना का घातकपन तो इसी बात से प्रकट है कि इसे जनता में खुले तौर पर रखने का भी साहस उनको न हुआ। यदि मि० लियाक़त अली खां इसको प्रकट न करते तो मि० भूला भाई की इच्छा अनुसार इस पर से आवरण हटना कठिन था। इससे भी अधिक शोक इस बात का है कि ऐसी अन्याय पूर्ण आयोजना को श्री गांधी जी ने आशीर्वाद दिया।

मि० भूला भाई देसाई जैसे हिन्दुओं की मनोवृत्ति देखकर किसी कवि की निम्न युक्ति मस्तिष्क में गूंज उठती है—

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से॥

(१७)

लार्ड वेवल आयोजना

वायसराय लार्ड वेवल ने लन्दन सरकार की अनुमति से भारतवर्ष के शासन कार्य के सम्बन्ध में १४ जून १९४५ को एक वक्तव्य द्वारा यह घोषणा की कि वायसराय की कार्यकारिणी समिति (Executive Council) के सभासदों की संख्या बढ़ाई जावेगी और यह समिति अन्त:कालीन समय के लिये होगी। इसका एक मुख्य कार्य यह होगा कि भारतवर्ष के लिये कोई ऐसा विधान तैयार करे जो स्थायी रूप धारण कर सके। वायसराय महोदय ने बतलाया कि इस नई कार्यकारिणी समिति का निर्माण निम्न प्रकार होगा—

१. अ) प्रमुख-प्रमुख सम्प्रदायों के प्रतिनिधि शामिल किये जावेंगे।
   आ) सवर्ण हिन्दू व मुसलमान सम-संख्या में होंगे।
   इ) वायसराय और सेनापति के अतिरिक्त सब सदस्य भातीय होंगे। सेनापति वर्तमान स्थिति के अनुसार युद्ध विभाग के सदस्य रहेंगे।
   ई) पर-राष्ट्र-विभाग जो अब तक वायसराय के आधीन है भारतीय सदस्य के हाथ में होगा।

२. वायसराय ने इस आयोजना के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाये—
   क) वर्तमान राजनैतिक स्थिति में सुगमता उत्पन्न करना।
   ख) सम्पूर्ण स्वराज्य के उद्देश्य की ओर भारतवर्ष को बढ़ाना।

३. वायसराय ने Power of Veto के बारे में कहा—
   इस प्रकार का कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकता कि गवर्नर-जनरल इस बात को स्वीकार करले कि वह निषेधात्मक अधिकार को प्रयोग में न लावे। परन्तु यह अधिकार युक्ति रहित रूप में कभी कार्य में नहीं लाया जावेगा।

*४. वायसराय ने इस घोषणा में यह भी बतलाया कि यह नई कार्यकारिणी समिति, यदि बन गई तो वर्तमान शासन विधान के आधीन रहेगी।

ऐसी अन्त:कालीन सरकार को बनाने के निमित्त शिमले में २५ जून १९४५ को कांफ्रेंस की गई। घोषणा में वायसराय ने इस सम्मेलन को बुलावे का यह अभिप्राय बतलाया कि—

(a) ''गवर्नर-जनरल राजनैतिक संस्थाओं से विचार विनिमय करने के पश्चात् सदस्यों की छांट करेंगे। यद्यपि उनकी नियुक्ति सम्राट् की स्वीकृति के आधीन होगी'' और यह भी बतलाया कि—

(b) ''दुर्भाग्यवश यदि यह सम्मेलन सफल न हुआ तो वर्तमान प्रबन्ध उस समय तक चलता रहेगा जब तक यह सब दल आपस में सहमत न हो जावें।''

हिन्दू महासभा की अनुपस्थिति और कांग्रेसी नेता

शिमला सम्मेलन में भाग लेने के लिये मुस्लिम लीग बुलाई गई। सिखों के नेता मास्टर तारासिंह बुलाये गये। अछूतों का प्रतिनिधित्व करने के लिये राय बहादुर ऐन, शिवराजसिंह बुलाये गये। सवर्ण हिन्दुओं का प्रतिनिधित्व करने के लिये सरकार ने अपने दृष्टिकोण से कांग्रेस को बुलाया और यदि ऐसा न माना जावे तो सवर्ण हिन्दुओं की ओर से कोई भी नहीं बुलाया गया। उपरोक्त सभाओं व सज्जनों के अतिरिक्त प्रान्तिक सरकारों के उस समय के तथा भूतपूर्व प्रधानमन्त्री बुलाये गये। केन्द्रीय धारा सभा व कौन्सिल ऑफ स्टेट की भिन्न-भिन्न पार्टियों के नेता बुलाये गये। श्री गांधी और मिस्टर जिन्नाह भी बुलाये गये परन्तु हिन्दू महासभा नहीं बुलाई गई। महात्मा गांधी ने मौलाना अब्बुल-कलाम आजाद को भी बुलवाने का प्रयत्न किया। परन्तु देश के बहुसंख्यक समुदाय अर्थात् हिन्दुओं के प्रतिनिधियों की अनुपस्थिति के विरुद्ध किसी ने आवाज

---

*नोट—१. लियाक़त देसाई आयोजना में भी यह सुझाव विद्यमान है।

२. वर्तमान शासन विधान अर्थात् एक्ट १९३५ के अन्दर यह दिया हुआ है कि वायसराय की कार्यकारिणी समिति का निर्माण भारत शासन विधान सन् १९१९ के अनुसार होगा। एक्ट १९१९ यह बतलाता है कि कार्यकारिणी समिति भारतवासियों के सामने उत्तरदायित्व न रखते हुए बर्तानियां के भारत सचिव और उसके द्वारा ब्रिटिश पार्लियामेंट के सामने उत्तरदायी होगी।

नहीं उठाई। थोड़े ही दिन पहले सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने जिन-जिन सभाओं के प्रतिनिधियों से भेंट की थी उनमें हिन्दू महासभा के प्रतिनिधि भी सम्मिलित थे। शिमला सम्मेलन में हिन्दू महासभा को बिल्कुल छोड़ दिया गया। हिन्दू महासभा के प्रति गवर्नमेंट के व्यवहार में एकदम इतना परिवर्तन क्यों हुआ ? इस परिवर्तन की जड़ में वास्तव में लियाक़त-देसाई आयोजना है। लार्ड वेवल ने अपनी आयोजना में लगभग ५१ प्रतिशत जनसंख्या वाले सवर्ण हिन्दुओं को २७ प्रतिशत जनसंख्या वाले मुसलमानों के समान कर दिया। यह भेद अब पूर्णतया खुल गया है कि लार्ड वेवल का यह हिन्दुओं के प्रति अत्यन्त अन्यायपूर्ण व्यवहार लियाकत-देसाई आयोजना पर आश्रित था जिसमें सवर्ण हिन्दू-मुस्लिम के स्थान पर कांग्रेस लीग समता रखी गई थी। हिन्दू अधिकारों व हितों की देखरेख करने वाली हिन्दू महासभा का इस अन्यायपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध खड़ा होना अनिवार्य था। इसलिये गुप्त मन्त्रणा करने वालों की ओर से वायसराय को हिन्दू महासभा को न बुलाने का सम्मति देना आवश्यक था।

हिन्दू महासभा की अनुपस्थिति पर कांग्रेसी नेता

हिन्दू महासभा की अनुपस्थिति पर आवाज उठाना तो दूर रहा उल्टा महात्मा गांधी और मौ० आजाद ने अलग-अलग युक्ति देकर लार्ड वेवल के इस कार्य का समर्थन किया। महात्मा गांधी ने एक प्रश्न के उत्तर में कहा—

"अंग्रेज सरकार इस सम्मेलन को बुलाने में धार्मिक भेदभाव के आधार को बचाना चाहती है। उन्होंने केवल राजनैतिक प्रतिनिधि ही बुलाये हैं। इसी विचारधारा के आधार के अनुसार मैं 'मुस्लिम मजलिस', 'जमीयत-उल-उलेमा' और इसी प्रकार अन्य संस्थाओं की अनुपस्थिति को समझता हूं।"

महात्मा गांधी के कथनानुसार यदि इस सम्मेलन में धार्मिक दलों के आधार पर मनुष्य नहीं बुलाये गये तो मुस्लिम लीग को तथा सिखों को किस आधार पर बुलाया गया। यह बड़ी आश्चर्य की बात है कि गांधी जी ने हिन्दू महासभा को 'धार्मिक सभा' समझा। मुस्लिम लीग

जैसी साम्प्रदायिक एवं धार्मिक सभा को राजनैतिक सभा मानने और महासभा की उपस्थिति को अनावश्यक समझने का सीधा परिणाम यह हुआ कि मुस्लिम लीग एक प्रकार से मुसलमानों की एकमात्र संस्था और कांग्रेस हिन्दुओं की एकमात्र संस्था मान ली गई।

मौलाना आज़ाद ने एक-दूसरे ढंग से युक्ति दी—

"हिन्दू महासभा की अनुपस्थिति का कारण यह है कि इस सम्मेलन में जो प्रतिनिधि बुलाये गये हैं वे केन्द्रीय धारा सभा की पार्टियों के आधार पर बुलाये गये हैं।"

इस युक्ति को देते समय यदि मौलाना साहिब यह देख लेते कि धारा सभा में सिखों और दलितों की कोई पार्टी न होते हुए भी मास्टर तारासिंह और राय बहादुर शिवराज सिंह बुलाये गये तो वे ऐसी बोदी युक्ति कभी न देते।

सम संख्या पर कांग्रेसी नेता

कांग्रेस वालों ने हिन्दू-मुस्लिम 'सम-संख्या' की आयोजना पर कोई आपत्ति न उठाई। केवल सरदार पटेल ने इतना कहा—

"सवर्ण हिन्दुओं व मुसलमानों में 'सम-संख्या' की व्यवस्था यदि स्थिर रहती है तो कांग्रेस के लिये शिमला में सम्मेलन में कोई स्थान नहीं है। मैं समझता हूं कि राष्ट्रीय विचारों वाला कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे प्रबन्ध का समर्थक न होगा जो धार्मिक भेदों पर निर्धारित हो।"

महात्मा गांधी जी ने भी १७ जून को वायसराय के नाम एक तार में लिखा—

"If fixity of parity between caste Hindus & Muslims unchangeable, religious division will become officially stereotyped on eve of independence."

अर्थात्—"सवर्ण हिन्दुओं व मुसलमानों के बीच 'सम-संख्या' यदि परिवर्तनशील नहीं है तो स्वतन्त्रता के निकट आने पर मज़हबी भेदभाव सरकारी तौर पर पक्का हो जावेगा।"

परन्तु सरदार पटेल और गांधी जी के उपरोक्त वाक्यों का अभिप्राय भारतीय जनता को भ्रम में डालने के अतिरिक्त और कुछ न था। लियाक़त-देसाई आयोजना को गांधी जी ने ही आशीर्वाद दिया था और

सरदार पटेल ने भी यही उचित समझा कि इसके विरुद्ध आवाज न निकाली जावे। इतना कुछ करके अब वायसराय की आयोजना पर आक्षेप करने का दिखावा करना भोली-भाली जनता को भ्रम में डालने की एक कपट पूर्ण चाल है। इसके उपरांत और कुछ नहीं।

कांग्रेस ने अपने राष्ट्रीय रूप को जनता के सम्मुख प्रमाणित करने के लिये यह आग्रह किया कि कांग्रेस सब सम्प्रदायों का प्रतिनिधित्व करते हुए सब दलों के नाम पेश करेगी। इस बात को मुस्लिम-लीग ने अस्वीकार कर दिया। जब मुस्लिम लीग व सिख आदि सम्प्रदायों के प्रतिनिधि एवं नेता बुलाये गये हैं तो वे अपनी ओर से नाम पेश क्यों न करेंगे। अन्त में कांग्रेस ने मार्ग निकाला कि कांग्रेस मुस्लिम-लीग वालों के, सिखों के और अन्य वर्गों के छांटे हुए नाम अपनी सूची में देगी। कांग्रेस की इस बात को भी स्वीकार नहीं किया गया। अस्तु! कहा जाता है कि कांग्रेस ने एक ऐसी सूची दी जिसका कोई लाभ नहीं हुआ।

मुस्लिम लीग ने अन्त तक यह आग्रह किया कि सब मुसलमान लीग की ओर से लिये जावें। वायसराय महोदय ने अपनी ओर से एक सूची बनाई, उसमें ४ लीगी मुसलमान लिये गये और एक पंजाब की खिजर हयात पार्टी का मुसलमान। इसको भी मिस्टर जिन्नाह ने स्वीकार नहीं किया और इस पर सहमत न होने के कारण मि० जिन्नाह ने अपनी ओर से कोई सूची नहीं दी और इसी को कारण बनाकर वायसराय महोदय ने इस सम्मेलन को विफल मानकर इसको समाप्त कर दिया। सम्मेलन की विफलता पर समस्त राष्ट्रीय भारत ने यह अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार ने अब मुस्लिम लीग को निषेधात्मक अधिकार (Power of Veto) पूर्णतया प्रदान कर दिया है।

इस सम्मेलन के विफल होने पर भारतवर्ष के लिये एक नया शासन विधान बनाने के लिये एक शासन विधान निर्मात्री समिति की आयोजना की गई इसका वर्णन अगले अध्याय में होगा।

(१८)

ब्रिटिश कैबिनेट मिशन

लार्ड पैथिक लोरन्स भारत सचिव, सर स्टेफोर्ड क्रिप्स तथा ए०वी० एलैग्सैण्डर भारतवर्ष की राजनैतिक गुत्थी को सुलझाने के लिये २४ मार्च १९४६ को देहली में पधारे। उन्होंने अनेक अधिकारियों व नेताओं से परामर्श किया। कई सप्ताहों तक वार्तालाप का यह सिलसिला चलता रहा। इस बीच में अनेक योजनाएं, भिन्न-भिन्न सभाओं तथा व्यक्तियों की ओर से मिशन के सामने रक्खी गईं। सबको देखभाल कर अन्त में १६ मई सन् १९४६ को उन्होंने अपनी ओर से एक 'सुझाव' या 'निर्णय' पेश किया। इसका एक मुख्य अंग यह था कि भारत का भावी शासन विधान तैयार करने के लिये एक 'शासन विधान निर्मात्री समिति' बनाई जावे। मिशन ने 'निर्णय' में यह दिया था कि इस समिति का निर्माण किस ढंग से होगा और किन आधारों पर व किन सीमाओं के भीतर रहकर उसके सदस्यों को काम करना होगा। मिशन ने अपने उस 'निर्णय' में उस भावी शासन विधान की मोटे तौर पर बाहरी रूपरेखा भी अंकित करदी थी। वह रूपरेखा निम्नलिखित है अर्थात् निम्न आधारों पर निर्मात्री समिति को भारत का शासन विधान बनाना था—

ब्रिटिश कैबिनेट मिशन सुझाव

इस 'निर्णय' की कुछ बातें लिखने से पूर्व यह बतलाना आवश्यक है कि इस 'निर्माण' में ३ शब्दों का विशेषकर प्रयोग हुआ है वह है, 'Union', 'Section', 'Group' मैंने 'Union' के लिए 'समुदाय' शब्दों का प्रयोग किया है। इस व्याख्या के साथ में उसकी कुछ धाराओं को हिन्दी में लिखता हूं—

१. ''समस्त भारत का एक संघ होना चाहिए जिसमें ब्रिटिश भारत और देशी रजवाड़े सम्मिलित होंगे। उस संघ के हाथ में 'रक्षा', 'यातायात' तथा 'पर-राष्ट्र' सम्बन्धी विषय होंगे। इन विषयों के संचालन करने के लिये धन प्राप्त कराने के अधिकार भी उसको होंगे।''

२. "प्रस्तावित संघ में एक 'शासन परिषद्' और एक 'धारा सभा' हों। इनका निर्माण ब्रिटिश भारत व देसी रजवाड़ों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित करके किया जावे। धारा सभा में किसी बड़े साम्प्रदायिक प्रश्न के निर्णय के लिये दोनों प्रमुख सम्प्रदायों के उपस्थित तथा राय देने वाले प्रतिनिधियों का पृथक्-पृथक् बहुमत हों और साथ ही उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों का भी बहुमत हो।"

३. "संघ के आधीनस्थ विषयों को छोड़कर अन्य समस्त विषय और 'शेष अधिकार' (Residuary Powers) प्रान्तों में स्थित होंगे।"

४. "उन विषयों को छोड़कर जिन्हें देसी रियासतें 'संघ' को सौंप देंगी, 'शेष समस्त विषय तथा अधिकार' रियासतों के अपने आधीन रहेंगे।"

५. "प्रान्तों को आपस में शासन-परिषदों और धारा सभाओं के साथ समुदाय बनाने में स्वतन्त्रता होगी और प्रत्येक समुदाय को यह अधिकार होगा कि वह यह निर्णय करें कि कौन-कौन से प्रान्तीय विषय सांझे रखे जावें।"

६. "संघ के और समुदाय" के विधानों में एक शर्त यह रखी जावे कि कोई भी प्रान्त अपनी धारा सभा के बहुमत से प्रथम वार १० वर्षों के बाद और फिर प्रत्येक १० वर्षों के अन्तर से इस विधान की व्यवस्था पर पुनः विचार किया जा सकता है।"

इनका वर्णन करने के बाद मिशन ने अपने सुझाव की धारा १८ में यह बतलाया है कि 'शासन विधान निर्मात्री समिति' का चुनाव किस आधार पर होगा। वह निम्नलिखित है—

(अ) "हर एक प्रान्त को उसकी आबादी के आधार पर प्रति १० लाख जनसंख्या पर एक सभासद के हिसाब से सदस्य भेजने का अधिकार होगा।"

(आ) "प्रत्येक प्रान्त के सदस्यों की संख्या उस प्रान्त के प्रमुख सम्प्रदायों में उनकी जनसंख्या के अनुपात में विभक्त होंगी।"

(इ) "प्रत्येक प्रान्त में प्रत्येक सम्प्रदाय के सदस्यों को चुनने का अधिकार उसी प्रान्त के उस समय बनी हुई धारा सभाओं में उसी सम्प्रदाय के सदस्यों को होगा।"

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने भारत की जनसंख्या को ३ वर्गों में विभक्त किया है—सर्व 'साधारण', 'मुसलमान' और 'सिख'।

खण्ड—सुझाव की धारा १९ में प्रान्तों को ३ खण्डों में विभक्त किया गया है और यह भी निश्चय किया गया है कि कौन-कौन प्रान्त किस खण्ड में होंगे और इसके साथ यह भी बतलाया गया है कि प्रत्येक प्रान्त में इन तीनों वर्गों की क्या संख्या होगी।

सदस्यों व खण्डों की तालिक

खण्ड (अ)

प्रान्त	सर्वसाधारण	मुसलमान	सिख	योग
मद्रास	४५	४	×	४९
बम्बई	१९	२	×	२१
संयुक्त प्रान्त	४७	८	×	५५
बिहार	२१	५	×	३६
मध्य प्रान्त	१६	१	×	१७
उड़ीसा	९	०	×	९
योग	१६७	२०	×	१८७

खण्ड (बी)

प्रान्त	सर्वसाधारण	मुसलमान	सिख	योग
पंजाब	८	१६	४	२८
सीमा प्रान्त	०	३	०	३
सिन्ध	१	३	०	४
योग	९	२२	४	३५

खण्ड (सी)

प्रान्त	सर्वसाधारण	मुसलमान	सिख	योग
बंगाल	२७	३३	×	६०
आसाम	७	३	×	१०
योग	३४	३६	×	७०
कुल योग (अ)	१६७	२०	×	१८७
,, ,, (बी)	९	२२	४	३५
,, ,, (सी)	३४	३६	×	७०
	२१०	७८	४	२९२
देसी रजवाड़ों के अधिक से अधिक				९३
				३८५

नोट—१ योग (अ) में देहली प्रान्त का सदस्य होगा जो इस समय केन्द्रीय सभा का सभासद है। इसी प्रकार अजमेर मारवाड़ का होगा और एक प्रतिनिधि 'कुरग' धारा सभा का होगा।

नोट—२ ब्रिटिश बिलोचिस्तान का प्रतिनिधि भी इसमें सम्मिलित होगा।

इसी धारा के उपांग ४, ५ व ६ में यह बतलाया गया है कि प्रान्तीय प्रतिनिधि उपरोक्त तालिका में दिये हुए 'अ', 'बी' व 'सी' खण्डों के अनुसार अपने आपको तीन भागों में विभक्त करेंगे और प्रत्येक भाग अपने-अपने खण्डों के लिये शासन विधान का निर्णय करेंगे और यह भी निश्चय करेंगे कि इन प्रान्तों में किस सीमा तक कोई समुदाय रूप में शासन विधान बनाया जायेगा या नहीं। और यदि बनाया गया तो कौन-कौन से प्रान्तीय विषयों का समुदायक शासन के आधीन संचालन किया जावेगा।

इस धारा के उपांग आठ के अनुसार प्रान्तों को अपने समुदाय से बाहर आने का अधिकार होगा। परन्तु यह उग वक्त होगा जबकि नये विधानानुसार बनी हुई धारा सभाओं में सदस्य बहुमत से समुदाय से बाहर आने का निर्णय करें।

उपरोक्त सुझाव या निर्णय में प्रान्तों को तीन खण्डों में विभक्त किया गया है और उनको यह अधिकार भी दिया गया है कि यदि प्रत्येक खण्ड के प्रान्त अपने लिये सामुदायक रूप में कुछ शासन विधान बनाना चाहें तो बना सकते हैं। परन्तु ऐसा समुदाय शासन बनाने के उपरान्त कोई प्रान्त उस समुदाय को उसी समय छोड़ सकता है जब नये शासन विधान के अनुसार बनी हुई प्रथम धारा सभा में पृथक् होने का प्रस्ताव पास हो जावे। इसके अतिरिक्त सुझाव में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि केन्द्र के तीन विषयों को छोड़कर अन्य सब विषय प्रान्तों के अधिकार में होंगे। प्रान्तों को यह अधिकार भी दिया गया है कि यदि वे चाहें तो कुछ और विषय भी केन्द्र को सौंप सकते हैं, परन्तु उन निश्चित और स्पष्ट अधिकारों को छोड़कर शेष अधिकार प्रान्तों के अन्दर स्थित रहेंगे।

उपरोक्त सुझाव में स्पष्ट रूप से यह नहीं बताया गया है कि केन्द्र के अधिकार में अपना कार्य संचालन के लिये धन प्राप्ति के कौन से स्रोत एवं साधन होंगे, केवल इतना बताया गया है कि धन प्राप्ति के अधिकार उसके पास होने चाहियें। इस बात का निश्चय तीनों खण्ड करेंगे कि

धन प्राप्ति के कौन से साधन किस सीमा तक केन्द्र को दिये जावें। इसका यह अर्थ है कि शासन कार्य को चलाने के लिये आवश्यक धन प्राप्त करने के लिये उसको प्रान्तों पर निर्भर होना पड़ेगा और ऐसा करके प्रान्तीय खण्डों को केन्द्र के आर्थिक आधिपत्य से मुक्त कर दिया गया है। पंजाब यूनिवर्सिटी के अर्थशास्त्री प्रो० बृजनारायण ने लिखा है कि—

"उन्होंने वास्तविक रूप में मि० जिन्नाह की पाकिस्तान की मांग को पूरा किया। इसके अतिरिक्त इस योजना का कोई स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। मुख्य बात यह है कि कैबिनेट मिशन के सुझाव 'पश्चिमी पाकिस्तान को हिन्दुस्तान के आर्थिक आधिपत्य से मुक्त करते हैं' इसी विश्वास पर इसको मि० जिन्नाह ने स्वीकार किया है।"

सारांश यह है कि कैबिनेट मिशन योजना में एक सीमित और प्रभाव रहित केन्द्र को रखकर लगभग पूर्ण पाकिस्तान प्रदान कर दिया गया। इस सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि ब्रिटिश कैबिनेट का उपरोक्त निश्चय बहुत सीमा तक कांग्रेस की ओर सें स्वीकृत सिद्धान्तों तथा उसके सुझावों पर निर्धारित था। समाचार पत्रों के समाचारों से तथा मौलाना आज़ाद के वक्तव्यों व भाषणों से यह बात पूर्णतया प्रमाणित होती है।

कांग्रेस सुझाव

२६ जून सन् १९४६ को इससे पहले के तीन महीनों की घटनाओं पर समालोचना करते हुए कांग्रेस प्रधान ने स्वयं यह स्वीकार किया कि—

"It is an open secret that the Cabinet Mission's long term proposals are formed according to the principles laid down in the Congress scheme."

अर्थात्—"यह एक खुला भेद है कि कैबिनेट मिशन की दीर्घकालीन योजना का निर्माण कांग्रेस की योजना में प्रतिपादित सिद्धान्तों के आधार पर हुआ है।"

इसी समालोचना में कांग्रेस के उन सिद्धान्तों का भी राष्ट्रपति ने वर्णन किया है जिसका भाषा अनुवाद निम्नलिखित है।

१. "एक सीमित किन्तु जीवित और शक्तिशाली केन्द्र जिसके अधिकार कुछ एक मूल विषयों तक सीमित हों, अनिवार्य था।"
२. "एक केन्द्रीय शासन प्रणाली वर्तमान परिस्थिति की आवश्यकताओं

को उसी प्रकार पूर्ण नहीं कर सकती जिस प्रकार भारत का कई स्वतन्त्र रियासतों में विभक्त हो जाना।''

३. 'शेष अधिकारों' के साथ प्रान्त के स्वयं शासन के अधिकार को स्वीकार करना।

अ) प्रान्त केन्द्रीय विषयों को छोड़कर अन्य सब विषयों का प्रबन्ध करेंगे।

ब) प्रान्तों की यह इच्छा पर निर्भर होगा कि वे केन्द्र को अन्य जो विषय सौंपना चाहे सौंप दे।''

इन सिद्धान्तों का वर्णन करने के बाद मौलाना आज़ाद ने इस बात पर सन्तोष प्रकट किया है कि इस योजना में भारत को अखण्ड रखा गया है और भारत को विभाजित करने का प्रश्न सदा के लिये शान्त कर दिया गया है योजना के सम्बन्ध में उन्होंने कहा—

अ) ''भारतवर्ष के विभाजन की तमाम योजनाएं सदैव के लिये रद्द करदी गई है।''

ब) ''यह पूर्ण अधिकार युक्त 'विधान निर्मात्री समिति' विभाजित भारतवर्ष का नहीं अपितु अखण्ड भारतवर्ष का विधान बनायेगी।''

ज) ''केन्द्रीय संघ के अधिकार भले ही सीमित हों किन्तु यह संघ बलशाली और जीवित होगा।''

पहली बात—अर्थात् अखण्ड करने की बात सदा के लिये समाप्त हो गई है—तो मौलाना आजाद के उपरोक्त लेख की स्याही सूखने से पहले ही समाप्त हो गई है, अब दूसरी तथा तीसरी बात पर भी विचार कर लेना चाहिये। दूसरी बात यह थी कि निर्मात्री समिति 'पूर्ण अधिकार युक्त होगी।' यह समिति कितने 'पूर्ण अधिकार वाली' है। इसको भी देख लें।

लार्ड पैथिक लारेंस का वक्तव्य प्रेस सम्मेलन में

लार्ड पैथिक लारेंस ने मौलाना आज़ाद के २० मई सन् १९४६ के पत्र के उत्तर में जो स्पष्टीकरण किया है उसका भाषा अनुवाद निम्नलिखित है—

''शासन विधान समिति के बन जाने पर और अंकित आधारों पर कार्य चालू होने पर स्वभावत: समिति की कार्य प्रणाली में कोई हस्तक्षेप करने का अथवा उसके निश्चयों पर किसी प्रकार की आपत्ति उठाने का कोई विचार नहीं है। जब यह समिति अपना कार्य समाप्त कर लेगी उस

समय ब्रिटिश सरकार पार्लियामेंट को वह कार्यवाही करने की सिफारिश करेगी जिससे कि हिन्दुस्तानी जनता को राजकीय अधिकार सौंपे जा सकें। ऐसा करते हुए केवल दो बातों का जिनका 'सुझावों' में भी वर्णन किया गया है और जो वाद-विवाद रहित है—ध्यान रखा जावेगा। उनमें से एक है लघुसंख्यक वर्गों की रक्षा का उचित प्रबन्ध और दूसरा है अधिकारों की बदली से उत्पन्न हुए मामलों पर भारतवासियों की बर्तानियां से सन्धि करने की रजामन्दी।''

तीसरी बात के सम्बन्ध में—अर्थात् यह सीमित केन्द्र जीवित एवं 'शक्तिशाली होगा' पाठकों का ध्यान पीछे दिये गये प्रो० बृजनारायण के विचारों की ओर पुनः आकर्षित करना ही पर्याप्त होगा। इस प्रश्न पर कुछ विचार आगे भी दिये गये हैं। ऐसे सीमित, शक्ति रहित तथा अपने खर्चे के लिये प्रान्तों पर निर्भर केन्द्र को 'जीवित एवं शक्तिशाली' कहना आत्म प्रवञ्चना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। कैबिनेट मिशन योजना इतनी खोखली तथा दोषपूर्ण थी फिर भी कांग्रेस ने इसका मुक्तकण्ठ से स्वागत किया।

कांग्रेसी नेताओं के विचार

पं० जवाहरलाल जी ने कहा—''भारतवर्ष में बर्तानवी सत्ता की समाप्ति का आरम्भ है।''

सरदार पटेल ने कहा—

प्रस्तुत आयोजना के अनुसार बर्तानियां की ओर से हिन्दुस्तानी हाथों में राज्य-अधिकार बग़ैर किसी अड़चन के तथा शान्तिमय ढंग से आ जावेंगे। इसलिये हमारा यह विश्वास है कि हमें इस आयोजना से लाभ उठाना चाहिये और देश को संघर्ष में नहीं धकेलना चाहिये।''

मौलाना आजाद ने कहा—

''जिन बातों को हम बहुत वर्षों से मांग रहे थे वे हमको मिल गई हैं। आज हमें अपना मार्ग स्वयं निश्चित करना है।''

उपरोक्त वक्तव्यों से विदित है कि कांग्रेसी नेता इस आयोजना को जिसमें भारतवर्ष को खण्ड में विभक्त कर दिया गया है, केन्द्र को सीमित और शेष अधिकारों को प्रान्तों में स्थित कर दिया गया है स्वतन्त्रता का द्योतक समझते हैं। परन्तु कुछ समाचार-पत्रों व नेताओं ने खुले दिल से इस आयोजना के विषैले परिणामों को जनता के सामने रखा है। उदाहरणार्थ कुछ वक्तव्य नीचे दिये जाते हैं—

लाहौर के 'ट्रिब्यून' ने १९ जून १९४६ को लिखा—

"The picture drawn by the cabinet mission of To-morrow's India has ugly lines and dismal colours. The centre completely emasculated & the country divided into two warring camps. Hindu & Muslim and dotted all over with big & small feudal Ulsters like ulcers how can this political panorama please genuine patriots? With the forty crores of people divided into small units of a few crores each & placed under different forms of government, British Imperialism will be easily in a position to have a comfortable foot slall here and a snug arm chair there."

अर्थात्—"आगामी भारतवर्ष का जो चित्र कैबिनेट मिशन ने खींचा है उसकी रेखाएं बहुत भद्दी हैं। रंग बड़ा शोकजनक और फीका है। केन्द्र को नपुंसक करके देश को दो युद्ध करने वाले दलों में विभक्त कर दिया है। इस चित्र में अनेक छोटी-बड़ी स्वतन्त्र रियासतें स्थान-स्थान पर फोड़ों की नाईं दिखलाई दे रही हैं। ऐसा राजनैतिक चित्र शुद्ध देशभक्तों को कभी प्रसन्न नहीं कर सकता। चालीस करोड़ जनता को कुछ करोड़ों के छोटे-छोटे खण्डों में विभक्त करके और उनको भिन्न-भिन्न प्रकार शासनों के आधीन रखकर बर्तानवी साम्राज्यवाद के लिये यह सरल होगा कि इन में से कितनी ही रियासतों में अपना पांव जमाए रख सके।"

डॉ० मुञ्जे—

हिन्दू महासभा ने नेता डॉ० मुञ्जे ने कहा—

"प्रान्तों में 'शेष अधिकार' स्थित होने पर तथा प्रान्तों को अलग संघ बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान होने पर कौन कह सकता है कि ९५ प्रतिशत पूर्ण अधिकार युक्त पाकिस्तान मि० जिन्नाह को उसी रूप में प्रदान नहीं हुआ है कि जिसकी स्वीकृति महात्मा गांधी और मि० राजगोपालाचार्य की ओर से थी।"

अन्ततः इस आयोजना को—जुलाई १९४६ के आरम्भ में अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमेटी ने अपनी बम्बई की बैठक में स्वीकार कर लिया। अर्थात् मि० जिन्नाह को कांग्रेस की अनुमति और सहायता से एक साधारण से सीमित केन्द्र को छोड़कर सब कुल मिल गया।

मौलाना आज़ाद की दृष्टि में कांग्रेस सुझाव के लाभ—

उपरोक्त बात को मौ० आज़ाद ने अधिक रोचक शब्दों में स्वीकार किया है। २५ जून १९४६ के वक्तव्य में जो शब्द उन्होंने कहे उसका भाषा अनुवाद निम्नलिखित है—

"जिस योजना को कांग्रेस से स्वीकृति कराने में मैं सफल हुआ हूं उससे पाकिस्तान के तमाम अवगुण नष्ट हो जाते हैं और उसके गुणों की प्राप्ति हो जाती है।"

पाकिस्तान का आधार मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों में केन्द्र के हस्तक्षेप का डर है। क्योंकि केन्द्र में हिन्दुओं का बहुमत होना अनिवार्य है। इसीलिये कांग्रेस ने इस भय को शान्त करने के लिये यह उपाय निकाला है कि प्रान्तों को पूर्ण सत्ता प्रदान करदी जावे और 'शेष सत्ता' प्रान्तों में स्थित हो। फलस्वरूप कांग्रेस की इस योजना से यह बात निश्चित हो जाती है कि मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्त आन्तरिक रूप में अपनी इच्छा अनुसार अपनी उन्नति करने में स्वतन्त्र होंगे। किन्तु साथ ही वे उन तमाम मामलों में जिनका सम्बन्ध समूचे भारतवर्ष से है, अपना प्रभाव केन्द्र पर डाल सकेंगे।"

ब्रिटिश मिशन ने भी अपने सुझाव के धारा ५ में मुसलमानों के भय को सार्थक बतलाकर केन्द्र के विरुद्ध उनके आन्दोलन को सरकार की दृष्टि में उचित मान लिया है।

मि० जिन्नाह इस ९५ प्रतिशत तथा 'अवगुण रहित' पाकिस्तान पर भी सन्तुष्ट नहीं हुए। कैबिनेट मिशन आयोजना के अनुसार शासन विधान निर्माण समिति के लिए प्रान्तों में चुनाव हुए। इस कार्य में लीग भी सम्मिलित हुई। परन्तु 'समिति' का कार्य प्रारम्भ होने से पहले ही मि० जिन्नाह ने पल्टा खाया और फिर अपने 'पूर्ण पाकिस्तान' की रट लगानी प्रारम्भ कर दी। लीग ने निर्मात्री समिति के कार्य में किसी प्रकार भी सहयोग देने से अपने सभासदों को रोक दिया। लीग को पुनः मनाने के लिए फिर भाग दौड़ होने लगी। अन्त में हुआ वही जो होना था— अर्थात् जैसा कि सब जानते हैं, लीग अपना सम्पूर्ण अधिकार युक्त (Soverign) पाकिस्तान प्राप्त करने में सफल हो गई। अस्तु।

अन्तःकालीन सरकार के निर्माण करने और कार्य संचालन में कांग्रेस मुस्लिम लीग की तरफ कितनी झुकी और मुस्लिम लीग ने क्या-क्या अड़चनें डाली। यह अगले अध्याय में देखें।

(१९)

अन्तःकालीन सरकार १९४६

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की योजना प्रकाशित होते ही वायसराय ने अपनी कार्यकारिणी समिति या अन्तःकालीन सरकार को निर्माण करने का कार्य हाथ में लिया। इसके लिये वायसराय और कांग्रेस प्रधान में काफी पत्र-व्यवहार हुआ। ये सब पत्र ३० जून १९४६ को प्रकाशित हुए। इन पत्रों के पढ़ने से पता लगता है कि इस सरकार का निर्माण करने में क्या-क्या विचार विनिमय हुए और किन-किन मार्गों से निकलकर अन्तिम आयोजना स्थिर हुई। आरम्भ में वायसराय का यह सुझाव था कि इस समिति की संख्या १३ हो, इसमें मुस्लिम लीग की ओर से ५ मुसलमान, कांग्रेस की ओर से ५ स्वर्ण हिन्दू, १ दलित और २ अन्य वर्गों की ओर से लिये जावें। इस प्रकार इस सुझाव में वही 'संख्या' रखी गई जो शिमला सम्मेलन पर रखी गई थी। शिमला सम्मेलन के अवसर पर कांग्रेसी नेताओं ने 'सम संख्या' पर कोई आपत्ति न उठाई थी और इस कारण भारतीय जनता ने इन नेताओं पर बहुत कटाक्ष और आक्षेप किये। अनेक समाचार-पत्रों ने इस 'सम-संख्या' के स्रोत लियाक़त देसाई आयोजना को कांग्रेसी नेताओं की ओर से अपनाए जाने को कांग्रेस की अनेक गलतियों व भूलों में से एक भीषण प्रकार की ग़लती व भूल लिखा। इस आन्दोलन को शांत करने के लिए इन नेताओं ने इस अवसर को एक सुनहरी अवसर समझा और इस 'सम संख्या' का विरोध किया।

सम-संख्या पर कांग्रेसी नेता—

उन्होंने इस विषय में अपनी बिगड़ी हुई स्थिति को सुधारने के निमित्त १४ जून १९४६ के पत्र में लिखा—

"This parity or by whatever other name it may be called has been opposed by us throghut and we consider it a dangerous innovation which instead of working for

harmony will be a source of continuous conflict and trouble. It may well poison our future as other separatist steps in the past have poisoned our public life."

अर्थात्—"इस सम भाग सुझाव का, या जिस किसी नाम से भी इसे पुकारा जाये, हमने सदैव ही विरोध किया है। हम समझते हैं कि यह एक ऐसा भयंकर सुझाव है कि एकता के स्थान में दंगे व फिसाद उत्पन्न करेगा यह हमारे भविष्य को उसी प्रकार विषैला बनायेगा जैसे भूतकाल में (हिन्दू-मुसलमानों को) पृथक् करने वाली बातों ने हमारे राष्ट्रीय जीवन को विषैला बनाया है।"

ऐसा जानते और मानते हुए भी कांग्रेसी नेताओं ने 'लियाक़त-देसाई' इस योजना को क्यों अपनाया? और क्यों शिमला कांफ्रेंस के अवसर पर इसके विरुद्ध आवाज़ न उठाई? इस प्रश्न का उत्तर हमें राष्ट्रपति मौ० आज़ाद के १६ जून के पत्र में मिलता है—

"युद्ध के दबाव तथा अन्य सामयिक परिस्थितियों के कारण हम उस आयोजना को केवल उस समय के लिए ही स्वीकार करने के लिये उद्यत थे, परन्तु इसका यह आशय नहीं था कि उसका प्रयोग मर्यादा रूप में बाद में भी किया जावे।"

वायसराय का अड़चन को सुलझाना

कांग्रेस वालों की आन्तरिक मनोवृत्ति को जानते हुए और उनके व्यवहारों में परस्पर विरोध की बातों को समझते हुए इस नई अड़चन को वायसराय ने दूर करने के निमित्त यह सुझाव रखा कि कांग्रेस ५ स्वर्ण 'हिन्दुओं' के स्थान में ६ 'हिन्दुओं' को छांटे जिन में से १ 'दलित' हो। और इसके साथ ही अपनी आयोजना में वर्णित 'दो अन्य वर्गों' की व्याख्या करके यह स्थिर किया कि एक देसी ईसाई लिया जावे और एक पारसी। इसके साथ ही सिक्खों को प्रसन्न करने के लिये वायसराय ने कार्यकारिणी समिति में एक जगह और बढ़ादी। इस प्रकार १३ के स्थान पर १४ सदस्य बनाने का निश्चय हुआ।

उपरोक्त सुझाव में 'सम-संख्या' के विरुद्ध कांग्रेस की अड़चन को दूर करने का कैसा सरल और बच्चों को लुभाने वाला उपाय बतलाया गया। एक साधारण बुद्धि का स्वामी भी ऐसे सुझाव को अस्वीकार कर देता। परन्तु इस अन्तःकालीन सरकार के सदस्य बनने की उत्कण्ठा

कांग्रेस नेताओं के हृदय में ऐसे प्रबल रूप में उत्पन्न हो चुकी थी कि उन्होंने इस आयोजना को स्वीकार करने के लिए बहुत कुछ घूम-घामकर अन्त में न केवल इसको स्वीकार ही किया किन्तु उच्च कोटि के कांग्रेसी नेता पं० जवाहरलाल, सरदार पटेल व बाबू राजेन्द्रप्रसाद आदि इसमें सम्मिलित हुए।

वायसराय का निमन्त्रण

आयोजना के अनुसार अन्तःकालीन सरकार के सदस्य बनने के लिये १४ सज्जनों को निमन्त्रित किया और निमन्त्रण देते हुए यह घोषणा की—

"निमंत्रित सज्जनों को यह ज्ञान होना चाहिये कि अन्तःकालीन सरकार का कार्यक्रम ऐसा होगा जिससे शासन विधान निर्मात्री समिति का कार्य १६ मई १९४६ के सुझाव के अनुसार सञ्चालित हो सके।" उसी घोषणा में यह भी बतलाया गया कि "यदि कोई सज्जन किसी कारणवश शामिल न हो सके तो वायसराय किसी अन्य व्यक्ति को निमन्त्रण देंगे और अन्तःकालीन सरकार के बनने के पश्चात् किस सदस्य को कौनसा 'राजकार्य विभाग' (Port folio) दिया जावे यह दोनों दलों के प्रमुख्य नेताओं से विचार विनिमय करके निश्चय किया जावेगा।" इसके साथ ही वायसराय महोदय ने यह भी बतलाया कि "यदि उपरोक्त आधारों पर अन्तःकालीन सरकार को निर्माण करने में दोनों दल अथवा उनमें से कोई एक दल अपने आपको असमर्थ समझे तो अन्तःकालीन सरकार के निर्माण करने का कार्य पूरा किया जावेगा।"

कांग्रेस कार्यकारिणी समिति जून १९४६

वायसराय के वक्तव्य पर विचार करने के लिए कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक जून १९४६ में हुई जिसमें अनेक बातों पर विचार हुआ। वायसराय द्वारा निमन्त्रित सज्जनों में से एक दो नामों को बदलवाने के लिये काफी जोर दिया गया और जिसके फलस्वरूप नामों में परिवर्तन भी हुआ। इस सारे नाटक में जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात है वह यह कि इस बैठक में 'सम-संख्या' योजना पर कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। सबसे अधिक शोर इस बात पर मचाया गया कि वायसराय ने ५ स्वर्ण हिन्दुओं व एक दलित को छांटने का जो अधिकार कांग्रेस को दिया है वह उसकी नीति के विरुद्ध है। उसको यह अधिकार होना चाहिए कि

वह अपने भाग में मुसलमान को भी छांट सके। उन्हीं दिनों समाचार पत्रों में यह भी प्रकाशित हुआ कि कांग्रेस नेता उक्त अधिकार को प्राप्त किये बगैर ही आपस में यह निश्चय कर चुके थे कि अन्तःकालीन सरकार का सदस्य बन जाना चाहिये। ए०पी०आई की यह रिपोर्ट है कि—

"मंगलवार १८ जून को कांग्रेस वालों ने पूर्ण रूप से यह निश्चय कर लिया था कि कैबिनेट मिशन की लघु व दीर्घकालीन आयोजनाओं को स्वीकार कर लिया जावे।"

दीर्घकालीन आयोजना अर्थात् १६ मई के सुझाव को जिसमें भारतवर्ष को ३ खण्डों में विभक्त किया गया था और इस ढंग से पाकिस्तान को एक प्रकार से मान लिया गया था, कांग्रेस ने अपने पूर्व निश्चयों के विरुद्ध स्वीकार करने की तत्परता दिखाई। इस बात की सफाई में कांग्रेस वालों का यह उत्तर है कि उन्होंने भारतवर्ष की राजनैतिक गुत्थी को सुलझाने के लिये ऐसा किया। क्या कांग्रेस का यह कार्य बुद्धिमत्ता व दूरदर्शिता का था? इसका उत्तर श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन के निम्न शब्दों में मिलता है—

"हमको अड़चनों से इतना भयभीत नहीं होना चाहिए कि हम ऐसी प्रजातन्त्र शून्य और देश को पीछे ले जाने वाली बातों को स्वीकार करलें जो देश की उन्नति को कई वर्षों के लिये अवनति में बदल दें।"

कांग्रेसी नेता इन सब कमियों के होते हुए इस अन्तःकालीन सरकार में सम्मिलित होने के लिये उद्यत थे। उनका स्वीकृति-सम्बन्धी प्रस्ताव जनता के सम्मुख आने को ही था कि मि० जिन्नाह की ओर से उत्पन्न की हुई एक नई उलझन ने उनके बने बनाये खेल को बिगाड़ दिया।

मि० जिन्नाह के प्रश्नों का वायसराय की ओर से उत्तर—

मि० जिन्नाह ने वायसराय से उनके सुझाव का स्पष्टीकरण कराने के लिये कुछ प्रश्न किये। उनके उत्तर में वायसराय ने बतलाया कि—

अन्तःकालीन सरकार के लिये १४ सदस्यों की जो संख्या निर्धारित की गई है उसमें दोनों दलों के सहमत हुए बिना कोई परिवर्तन नहीं होगा और न ही उनके सहमत हुए बिना सम्प्रदायों के उस अनुपात में कोई परिवर्तन होगा, जिसमें सम्प्रदायों को सदस्य बनाने का अधिकार दिया गया है।" इसके साथ ही वायसराय ने यह भी कहा है कि

''किसी महत्त्वपूर्ण साम्प्रदायिक समस्या पर अन्त:कालीन सरकार कोई निश्चय नहीं कर सकती यदि प्रमुख दलों में से कोई-सा दल अपने बहुमत से उसका विरोध करदे।'' वायसराय ने यह भी कहा कि ''यह बात उन्होंने कांग्रेस प्रधान से कह दी थी और उन्होंने कांग्रेस के दृष्टिकोण से इस बात से सहानुभूति प्रकट की थी।''

वायसराय के उक्त उत्तर ने कांग्रेस के मार्ग में कुछ बाधाएं उत्पन्न करदीं। उक्त उत्तर के अनुसार अन्त:कालीन सरकार में किसी भी साम्प्रदायिक समस्या का निर्णय उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि मुस्लिम लीग उसको स्वीकार न करले। इसका यह अभिप्राय हुआ कि मुस्लिम लीग को निषेधात्मक अधिकार (Veto Power) फिर प्राप्त हो गया। ऐसी अवस्था को कांग्रेसी नेताओं ने कार्य-संचालन के लिये अत्यन्त बाधक और हानिकारक समझा और अन्त में २४ जून १९४६ को कांग्रेस कमेटी ने अन्त:कालीन सरकार में सम्मिलित न होने का निश्चय कर लिया।

मुस्लिम लीग की आशा व निराशा

कांग्रेस के इंकार करने पर मुस्लिम लीगी नेताओं ने यह समझा कि अब अकेले उनको ही अन्त:कालीन सरकार को निर्माण करने का निमन्त्रण दिया जावेगा। परन्तु वायसराय ने ऐसा नहीं किया और एक 'काम चलाऊ' कार्यकारिणी समिति बनादी। वायसराय के इस निर्णय को मुस्लिम-लीग ने अपनी मान हानि समझा और वायसराय पर वचन भंग करने का दोषारोपण करके २९ जुलाई १९४६ को यह निश्चय किया कि मुस्लिम लीग शासन विधान निर्मात्री समिति में भी शामिल नहीं होगी और अपने रोष को प्रभावशाली रूप में प्रकट करने के लिये यह घोषणा करदी कि मुस्लिम लीग कोई (Direct Action) करेगी। मुस्लिम लीग ने १६ अगस्त १९४६ का दिन इस (Direct Action) के लिए नियत किया। उस रोज कलकत्ते में और उसके बाद भारतवर्ष के अनेक स्थानों में जो भीषण हत्याकाण्ड रचा गया, उसको पाठक भलीभांति जानते हैं।

अंग्रेजों का प्रयत्न और कांग्रेस का मानना—

अब इस अन्तकालीन सरकार में सम्मिलित होने से कांग्रेस स्वयं हट गई और मुस्लिम लीग को वायसराय ने हटा दिया और इस प्रकार

भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में फिर अड़चन खड़ी हो गई। बर्तानवी सरकार ने इसको दूर करने के निमित्त फिर से प्रयत्न करने आरम्भ किये और अन्त में यह निश्चय किया कि बहुसंख्यक समुदाय अर्थात् कांग्रेस को अन्त:कालीन सरकार बनाने का निमन्त्रण दिया जावे अतएव पं० नेहरू को निमन्त्रण दिया गया और उन्होंने पूर्व विचारों और निश्चयों की अवहेलना करके निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया, साथ ही मुस्लिम लीग को शामिल होने के लिये मार्ग बनाया जाने लगा। कैबिनेट मिशन की आयोजना के भावों को समझने में कांग्रेस और मुस्लिम लीग में मतभेद चल रहा था। कांग्रेस ने अपनी कार्यकारिणी सभा की बैठक में जो वर्धा में हुई यह निश्चय किया कि वह १६ मई १९४६ की आयोजना को अक्षरश: स्वीकार करती है और ऐसा करके उन्होंने वायसराय से विचार विनिमय करके अन्त:कालीन सरकार के नामों की सूची दे दी। सूची में पांच स्वर्ण हिन्दू, एक सिख, एक पारसी, एक दलित, एक ईसाई और ३ मुसलमानों के नाम दिये गये और दो मुसलमानों का छांटा जाना विचार आधीन रखा गया।

ऐसा करना रहस्य रहित नहीं था। कांग्रेस को भली प्रकार यह विदित था कि मुस्लिम लीग को शामिल किया जायेगा क्योंकि इसके बिना किसी प्रकार की शान्ति नहीं हो सकती।

मुस्लिम लीग को पुनः मिलाने के लिये कांग्रेस व वायसराय का प्रयत्न

पं० नेहरू ने अन्त:कालीन सरकार बनाने ही यह घोषणा की कि मुस्लिम-लीग के शामिल होने के लिये द्वार हर समय खुला हुआ है और वायसराय महोदय ने भी कहा कि मुस्लिम लीग जिस समय चाहे अपने पांच प्रतिनिधि भेज सकती है, इसके रास्ते में कोई रुकावट नहीं होगी।

मि० जिन्नाह का वायसराय तथा गांधी जी से बहुत कुछ विचार विनिमय हुआ। कांग्रेस और मुस्लिम लीग आपस में सहमत नहीं हो सके, परन्तु मुस्लिम लीग वायसराय के कथनानुसार सम्मिलित होने तथा पांच नाम पेश करने पर उद्यत हो गई और चूंकि कांग्रेस भी एक मुसलमान को अपनी ओर से रखना चाहती थी और वायसराय महोदय पांच से अधिक मुसलमान सम्भवत: रखना नहीं चाहते थे, इसलिये मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों में चार मुसलमान तथा एक दलित जाति

का व्यक्ति लिया गया। मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों में एक दलित का लिया जाना एक अनोखी बात प्रतीत होती है। परन्तु मुस्लिम लीग ने यह कदम कांग्रेस को यह बतलाने के लिये लिया कि तुम्हारी ओर से किसी मुसलमान को लिया जाना ऐसा ही हास्यप्रद है जैसा कि हमारी ओर से एक दलित को लिया जाना। यह भाव एक मुस्लिम लीगी ने दर्शाया है।

आखिरकार वायसराय की आयोजना के अनुसार उनकी कार्यकारिणी समिति बन गई। इसमें कांग्रेस का १ मुसलमान और मुस्लिम-लीग के ४ मुसलमान, कुल मिलाकर ५ मुसलमान शामिल थे। मुस्लिम लीग के पांचवें प्रतिनिधि को स्थान देने के लिये कांग्रेस ने स्वर्ण हिन्दुओं में से एक सरतबोस बाबू को घटा दिया। परिणामस्वरूप अन्त:कालीन सरकार में ५ मुसलमान, ४ स्वर्ण हिन्दू, २ दलित, १ सिख, १ पारसी और १ ईसाई सम्मिलित हुए।

यह बात सन्तोषजनक एवं हर्षप्रद है कि दलितों के अधिकार बढ़ाये गये और उनके दो प्रतिनिधि लिये गये। परन्तु क्या कांग्रेस बतलाएगी कि कौनसे सिद्धान्त के अनुसार ५१ प्रतिशत स्वर्ण हिन्दुओं को २७ प्रतिशत मुसलमानों से भी कम प्रतिनिधित्व दिया गया।

महात्मा गांधी तथा पं० नेहरू ने अन्त:कालीन सरकार में मुस्लिम लीग को सम्मिलित करने के लिये मुस्लिम लीग को मुसलमानों की एक मात्र प्रतिनिधि सभा मान लिया। पाठकगण को यह याद होगा कि कांग्रेस इससे पूर्व इस पर अड़चन लगाती रही परन्तु अन्त:कालीन सरकार के शौक ने कांग्रेस वालों से मि० जिन्नाह की यह मांग भी पूरी करादी।

मुस्लिम लीग वाले इस अन्त:कालीन सरकार में किस उद्देश्य से शामिल हुए हैं यह इस सरकार के एक लीगी सदस्य राजा गजनफर अली के एक भाषण के निम्न शब्दों से ज्ञात होता है—

"We are going to the centre to get a foot hold to fight our cherished goal of Pakistan. All our activities will be guided by two considerations, that is to convince the Congress that no Government in India can function smoothly without the co-opration of the Muslim League & the League is the sole representavive organisation of

the Indian Muslims. The Interim Government is one of the fronts of our Direct Action."

अर्थात्—"हम केन्द्र में अपने प्रिय उद्देश्य पाकिस्तान की प्राप्ति के लिये आंदोलन करने के निमित्त सम्मिलित हो रहे हैं। हमारे सारे कार्य दो बातें से प्रेरित होंगे—कांग्रेस को यह विश्वास दिलाया जा सके कि हिन्दुस्थान में कोई भी सरकार मुस्लिम लीग के सहयोग के बिना नहीं चल सकती और दूसरा यह कि लीग भारतीय मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था है। अन्त:कालीन सरकार हमारे 'डायरेक्ट एक्शन' (सीधी कार्यवाही) के अनेक मोर्चों में से एक है।"

कांग्रेसी सदस्यों ने अन्त:कालीन सरकार को बड़ा महत्त्व दिया और कहा कि यह अन्त:कालीन सरकार "औपनिवेशिक सरकार" के मन्त्रिमण्डल के समान है। पं० जवाहरलाल इसके नेता हैं। मुस्लिम लीग वालों ने सरकार में आकर इन सब बातों का खण्डन किया और कहा कि ये सदस्य केवल वायसराय को सलाह देने वाले हैं। उन्होंने पं० जी को नेता मानने से भी इन्कार कर दिया और पग-पग पर बाधाएं खड़ी करदीं।

मुस्लिम लीग वाले अन्त:कालीन सरकार में शामिल होकर भी 'शासन-विधान निर्मात्री समिति' से 'ब्रिटिश कैबिनेट मिशन' की आयोजना पर कांग्रेस से मतभेद रखने के बहाने असहयोग करते रहे। ब्रिटिश सरकार ने उस आयोजना के अर्थों को पुनः स्पष्ट करने के लिये ६ दिसम्बर १९४६ को एक वक्तव्य द्वारा मुस्लिम लीग के मत का पोषण किया। इसको पाठकगण अगले पृष्ठों में पढ़ें।
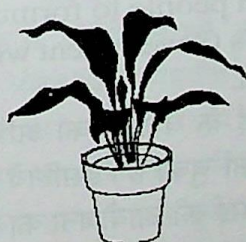
(२०)

६ दिसम्बर १९४६ का स्पष्टीकरण

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की आयोजना प्रकाशित होने के समय से ही कांग्रेस और मुस्लिम लीग में यह मतभेद चलता रहा कि 'खण्डों' में बैठना व प्रान्तों के लिये समुदाय रूप में कुछ सीमा तक शासन बनाना प्रान्तों के लिये अनिवार्य है या वह इस मामले में स्वतन्त्र हैं। कांग्रेस का मत था कि प्रान्त दोनों विषयों में स्वतन्त्र हैं परन्तु मुस्लिम लीग को यह मत ग्राह्य नहीं था। इसी मतभेद के कारण मुस्लिम लीग 'शासन-विधान निर्मात्री समिति' से दूर भागती रही। इस असहयोग के कारण यह उलझन खड़ी हुई कि क्या मुस्लिम लीग अन्तःकालीन सरकार में रह सकती है? जब इस प्रश्न ने बहुत भीषण रूप धारण किया तो प्रधानमन्त्री मि० ऐटली ने वायसराय तथा कांग्रेस व मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों को लन्दन बुलाया। वायसराय के साथ पं० जवाहरलाल, सरदार बलदेव सिंह, मि० जिन्नाह व मि० लियाक़त अली रवाना हुए और मि० जिन्नाह के अतिरिक्त ६ दिसम्बर को सब लौट आये।

लन्दन सरकार का वक्तव्य

लन्दन सरकार की घोषणा में सबसे प्रमुख निम्नलिखित पंक्तियां हैं—

"The statement of May 16 means what the Cabinet mission have always stated was their intention. This part of the statement as so interpreted, must, therefore, be considered an essential part of the scheme of May 16 for enabling the Indian people to formulate a constitution which His Majesty's Government would be prepared to submit to Parliament."

अर्थात्—"१६ मई के वक्तव्य का अभिप्राय वही है जैसा कि मन्त्रिमण्डल कई बार दर्शा चुका है। इसलिये इसी अभिप्राय के साथ वक्तव्य का यह भाग १६ मई की आयोजना का आवश्यक अंग समझना

चाहिये और ऐसा ही समझकर भारतीय जनता अपना शासन विधान बनावें और तब ही सम्राट् की सरकार उसको पार्लियामेंट में भेजेगी।''

"The cabinet Mission have throughout maintained the view that the decisions of the sections should in the absence of any agreement to the contrary be taken by a simple majority vote of the representatives in the sections."

अर्थात्—''कैबिनेट मिशन आरम्भ से ही यह विचार रखता रहा है कि किसी अन्य निश्चय को छोड़कर खण्ड में हर एक विषय का निर्णय खण्ड के प्रतिनिधियों के साधारण बहुमत से होगा।''

प्रधानमन्त्री ने ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के जिन विचारों व शब्दों की ओर संकेत किया है वह भी पाठकगण की जानकारी के लिये अङ्कित करता हूं।

लार्ड पैथिक लारेंस और प्रेस सम्मेलन

लार्ड पैथिक लारेंस ने १७ मई १९४६ को एक प्रश्न के उत्तर में कहा—

"The provinces automatically come into the section "A", "B" & "C" which are set out in the statement. Initially they are in the particular section to which they are allocated in the statement and that particular section will decide whether a group shall be formed and what should be the constitution. The right to opt out of the group formed by that section arises after the constitution has been framed and the election to the legislation has taken place after that constitution. It does not arise before that."

अर्थात्—''जैसा कि सुझाव में वर्णित है सब प्रान्त स्वयं ही ''अ'', ''बी'' व ''सी'' खण्डों में विभक्त हो जाते हैं। प्राथमिक अवस्था में वे उसी खण्ड में जावेंगे जिसमें 'सुझाव' के अन्दर उनको रखा गया है और प्रत्येक विशेष खण्ड यह निर्णय करेगा कि अपने प्रान्तों में समुदाय निर्णय किया जावे या नहीं और शासन विधान क्या हो। समुदाय से पृथक् हो जाने का अधिकार नये विधान अनुसार बनी हुई पहली धारा सभा में उत्पन्न होगा उससे पूर्व उत्पन्न नहीं होता।''

लार्ड पैथिक लारेंस के उक्त स्पष्टीकरण के अनुसार कांग्रेस ने अर्थ

न मानकर जनता को ६ मास भरमा कर अन्त में लन्दन सरकार की मोहर लगवाकर उन्हीं अर्थों को अक्षरश: स्वीकार किया।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति जनवरी सन् ४७

५ जनवरी सन् १९४७ को अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस समिति ने ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल की आयोजना को लन्दन सरकार के स्पष्टीकरण की रोशनी में निम्न प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया—

"अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस समिति इसके लिये बहुत चिन्तित है कि शासन विधान निर्मात्री समिति 'स्वतन्त्र भारत' के लिये शासन निर्माण करने का कार्य सब दलों की सहानुभूति व प्रसन्नता के साथ चालू रख सके। इसलिये उन सब अड़चनों व बाधाओं का दमन करने के लिये जो भिन्न-भिन्न तौर पर अर्थों के समझे जाने के कारण उत्पन्न हो गई हैं, कांग्रेस समिति प्रान्तों को यह अनुमति देती है कि सब प्रान्त बरतानवी सरकार के स्पष्टीकरण के अनुसार खण्डों के लिये निर्धारित कार्यक्रम को प्रयोग में लावें परन्तु यह साफ तौर पर समझ लेना चाहिए कि इस प्रकार कार्य-संचालन से कोई दबाव किसी प्रान्त पर पड़ना नहीं चाहिये। यदि ऐसा कोई दबाव डाला जावे तो प्रत्येक प्रान्त को या उसके किसी भाग को यह स्वतन्त्रता होगी कि वह अपनी जनता की इच्छा अनुसार कोई-सा उचित पग उठा सके।"

उपरोक्त प्रस्ताव में परस्पर विरोधी बातों को स्वयं पाठकगण भली प्रकार जान सकते हैं। अस्तु! इस प्रस्ताव का घोर विरोध हुआ। बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, बाबू सरत बोस, श्री जयप्रकाश नारायण आदि अनेक सज्जनों ने मतदाताओं को उक्त प्रस्ताव की न्यूनताएं व हानियां जतलाईं। मि० जयप्रकाश नारायण ने तो यह भविष्यवाणी की कि "इस प्रस्ताव का अन्त पाकिस्तान की स्वीकृति में होगा।" यह प्रस्ताव ५२ मतदाताओं के विपक्ष में ९९ मतदाताओं के समर्थन से स्वीकार हो गया।

बाबू सरत बोस का त्याग-पत्र

इस प्रस्ताव से दुःखी होकर और अपना घोर विरोध दर्शाने के लिए बाबू सरत बोस ने ५ जनवरी १९४७ को तार द्वारा अपना त्याग-पत्र भेज दिया। तार के शब्दों का हिन्दी अनुवाद निम्नलिखित है—

"कैबिनेट मिशन के सुझाव व वक्तव्य को स्वीकार करने के

कारण गत मई से मेरा और मेरे स: कार्यकर्ताओं का मतभेद होते हुए भी मैं अब तक कांग्रेस कार्यकारिणी की सेवा करता रहा हूं परन्तु मुझे शोक है कि अब इससे आगे सेवा नहीं कर सकता। इस प्रस्ताव के कारण कांग्रेस मूर्खवत् दिखाई देती है और 'शासन-विधान निर्मात्री समिति' एक आधीन सभा बन जाती है। यह प्रस्ताव भारतवर्ष की अखण्डता को सदैव के लिये नष्ट करने वाला, वास्तविक रूप में प्रान्तों को उनकी इच्छा के विरुद्ध 'समुदाय' को स्वीकार करने के लिये बाधित करने वाला और प्रान्तीय स्वराज्य को समाप्त करने वाला है। प्रस्ताव में यह लिखकर कि इसमें किसी प्रकार का दबाव या हस्तक्षेप अभिप्रेत नहीं है और प्रान्तिक स्वराज्य सर्वांग रूप में स्थिर रहेगा, प्रान्तों को भ्रम-मूलक विश्वास दिलाया गया है। बरतानवी सरकार के आज्ञा-पत्र व उसके स्पष्टीकरण के अनुसार कार्य-संचालन करने वाली 'शासन विधान निर्मात्री समिति' भारतवर्ष के लिये प्रजातन्त्र राज्य के लिए उपयोगी शासन विधान कदापि नहीं बना सकती।''

आसाम के मन्त्री मि० मुखर्जी ने समिति के सदस्यों से बहुत मर्मभेदी व याचना पूर्वक शब्दों में प्रस्ताव को अस्वीकार करने की प्रार्थना की और यह कहा कि मुस्लिम लीग को सन्तुष्ट करने के लिये आसाम को बंगाल के साथ बान्धने के लिये न्यौछावर न करें। परन्तु कांग्रेस के सूत्रधारों ने कोई ध्यान न दिया।

भारतवर्ष के तथा हिन्दुओं के हितों पर आघात करने वाला प्रस्ताव स्वीकार करके भी वे मुस्लिम लीग के नेता मि० जिन्नाह को शासन विधान निर्मात्री समिति में भाग लेने के लिये सहमत न कर सके।

कांग्रेस वालों ने इस पर त्यागपत्र देने की धमकी दी। इस अड़चन को दूर करने के लिये ब्रिटिश सरकार ने २० फरवरी १९४७ को एक नई घोषणा की। मुस्लिम लीगियों के अन्त:कालीन सरकार से हटाये जाने के प्रश्न को न छूकर एक नया दाव खेल दिया। लार्ड वेवल-लन्दन बुला लिये और लार्ड माउण्ट-बेटन वायसराय नियुक्त कर दिये गये। यह भी बतला दिया गया कि नये वायसराय भारतवर्ष की अड़चनों का निबटारा करेंगे। उन्होंने भारतवर्ष में आकर दंगों व उपद्रवों के वातावरण में ब्रिटिश सरकार से उलझनों को सुलझाने के लिये जो कुछ कराया वह ३ जून १९४७ की आयोजना वाले अध्याय में देखलें।

(२१)

साम्प्रदायिक उपद्रव

पाकिस्तान आदि के अध्यायों में पाठकगणों ने यह देख लिया होगा कि पाकिस्तान प्राप्ति का विचार लार्ड क्रिप्स व कांग्रेस से प्रोत्साहन पाकर किस गति के साथ मुसलमानों के हृदय स्थल पर अङ्कित होता रहा और दिन प्रतिदिन आगे बढ़ता रहा। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल ने 'खण्डों' व 'समुदायों' की आयोजना निर्धारित करके डॉ० मुञ्जे के शब्दों में मुसलमानों को ९५ प्रतिशत पाकिस्तान दे दिया और कांग्रेसी नेताओं ने इस आयोजना को अक्षरस: स्वीकार करके इस देन के विरुद्ध हिन्दुओं के आन्दोलन को बल रहित बना दिया। अब मुसलमानों ने केवल शेष ५ प्रतिशत पाकिस्तान को प्राप्त करना था। उन्होंने गतवर्षों में कांग्रेस वालों के स्वभाव को भली प्रकार जान लिया था कि किस मांग को पूर्ण कराने के लिये दंगे करना एक अच्छा पक्का साधन है। अब भी मुसलमानों ने पाकिस्तान की प्राप्ति द्वारा अपनी सत्ता जमाने व बढ़ाने के लिये उसी चिरकालीन शैली को प्रयोग में लाना लाभदायक समझा और अपने एक प्रस्ताव में 'सीधी कार्यवाही' (Direct Action) करने का निश्चय किया। १६ अगस्त १९४६ का दिन इसके लिये नियत किया गया।

इस कार्यवाही की पहली चिंगारी कलकत्ते में गिरी और बाद में पूर्वी बंगाल, पश्चिमी पंजाब व सीमा प्रान्त में बिखरती हुई अनेक स्थानों में फैल गई। इन सब स्थानों में जिस भीषण मात्रा में नरसंहार, हत्याकाण्ड, बलात्कार व अमानुषिक अत्याचार हुए, बाजार, मकानात लूटे गये व जलाये गये, तलवार व भालों की नोक पर असंख्य हिन्दू पुरुषों, स्त्रियों को मुसलमान बनाया गया, बच्चों को भालों की नोक पर चीर दिया गया, पूजा स्थानों को गिराकर भूमि में मिला दिया गया और ऐसी ही अनेक दारुण घटनाएं हुईं जिनके वर्णन करने में लेखनी असमर्थ है।

लगभग सारी भारतीय जनता ने इनको समाचार-पत्रों आदि में पढ़ा और सुना है। इसलिये अधिक लिखना असंगत है। हमारे सामने यह प्रश्न आता है कि दंगों का यह ज्वार-भाटा एकदम कैसे उमड़ आया? इसकी जड़ों को खोज निकालने के लिए हमें कोई कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं। हमारे सामने इस्लामी आधार पर मुसलमानों के दिलों में हिन्दुओं के प्रति वैमनस्य का भाव है और उस पर मुस्लिम लीगी नेताओं के अत्यन्त घृणास्पद व उत्तेजना देने वाले शब्दों का बार-बार प्रयोग है। उदाहरणार्थ कुछ बातें नीचे लिखता हूं—

'मरहटा' पत्र पूना ने २९ मार्च के अंक में यह निकाला कि सन् १९४१ में पूर्वी बंगाल में एक मुस्लिम सम्मेलन हुआ। उसमें एक कविता पढ़ी गई जिसका भाषा अनुवाद नीचे देता हूं—

.....ओ विजयी सिपाही, तू लीग के झंडे के नीचे काबा की ओर अपनी धार्मिक यात्रा के रास्ते पर बढ़ता चल। जितना भी इस मार्ग में रक्त बहाने की आवश्यकता पड़ेगी उतना रक्त हम बहायेंगे। हम पाकिस्तान अर्थात् हिन्दुस्तान का बंटवारा चाहते हैं और यह मांगने से नहीं मिल सकता तो मुसलमान तलवार और बर्छी का प्रयोग करने से नहीं डरते।

.....अगर तुम आजादी चाहते हो तो हिन्दुओं के मकानों को जला दो। इस प्रकार तमाम कष्टों का अन्त हो जावेगा।"

अप्रैल १९४६ में नवाब जादा लियाकत अली खां ने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी में अपने भाषण में कहा वह हिन्दी भाषा में निम्न-लिखित है—

"मुस्लिम रक्त की हर एक बूंद उस भयानक संघर्ष के अवसर पर काम में आने के लिये सुरक्षित रखी जानी चाहिये जो निकट भविष्य में हमारे सामने आ सकती है—जब अवसर आयेगा तो मैं युद्ध क्षेत्र की ओर तुम्हारा नेतृत्व करूंगा।"

९ अप्रैल १९४६ को नई देहली में धारा सभाओं के मुस्लिम-लीगी सदस्यों की एक बैठक हुई उस सभा में सर फिरोज़ खां के भाषण के कुछ शब्दों को हिन्दीभाषा में पढ़ें—

"यदि हिन्दू हमें पाकिस्तान दे दें तो वे हमारे सबसे उत्तम मित्र होंगे। हमें अपनी आज़ादी चाहिये और इसे हम लेकर रहेंगे। आजादी

दुनियां में किसी भी चीज से अधिक मूल्यवान है। भले ही हमें अपनी आजादी के लिये लड़ते-लड़ते मर जाना पड़े परन्तु हम देखेंगे कि हमारे बच्चे हिन्दुस्तान के गुलाम नहीं रहते.....मैं तुम्हें यह बताता हूं कि यदि हमें अंग्रेजों से इसलिये लड़ना पड़ा कि वह हमें एक केन्द्रीय सरकार या हिन्दू राज्य के अधीन कर दें तो जो तबाही मुसलमान लायेंगे। वह चंगेज खां और हलाकू के कार्यों को छाया में डाल देंगे।''

१५ अगस्त १९४६ के 'Statesman' में एक लेखक ने लिखा—

''रक्तपात और उपद्रव स्वयं कोई बुरे नहीं हैं यदि वह एक नेक उद्देश्य (पाकिस्तान) की प्राप्ति के लिये अपनाये जावें।''

''कल्याण'' गोरखपुर ने सितम्बर १९४६ के अंक में उस परचे की नकल हिन्दी भाषा के शब्दों में की है जो परचे मुसलमानों को कार्य-कर्म बतलाने के लिये और अपने आपको तैयार करने के साधन बताने के लिए अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी की दीवारों पर लगाये गये थे। उनमें बतलाया गया है कि मुसलमान हथियार चलाना, आग लगाना आदि कार्यों को सीखें और पुलिस वालों तथा मुस्लिम रईसों व गुण्डों को अपने साथ मिलावें। इसी प्रकार की अनेक बातें लिखी गई हैं और यह भी बताया गया है कि इन सब बातों को मुसलमान इसलिये करें कि हिन्दुओं में आतंक फैलाना है।

मुस्लिम नेताओं के उक्त प्रकार के उपदेशों व शब्दों से मुस्लिम जनता भड़क उठी और चूंकि मुस्लिम जनता की मजहबी शिक्षा ये है कि काफ़िर को मारना जन्नत में जाना है अतएव मुस्लिम नेताओं के शब्दों ने मुसलमानों के दिलों में वही काम किया जो अग्नि पर तेल डालने से होता है और उन्होंने वह अत्याचार किये कि जिनके कारण कब्र के मुरदे भी बिलबिला उठे।

यह उपद्रव बन्द हो सकते थे या बहुत कम हो सकते थे यदि वायसराय और उनकी अनुमति देने वाले कांग्रेसी सदस्य हस्तक्षेप करते और अपनी शक्ति को प्रयोग में लाते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। और ऐसा न करने का यह कारण बताया कि चूंकि प्रत्येक प्रान्त स्वराज भोगी है इसलिये केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। २४ अगस्त सन् १९४६ को कलकत्ता हत्याकाण्ड के सम्बन्ध

में वायसराय कलकत्ता गये उन्होंने इस विषय में जो शब्द कहे उनसे उपरोक्त भाव भली प्रकार निकलते हैं। उन्होंने कहा—

"In the field of Provincial Autonomy, of course, my new Govt. will not have any power or indeed any desire to intervene in the field of Provincial administration."

यदि केन्द्र ऐसी घटनाओं को रोकने में भी असमर्थ है तो कांग्रेस वालों से पूछना चाहते हैं कि कौन से लाभ को दृष्टि में रखते हुये उन्होंने प्रान्तों को स्वराज भोगी बनवाने का प्रयत्न किया और उनके इस आन्दोलन का क्या सार और क्या अर्थ है। केन्द्र दृढ़ और शक्तिशाली होना चाहिये। मैं तो कहूंगा कि वे यह सब बातें बेजोड़ और जनता को अपने साथ लगाये रखने के लिये समय की आवश्यकता अनुसार कहते हैं और यह विचार नहीं करते कि भारतवर्ष और हिन्दू जनता पर इसका क्या असर पड़ेगा।

सरकार के कांग्रेसी सदस्यों व नेताओं का सब प्रान्तों के साथ एक व्यवहार नहीं है यह भी पाठकगणों को जान लेना चाहिये।

बिहार और उपद्रव

कलकत्ता और पूर्वी बंगाल के नरसंहार में अनेक बिहारी मारे गये। अपने सम्बन्धियों के मारे जाने से दुखित हुये। उनमें प्रतिकार की भावना जागृत हुई और उन्होंने भी कुछ उपद्रव किया। स्वयं प्रधान कांग्रेस श्री आचार्य कृपलानी जी ने अपने भाषण में कहा कि बिहार में जो कुछ हुआ वो प्रतिकार के रूप में हुआ और इसलिये उन्होंने कहा।

"पूर्वी बंगाल के लोगों पर जो अत्याचार किये गये और उनके मस्तिष्क पर जो बोझ पड़ा वैसा ही मेरे साथ किया गया होता तो मैं नहीं कह सकता कि उसके प्रतिकार में मेरा क्या कार्य होता। यदि भावुक और शिक्षित व्यक्ति अत्यन्त उत्तेजना की अवस्था में अवांछनीय प्रतिकार करने लगते हैं तो साधारण जनसमुदाय तो और भी अधिक वैसा करेंगे।"

प्रधान कांग्रेस के शब्दों का समर्थन बिहार सरकार के अर्थमंत्री श्री अनुग्रह नारायण सिंह जी के निम्न शब्दों से होता है।

"बिहार में जो कुछ हुआ है, वह कलकत्ते के हत्याकांड के

सिलसिले में ही हुआ है। वहां के और यहां के उपद्रव को एक दूसरे से अलग नहीं माना जा सकता। बंगाल और विशेष करके कलकत्ते में मारे जाने वाले लोगों के सम्बन्धी और मित्र बिहार में रहते हैं और इसलिये ऐसे साम्प्रदायिक उपद्रव का अध्ययन निश्चय ही सम्पूर्ण भारतवर्ष को पृष्ठभूमि के रूप में रखकर करना चाहिये।''

मैं मनु व वशिष्ठ स्मृति के सिद्धान्तों पर बिहार वालों के व्यवहार को परखना नहीं चाहता। उन स्मृतिकारों ने बतलाया है कि आतताइयों को मारने में कोई दोष नहीं है। आग लगाने वाले, विष देने वाले, हाथ में शस्त्र लेकर मारने को उद्यत होने वाले, धन हरण करने वाले, जमीन छीनने वाले और स्त्री का अपहरण करने वाले यह सब आतताई हैं।

इस सिद्धान्त को बीच में न लाकर हम अपनी आलोचना के लिये यही मान लेते हैं कि बिहार वालों ने भी उपद्रव किया। ऐसा करके वह पूर्वी बंगाल वालों से यदि कम नहीं तो उनसे अधिक दोषी तो किसी अवस्था में भी नहीं ठहराये जा सकते।

बिहार का दोष और कांग्रेसी नेता

जैसा के ऊपर लिखा जा चुका है वायसराय ने स्वयं और अपनी सरकार के सदस्यों को प्रान्तों में हस्ताक्षेप करने में असमर्थ बताया था और यह भी कहा था कि उनका ऐसा करने का कोई विचार भी नहीं है। पर न मालूम कौन से आधार पर पं० नेहरू ने बिहार में फौज और वह भी पठान फौज भेजी और उनसे गोलियां चलवाईं। सरदार अब्दुल-रब निशतर को साथ लेकर पं० नेहरू ने उपद्रवग्रस्त स्थानों का दौरा किया और यह कहा कि यदि वह लोग शान्तिपूर्वक व्यवहार नहीं करेंगे तो सरकार तनिक भी दया नहीं करेंगी और यह भी कहा कि मुसलमानों का बद्ध करने से पूर्व मुझे समाप्त करदो। गांधी जी ने आमरण व्रत की धमकी दी यदि बिहार वाले अपने किये हुए कार्यों के लिये पश्चात्ताप न करेंगे।

यदि पं० जवाहरलाल जी ने बिहार में इस नाते हस्तक्षेप किया कि वहां कांग्रेसी सरकार थी तो क्या सीमा प्रान्त में कांग्रेसी सरकार न थी? केन्द्रीय धारा सभा में एक प्रश्न का उत्तर देते हुए पं० जवाहरलाल ने कहा कि सीमा प्रान्त में उपद्रव होने पर केन्द्र से सहायता मांगी गई थी

परन्तु वहां सेना भेजना उचित नहीं समझा गया। हमारी समझ में नहीं आता कि कौनसी युक्ति के आधार पर बिहार और सीमाप्रान्त की कांग्रेसी सरकारों में अन्तर किया गया? इसका केवल यही कारण हो सकता है कि बिहार प्रान्त हिन्दुओं का था और सीमा प्रान्त मुसलमानों का। यदि वहां भी सेना भेज दी जाती तो कौन कह सकता है कि वहां मुसलमान जनता इसी तरह हानि न उठाती जिस प्रकार बिहार में हिन्दू जनता पठान सेना से भूनी गई।

बिहार में पठान सेना ने जो बर्बरता की वह अनेक पत्रों ने बड़े रोमांचकारी शब्दों में लिखा है। बिहार सरकार के भूतपूर्व पार्लियामेंटरी सेक्रेट्री श्री जगत नारायण लाल ने केवल एक स्थान 'नगरनौसा' के बारे में कहा—

"आवश्यकता से अधिक गोलियां चलाई गईं। घर में छिपे हुए केवल पुरुष ही नहीं, अबलाएं और शय्या पर पड़े रोगी भी गोली के शिकार बनें। सैनिकों ने जी खोलकर लूट-पाट भी की।"

और 'अमृत बाज़ार पत्रिका' के प्रतिनिधि ने वहां की घटनाएं लिखते हुए अन्त में लिखा—

"इस प्रकार यदि ठीक तरह हिसाब लगाया जाय तो पुलिस और फौज की गोलियों के शिकार होने वाले व्यक्तियों की संख्या कई हजार तक पहुंचेगी।"

मेरठ कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर पं० नेहरू जी की आज्ञा की सत्यता को जानने के लिये पं० जी से प्रश्न किये गये। परन्तु इस सारे मामले को गोलमोल करने का प्रयत्न किया गया और बहुत कुछ सम्भव था कि इस पर परदा पड़ जाता यदि मि० चर्चिल ब्रिटिश लोकसभा में (House of Commous) १३ दिसम्बर को यह न बताते कि—

"I have been informed that it was Pandit Nehru himself who gave the order which the Provincial Govt. of Bihar had been afraid to give for the police and troops to fire upon a Hindu mob."

अर्थात्—मुझे सूचना मिली है कि वह स्वयं पंडित नेहरू ही थे जिन्होंने पुलिस और फ़ौज को एक हिन्दू भीड़ पर गोली चलाने की

आज्ञा दी—ऐसी आज्ञा जो कि बिहार की प्रान्तीय सरकार देने से घबराती थी।

हिन्दू पाठकगण हिन्दू कांग्रेसी नेता के इस व्यवहार के साथ मुसलमानों के नेता मि० जिन्नाह की सम्मति भी देख लें और यह अनुमान लगालें कि हिन्दू कांग्रेस व मुस्लिम लीग रूपी चक्की के बीच में पिस रहे हैं और जब तक वह कांग्रेसी मनोवृत्ति से अपने आपको मुक्त नहीं करेंगे उनकी दशा सुधरनी कठिन है। अस्तु।

बंगाल के हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में वक्तव्य देते हुए जिन्ना ने कहा—

"Undoubtedly symptoms of the near ness of civil war all over India and of the pattern which such a civil war might follow.....India stands at the brink of civil war involing her 400,000,000 Hindus, Muslims & small minorities which only prompt, sincere and skilled diplomatic negotiations could avert."–

अर्थात्—"निस्सन्देह यह सारे भारतवर्ष में गृहयुद्ध के निकट होने का सूचक है और साथ ही यह भी प्रकट करता है कि यह गृहयुद्ध किस प्रकार का हो सकता है.... भारतवर्ष एक विनाशकारी गृहयुद्ध के अत्यन्त निकट है जिसकी लपेट में यहां के ४० करोड़ हिन्दू, मुसलमान तथा दूसरे अल्पमत के व्यक्ति भी आये हुए हैं। यह तात्कालिक, निष्कपट तथा चतुरता पूर्ण राजनैतिक विचार विनिमय से ही रुक सकता है।"

इसका हिन्दुओं के लिये अर्थ है कि या तो आपकी सभा कांग्रेस मुसलमानों की मांग को स्वीकार करे या गृहयुद्ध का सामान करे।

कांग्रेस उनकी दिन प्रतिदिन बढ़ने वाली मांगों को स्वीकार करके गृहयुद्ध को निमन्त्रण दे रही है। उन्होंने पाकिस्तान भी इन दंगों के भय से स्वीकार करके भारतमाता को खण्डित करवा दिया है। मुसलमान सारे देश में इस्लामी राज्य का स्वप्न देख रहे हैं। क्या हिन्दू इसी प्रकार कांग्रेस को हिन्दुओं पर आघात करने का अवसर देते रहेंगे? हिन्दुओं को यह निश्चय करना पड़ेगा। भारतवर्ष किस ढंग से विभक्त किया गया यह अगले अध्याय में पढ़ें।

(२२)

३ जून १९४७ व भारत विभाजन

लार्ड माउंट बेटन वायसराय ने ३ जून १९४७ को सम्राट् सरकार की आयोजना प्रकाशित की। इसके अनुसार भारतवर्ष के पूर्वीय व पश्चिमी सीमाओं पर पाकिस्तान बना दिया गया। एक 'शासन-विधान निर्मात्री समिति' के स्थान में दो 'शासन विधान निर्मात्री समितियां बनादी गईं। इसके अतिरिक्त पंजाब और बंगाल को भी विभक्त कर दिया गया। पंजाब के दो भाग 'पश्चिमी' व 'पूर्वी' भाग हुए। पश्चिमी पंजाब में मुस्लिम बहुसंख्यक आबादी के जिले शामिल किये गये और हिन्दू बहुसंख्यक जिले पूर्वी पंजाब के अंग बन गये। इसी प्रकार बंगाल के मुस्लिम बहुसंख्यक जिलों को मिलाकर पूर्वी बंगाल बना दिया गया और शेष बंगाल को पश्चिमी बंगाल का नाम दिया गया।

बंगाल और पंजाब का प्रत्येक भाग कौनसी शासन विधान निर्मात्री समिति में शामिल होगा इसके निर्णय करने का अधिकार भी इन्हीं भागों के सदस्यों को दिया गया जो धारा सभा के सभासद थे। मत प्राप्ति का ऐसा ढंग रखा गया था कि मुस्लिम पंजाब व मुस्लिम बंगाल पाकिस्तानी 'शासन विधान निर्मात्री समिति' में ही सम्मिलित होने का निर्णय कर सकते थे। इससे अन्य दूसरा नहीं। इसी प्रकार हिन्दू बहुसंख्यक पंजाब और बंगाल की अवस्था थी।

१६ मई की आयोजना में सिंध व सीमा प्रान्त 'बी' खण्ड में रखे गये थे। सिंध की धारा सभा के कुछ हिन्दू सदस्यों को और सीमा प्रान्त की कांग्रेसी सरकार को भी इस पर आक्षेप था कि उनको उनकी इच्छा के विरुद्ध भारतीय संघ से पृथक् क्यों किया गया है। मि० जिन्नाह का यह कहना था कि सिन्ध के बहुसंख्यक सदस्य और सीमा प्रान्त की बहुसंख्यक जनता खण्ड 'बी' अर्थात् पाकिस्तानी संघ के साथ रहना

चाहते हैं। अंग्रेजी सरकार ने इन सब आक्षेपों को दूर करने के निमित्त यह बतलाया कि सिन्ध की धारा सभा का व सीमा प्रान्त की जनता का मत प्राप्त किया जावे कि वह नई या पुरानी कौनसी 'समिति' में शामिल होना चाहते हैं अतएव मत प्राप्ति के बाद यह निर्णय हो गया कि सिंध व सीमा प्रान्त पूर्व वर्णित 'बी' खण्ड की भांति पाकिस्तानी शासन विधान निर्मात्री समिति में शामिल रहेंगे।

१६ मई की आयोजना ने आसाम की समस्या बड़ी टेढ़ी करदी थी। समूचा आसाम हिन्दू बहुसंख्यक प्रान्त है परन्तु उसको 'सी' खण्ड में रखकर एक बड़े मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्त बंगाल के साथ जोड़ दिया गया था। आसाम का एक भाग है 'सिलहट' वह पर्याप्त रूप में मुस्लिम बहुसंख्यक प्रदेश है। आसाम की ओर से दो आवाजें उठती थीं एक मुसलमानों की व दूसरी हिन्दुओं की। इस झगड़े से निबटने के लिये उक्त आयोजना ने यह निर्णय किया कि 'सिलहट' वालों का मत प्राप्त किया जावे कि वह 'आसाम' के साथ रहना चाहते हैं या पूर्वी बंगाल के साथ। सिलहट वालों ने यही निश्चय किया कि वह पूर्वी बंगाल के साथ शामिल होंगे।

आयोजना में यह भी बतला दिया गया है कि नई शासन विधान निर्मात्री समिति में किस प्रान्त के कितने सदस्य लिये जावेंगे।

नई समिति—सिन्ध व सीमा प्रान्त के पहले चुने हुए सदस्य।

प्रान्त	**साधारण**	**मुस्लिम**	**सिक्ख**	**योग**
पश्चिमी पंजाब	३	१२	२	१७
पूर्वी बंगाल	१२	२९	×	४१
'सिलहट'	१	२	×	३
	१६	४३	२	६१

पुरानी समिति—

पंजाबी बंगाल	१५	४	×	१९
पूर्वी पंजाब	९	४	२	१२

इस आयोजना का मि० जिन्नाह व पं० नेहरू ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से स्वागत किया। मि० जिन्नाह के बारे में कुछ लिखने से पूर्व कांग्रेस

वालों के व्यवहार पर थोड़ी-सी आलोचना करनी आवश्यक है। कांग्रेस वाले देश के विभाजन को स्वीकार करने के कार्य को ठीक सिद्ध करने के लिये मुख्य रूप में निम्नलिखित पंक्तियां देते हैं—

१. देशवासियों की निर्मम हत्याओं और अत्याचार के काण्डों से ऊबकर ही यह योजना स्वीकार की गई है।

पं० नेहरू ने उसी दिन इस आयोजना को स्वीकार करते हुए जो शब्द कहे वह उसी मनोवृत्ति को दर्शा रहे हैं जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। पं० जी ने कहा—

"देश के अनेक भागों में लज्जाजनक, अपमानपूर्वक व राज्यद्रोही उत्पात हुए हैं। उनका अन्त होना चाहिये और हमने भी उनका अन्त करने का निश्चय किया हुआ है।"

सम्भव है कुछ कांग्रेस भक्त इन नेताओं को निर्दोषी कहें और अपने आपको यह मानकर संतोष दे लें कि निर्मम हत्याओं की अपेक्षा देश का विभाजन स्वीकार करना कहीं अच्छा है। मैं ऐसे घातक विचारों का पूरे बल के साथ विरोध करता हूं, जैसा कि 'कल्याण' के सम्पादक महोदय ने भी लिखा है कि इस स्वीकृति का स्पष्ट अर्थ यह है कि मुस्लिम लीग और मुसलमान जनता के आतताईपन का सामना करके सफलता पाने की, उनके आततायीपन को जड़मूल से मिटा देने की क्षमता हम अपने में नहीं देख रहे थे और इसीलिये अपने को असहाय, दुर्बल और असमर्थ पाकर ही हमने विभाजन-योजना को स्वीकार करने में ही मङ्गल समझा। कांग्रेस का विभाजन को स्वीकार करने का यह परिणाम है कि लीग के ये नारे सच्चे और सफल हो गये कि 'लड़कर लेंगे पाकिस्तान, मार के लेंगे हिन्दुस्तान।' ऐसी अवस्था के कारण विभाजन को स्वीकार करके भी पं० नेहरू ने यह कहने में कोई लज्जा अनुभव न की कि "हम इस बात को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि राजनैतिक हितों को उत्पातों के द्वारा कभी भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।"

२. दूसरी बात यह कही जाती है कि कुछ दिनों बाद पाकिस्तान फिर हिन्दुस्तान में मिल जावेगा। पं० नेहरू जी ने यह भाव निम्न शब्दों में दर्शाया—

"यह सम्भव है कि इस प्रकार किसी और मार्ग के मुकाबिले में हम शीघ्र ही भारत को पुनः संगठित देख सकें।"

कांग्रेसी नेताओं की उपरोक्त आशा कितनी निर्मूल व खोखली है इसका अनुमान कांग्रेस की दब्बू नीति के गत इतिहास से हो सकता है। ऐसा कहना या तो जान-बूझकर मिथ्या सान्त्वना के द्वारा अपनी दुर्बलता को छिपाना तथा क्षुब्ध हिन्दुओं के आंसू पोंछना है अथवा अपने आपको धोखा देना है। श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार जी ने कल्याण में ठीक ही लिखा है कि सफलता पर मनुष्य की कामनायें स्वाभाविक ही बढ़ती हैं लाभ से लोभ बढ़ता है। बढ़ती हुई दिन प्रतिदिन मांगों का अन्त 'पान-इस्लामिज़म' में होना ही सम्भव है। मुसलमानों की तो यह इच्छा भी है कि इस देश का नाम 'दिनीया' अर्थात् 'दीन अस्थान' रख लिया जावे। ('पाकिस्तान' के अध्याय में इसका वर्णन किया गया है) कांग्रेस वालों की जानकारी के लिये कुछ एक अवतरण देता हूं, उनको पढ़कर आप भली प्रकार यह जान सकेंगे कि कांग्रेस वालों की यह आशा कितनी खोखली है—

(अ) शिकारपुर (सिन्ध) की एक सभा में वहां के रेवन्यु मिनिस्टर पीर जादा अब्दुलसत्तार ने कहा—

"मुसलमान लोग अभी तो जो कुछ मिला है, उसी को स्वीकार कर लेंगे, परन्तु फिर पाकिस्तान के अवशिष्ट भागों को भी लेने के लिये प्रयत्न करेंगे। वे इससे भी आगे बढ़ सकते हैं और मुगल साम्राज्य का इसके अन्तर्गत समस्त क्षेत्र को वापिस पाने का दावा कर सकते हैं।"

(आ) एक दूसरे मियां जफ्फार जमाल एम०एल०ए० ने कहा—

"जबकि हम मुसलमानों ने पाकिस्तान प्राप्त कर लिया है तो अब आगे बढ़कर हिन्दुस्तान को भी हथिया कर सम्पूर्ण भारत पर शासन करेंगे।"

९ जून १९४७ को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में मुस्लिम लीग का वर्णन करते हुए सरदार पटेल ने कहा—

"लीग कौंसिल ने अपनी गुप्त बैठक में १५ अगस्त के बाद समस्त भारत को हस्तगत करने की आकांक्षा को परिपुष्ट किया है।"

१३ जून के Dawn में एक लेख छपा उसमें लिखा—

"यह नग्न सत्य है कि उन पांच करोड़ मुसलमानों को, जिन्हें हिन्दू भारत में बाध्य होकर रहना पड़ रहा है, अपनी स्वतन्त्रता के लिये एक दूसरी लड़ाई लड़नी पड़ेगी। यह कोई भी स्पष्ट देख सकता है कि उस युद्ध के आरम्भ होने पर हिन्दुस्तान पूर्वीय व पश्चिमी सीमाओं पर पाकिस्तानी स्थिति हमारे लिये भौगोलिक एवं सैन्य-संचालन के लिये उपयुक्तता की दृष्टि से कितनी लाभदायक सिद्ध होगी।"

उपरोक्त कुछ एक उद्धरणों से यह समझ लेना कठिन नहीं है कि मुसलमानों ने कटे हुए पंजाब और बंगाल के साथ पाकिस्तान को अपने पांव जमाने के लिये स्वीकार किया है। यह मुस्लिम लीग के प्रस्ताव के निम्न शब्दों से सिद्ध होता है—

"पंजाब और बंगाल के विभाजन के साथ हमारी सम्मति नहीं है। यथापि हम नई योजना के मूल सिद्धान्त को स्वीकार करते हैं और इस योजना को एक समझौते के तौर पर स्वीकार करने और इसके सम्बन्ध में जो कुछ भी करना हो उसे करने का कुल अधिकार हम मि० जिन्नाह को देते हैं।"

उपरोक्त उद्धरणों के साथ कांग्रेस वालों का यह कहना भी कुछ अर्थ या सार नहीं रखता कि—

"पाकिस्तान पृथक् करके शेष हिन्दुस्तान को मजबूत बनाकर स्वतन्त्रता उपभोग कराने के साथ ही सर्वविध उन्नति की जायेगी।"

उन्नति होगी या नहीं यह तो भविष्य में पता लगेगा। परन्तु यह तो अभी पता लग गया है कि अब इस देश का नाम 'हिन्दुस्तान' भी उनको अखरता है। विधान समिति में इस देश का नाम "इण्डिया" जो एक विदेशी भाषा का शब्द है रखा गया है और महात्मा कहे जाने वाले गांधी जी ने प्रार्थना के पश्चात् एक भाषण में यह कहा भी है कि "वह चाहे पाकिस्तान कहे, परन्तु भारत के शेष और सबसे बड़े भाग को अपने को 'हिन्दुस्तान' कहने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि ऐसा कहने से पाकिस्तान के विपरीत इसका यह अर्थ होगा कि यह हिन्दुओं का निवासस्थल है। क्या हिन्दू ऐसा समझते हैं? क्या पारसियों, इसाइयों

और यहूदियों का जन्म भारत में नहीं हुआ था? और क्या ऐंगलो इण्डियनों का हिन्दुस्तान को छोड़कर और कोई दूसरा निवास स्थल है।''

जब अपने जन्म अस्थान देश को 'हिन्दुस्तान' पुकारने से भी हिन्दुओं को रोक दिया गया तो हिन्दू विचार करें कि उनको क्या करना चाहिये।

इन्हीं महात्मा ने भारतीय सेना के बंटवारे पर आलोचना करते हुए हिन्दुओं को उपदेश दिया—

''समय को पहचानो और यह कहो कि हम कोई सेना नहीं चाहते। यदि ऐसा नहीं कर सकते तो यह तो प्रतिज्ञा करो कि सेना को कभी भी अपने मुसलमान भाइयों के विरुद्ध—चाहे वह भारतीय संघ में हो या बाहर पाकिस्तान में—प्रयोग में नहीं लावेंगे।''

यदि गांधी जी के इस राजनीति शून्य उपदेश को मान लें तो हिन्दुओं का कितना अहित हो सकता है यह स्वयं अनुमान लगा लें।

जिस देश घातक आयोजना को पं० नेहरू आदि नेताओं ने बड़ी शीघ्रता के साथ स्वीकार किया वह कितनी खराब है और ऐसी आयोजना में बर्तानियां का कितना हित छुपा हुआ है यह दो एक उद्धरण से जाना जा सकता है।

सर टेकचन्द जी ने कहा—

''कोई सच्चा राष्ट्रवादी इस आयोजना पर सुख का अनुभव नहीं कर सकता। प्रतिकार व धर्मोन्माद शक्तियों की विजय हुई। अनेक युगों से पालित स्वतन्त्र व अखण्ड भारत के स्वप्न मिट्टी में मिला दिये गये हिन्दुस्तान में दो जातियों का सिद्धान्त स्थिर कर दिया गया है।''

ट्रिब्यून लाहौर ने ५ जून १९४७ के अंक में लिखा—

''चाणक्य रूपी ब्रिटिश साम्राजी नीतियों ने पूर्णरूप में सब कुछ प्रास कर लिया और हम मूर्खों ने सब खो दिया है। वे प्राण घातक भय की सीमा तक सोवियत रूस व कम्युनिज़्म के दिनों दिन बढ़ने व गहरे होने वाले प्रभाव से डरे हुए हैं इसलिये अंग्रेजों ने चाहा कि उनके (सोवियत रूस) और उग्र भारतवासियों की शक्ति के बीच मिलाप को रोकने वाली Buffer (बफर) रियासत खड़ी करदी जावे और इस देश

के प्रतिकारी साथियों को अपने मिसर, टर्की, अर्बी प्रदेशों, ईरान, अफगानिस्तान के प्रतिकारी साथियों के साथ मिला दिया जावे, पाकिस्तान इस उद्देश्य की पूर्ति बहुत अच्छे रूप में करेगा।''

भारतीय स्वतन्त्रता एक्ट सन् १९४७

अंग्रेजी सरकार ने अति शीघ्रता के साथ १८ जुलाई १९४७ को 'भारतीय स्वतन्त्रता एक्ट' स्वीकृत कर दिया। इसके अनुसार भारतवर्ष के 'पाकिस्तानी' व 'हिन्दुस्तानी' भागों को दो उपनिवेश (Dominions) बना दिया गया है। बादशाह हमारे वहीं होंगे जो अब भी हैं केवल इतना अन्तर होगा कि सम्राट् (Emperor) न कहलवाकर राजा (King) कहलायेंगे। यह दोनों उपनिवेश बरतानवी कुटुम्ब (Commonwealth) के सदस्य समझे जावेंगे। बरतानवी सेना पर इन उपनिवेशों को कोई अधिकार न होगा। गवर्नर-जनरल बादशाह के प्रतिनिधि होंगे। थोड़ा बहुत देश के अन्दरूनी मामलात में अधिकार प्राप्त हुआ है मगर अनेक संधियां होनी हैं। दोनों उपनिवेशों का आपसी सम्बन्ध क्या होगा यह समय बीतने पर पता लगेगा। इस समय तो यही सामने है कि जिन अंग्रेजों को यह कहा गया था कि भारतवर्ष से चले जाओ कांग्रेस वालों ने उसी जाति के सज्जन को अपना गवर्नर-जनरल मान लिया है। देश का नाम 'इण्डिया' रख दिया है। हिन्दू जनता की आवाज़ को कुचलते हुए गांधी जी ने कह दिया है कि गोवध किसी युक्ति से भी बन्द नहीं की जा सकती। इसलिये इस स्वतन्त्रता का आर्य हिन्दू संस्कृति पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह पाठकगण धीरे-धीरे देख लेंगे।

उपसंहार

अब अधिक लिखना नहीं चाहता। भारतवर्ष के राजनैतिक क्षेत्र में कांग्रेस ने मुस्लिम लीग या मुसलमानों को अपने साथ मिलाने के लिये जिस-जिस मार्ग में दब्बू नीति को प्रयुक्त किया उनमें से कुछ प्रमुख विषयों का वर्णन किया है। जहां तक मुझ से बन पड़ा है मैंने नेताओं के वाक्यों, उद्धरण व सभाओं के प्रस्तावों को किसी भी प्रकार की तोड़ मोड़ के बिना अंकित किया है जहां कहीं थोड़ी-बहुत आलोचना की है वह केवल वाक्यों व प्रस्तावों के अभिप्राय को अधिक स्पष्ट करने के लिए की है। पुस्तक में एकत्रित सामग्री के आधार पर यह समझ लेना कठिन नहीं है कि भारतवर्ष के विभाजन का अधिकांश उत्तरदायित्व कांग्रेस पर है। कांग्रेस ने स्वराज्य की प्राप्ति को हिन्दू-मुस्लिम आधार पर निर्भर किया और तब से ही 'मिलाप' रूपी वस्तु बाजारू चीज बन गई। इस सिद्धान्त का प्रभाव ३ जगह भिन्न-भिन्न रूप में पड़ा। (१) अंग्रेजों ने यह जान लिया कि मुसलमानों को हिन्दुओं से न मिलने दिया जावे। जो कुछ कांग्रेस ने मुसलमानों को देना चाहा वही और कभी-कभी उससे भी अधिक अंग्रेजों ने उनको दिया। साम्प्रदायिक निर्णय, सिन्ध का पृथक् किया जाना और अन्त में पाकिस्तान दे देना अंग्रेजों की नीति का ज्वलन्त उदाहरण है। दूसरी ओर मुसलमानों ने अपने 'मिलन' का मूल्य दिन प्रतिदिन बढ़ाना आरम्भ किया। लखनऊ समझौते से लेकर पाकिस्तान तक की प्राप्ति का इतिहास मुसलमानों के उक्त व्यवहार को भली प्रकार सिद्ध कर रहा है। मुसलमानों के 'मिलाप' की आवश्यता ने हिन्दुओं में एक हारपन और दूसरों पर निर्भर रहने की मनोवृत्ति उत्पन्न करदी। उनमें स्वावलम्बन का भाव नष्ट हो गया। मुसलमानों को प्रसन्न करने के हेतु कांग्रेसी नेताओं ने प्रत्येक हिन्दू आर्य रूप रेखा वाली वस्तु से घृणा की और स्वयं हिन्दूजाति को सम्प्रदाय का रूप दिया। अनुचित सीमा तक अनेक बार हिन्दू भावनाओं को कुचला गया यहां तक कि कांग्रेस वालों को अब इस देश का नाम 'हिन्दुस्थान' भी कहना इसलिये अखरता है कि ऐसा कहने से यह हिन्दुओं का निवास स्थान समझा जावेगा। कितनी अशुद्ध व घातक मनोवृत्ति है यह! हिन्दुओं का कोई स्थान ही नहीं माना जाता। पाकिस्तान देकर भी यदि शेष भारतवर्ष सब का ही है तो हिन्दुओं को अपने भाग्य पर शोक होना चाहिये और यह समझ लेना चाहिये कि

जब तक वह अपने को कांग्रेसी जाल से न निकालेंगे हिन्दुओं का ह्रास ही होता रहेगा। कांग्रेसी नेता अब ऐसी दलदल में फंस चुके हैं कि वह कांग्रेस में रहते हुए हिन्दूपन की सच्ची राष्ट्रीयता का मार्ग ग्रहण ही नहीं कर सकते और चूंकि अब औपनिवेशों के रूप में थोड़े बहुत अधिकारों का उपभोग भी करेंगे इसलिये वह कांग्रेस से पृथक् भी नहीं होंगे। इसलिये हिन्दुओं के सामने केवल यही मार्ग है कि वह अपने आपको हिन्दुओं के नाते संगठित करें और कांग्रेस वालों को राजनैतिक क्षेत्र छोड़ने पर विवश करें। हिन्दुओं को यह जान लेना चाहिये कि उनके सामने बड़ी विकट समस्याएं और भयानक समय खड़े हैं। अपने और पराये 'हिन्दी', 'हिन्दू' और 'हिन्दुस्तान' को मिटाने के लिए उद्यत हो रहे हैं। क्या हिन्दू अपनी संस्कृति, वैदिक धर्म व गऊ को बचाने का परिश्रम न करेंगे। कांग्रेस वाले इतिहास को बदलने का उपाय कर रहे हैं ताकि औरंगजेब के अत्याचारों को इतिहास के पन्नों से निकाल दिया जावे और शिवाजी व राणा प्रताप के हिन्दू सहायक कार्यों को पीछे डाल दिया जावे। इसलिये मैं हिन्दुओं से निवेदन करूंगा कि वह अपने को आर्य समझें और राजनैतिक मंच पर हिन्दू नाम के प्रयोग से प्रेम करें। क्योंकि अब यह समय है कि हम इस देश को अपनी 'पितृ' व 'पुण्य भूमि' समझने वाले मनुष्य को हिन्दू समझें। देश का नाम आर्यावर्त, भारतवर्ष या हिन्दुस्थान पुकारें। हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा बनावें और लिपि देवनागरी हो। अहिंसा धर्म कभी देश को स्वराज्य नहीं दिला सकता। क्षात्र धर्म को ही मानना और प्रयोग में लाना चाहिये। यही देश में स्वराज्य को स्थिर और शान्ति की स्थापना कर सकता है। शास्त्रों में कहा है कि "स्वराज्य और स्वतंत्रता अपने शत्रुओं को पराजित किये बिना प्राप्त नहीं हो सकते। यह न ही भीख मांगने से मिलते हैं और न ही भिखमंगों को दान में दिये जा सकते हैं।"

यदि आर्य हिन्दू पाठकगण इस पुस्तक से कुछ लाभ उठा लेंगे तो मैं अपना सौभाग्य समझूंगा।

अति धीरता के साथ अपने कार्य में तत्पर रहो,
आपत्तियों के वार सारे वीरवर बनकर सहो।
सब विघ्न-भय मिट जायेंगे होगी सफलता अन्त में,
फिर कीर्ति फैलेगी हमारी एक बार दिगन्त में॥

(मैथिलीशरण गुप्त)

सन् १९४१ की जनगणना के अनुसार

ब्रिटिश भारत

हिन्दू			सिख	मुसलमान	अन्य	योग
सवर्ण	अवर्ण	योग				
150890146 =51.00%	39920807 =13.50%	190810953 =64.50%	4165097 =1.41%	793985503 =26.83%	21434169 =20.42%	295808722

रजवाड़ों का भारत

हिन्दू			सिख	मुसलमान	अन्य	योग
सवर्ण	अवर्ण	योग				
55227180 =60.78%	8892379 =9.79%	64119553 =70.57%	1526350 =1.68%	12659593 =13.93%	12552405 =1.09%	90857901

सम्पूर्ण भारतवर्ष

हिन्दू			सिख	मुसलमान	अन्य	योग
सवर्ण	अवर्ण	योग				
206117326	48813180	254930506 =66%	5691447	92058096	33986574	386666623

ब्रिटिश भारत के वर्तमान हिन्दू बहुसंख्यक प्रान्तों में गैर-मुस्लिम व मुसलमान वर्गों की संख्या

नाम प्रान्त	कुल संख्या	गैर मुस्लिम	मुस्लिम	गैर मुस्लिमों में हिन्दुओं की संख्या
मद्रास	49341810	45445358	3896452 (7.9%)	42799000 (86.7%)
बम्बई	20849840	18929472	1920368 (9.21%)	16555000 (79.4%)
संयुक्त प्रान्त	55020617	46604309	8416308 (15.30%)	45812000 (83.2%)
बिहार	36340151	31623837	4716314 (12.98%)	26514000 (72.9%)
उड़ीसा	8728544	8582243	146301 (1.68%)	6834000 (78.2%)
मध्य प्रान्त	16813584	16029887	783697 (4.66%)	12932000 (76.9%)
आसाम	10204733	6762254	3442479 (33.73%)	4213000 (41.29%)
योग	19,72,99,279	173977360	23321919 (11.82%)	155659000 (78.9%)

मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों में गैर मुसलमानों व मुसलमानों की संख्या

नाम प्रान्त	कुल संख्या	गैर मुस्लिम	मुस्लिम	गैर मुस्लिमों में हिन्दुओं की संख्या
बंगाल	60306525	27301091	33005434 (54.73%)	25059024 (41.55%)
पंजाब	28418819	12201577	16217242 (57.06%)	7550372 (26.57%)
सीमा प्रान्त	3038067	249270	2788797 (91.79%)	180321 (5.94%)
सिंध	4535008	1326683	3208325 (70.75%)	1229926 (27.12%)
योग	96298419	41078621	55219798 (57.03%)	34019643 (35.03%)

पंजाब में सिक्ख 3757401 (13.22) हैं।

विभाजित पंजाब व बंगाल ३ जून की आयोजना अनुसार

पंजाब

नाम प्रान्त	मुसलमान	हिन्दू	सिख	अन्य	योग
पश्चिमी पंजाब	12363669	2283309	1683855	450067	16870900
पूर्वी पंजाब	3853573	5267063	2073546	353737	11547919
योग	16217242	7550372	3757401	893804	28418819

बंगाल

नाम प्रान्त	मुसलमान	हिन्दू	सिख	अन्य	योग
पूर्वी बंगाल	27609749	10663416	×	863398	39136563
पश्चिमी बंगाल	5395685	14395608	×	1378669	21169962
योग	33005434	25059024	×	2242067	60306525

प्रथम व द्वितीय संस्करण पर प्राप्त कुछ सम्मतियां

'कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति और हिन्दू'

1. By Lala Ramnarayan B.A. Honorary Arya Pracharak Rohtak Published by Babu Sureshchandra, Rohtash Printing Press, Rohtak (Punjab).

This is a very timely publication, and we hope that all Hindu Sanghatanists will help its oirculation throughout Hindustan. It is in simple Hindi, Marathi, Gujrati and Bengali People can easily understand it. It is written for the general reader. It deals with the different points on which the Congress yielded to the antinational and communal demands of Muslims. Facts, figures and quotations are given everywhere and nothing is left to hearsay.

Lala Ramnarain B.A., is a lifelong selfless, Aryamissionary. He has worked for Shuddhi, Uplift of depressed classes, Widow remarriage and Spread of Sanskrit learning, It should be noted that he is no political agitator. Even men silently engaged in constructive work of Hindu uplift deprecate the present "appeasement" policy of the Congress. The harm done by that policy is mostly irreparable. The edgecated and cosmopolitan Hindu is generally oblivious to this aspect at recent Congress history. The urgency shown by Hindu Sabhaites and Sanghtanists for Hindu rights appears meaningless to many educated Hindus. Book like "Where we diffect?" or "आमचे मतभेद" and the present Hindi book will induce many a scoffer to appreciate the Mahasabha point of view.

Incidentally the book shows that an ardent follower of Swami Dayanand-Saraswati and Satyarth-Prakash

cannot but be a Hindu Sanghatanist and a hater of the appeasement policy. Some Arya Samajists offering apologetic and goody-goody explanations of their Pro-Congress views, appear to us veritable conundrums of mental reservations. An Arya-Samajist Congressite is an enigmatic expression to us like a camel stuck in a needle hole? The Mahratta, Poona. (October 1, 1943)

२. श्री लाला खुशहालचन्द जी आनन्द मालिक 'मिलाप' लाहौर लिखते हैं—

"कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति और हिन्दू" यह एक हिन्दी किताब का नाम है जिसे रोहतक के मशहूर विद्वान् और सोशियल कारकुन लाला रामनारायण जी बी०ए० आनरेरी आर्य मिश्नरी ने लिखी है। जैसा कि नाम से जाहिर है इस किताब में उन तमाम वाक्यात को जमा किया गया है जिससे जाहिर होता है कि कांग्रेस ने मुसलमानों की खशनूदी हासिल करने के लिये मुस्लिम लीग को किस तरह मजबूत बनाया और फिरकापरस्ती के भूत पर हिन्दू-फिसाद की कुर्बानियां चढ़ाई। इसके इलावा किताब में हिन्दुस्तान की दूसरी मुसीबतों का भी जिकर किया गया है। मुसन्निफ ने यह किताब इस गरज से लिखी मालूम होती है ताकि सही मायनों में हिन्दुस्तान में एक कौम बने। और कांग्रेस अपनी पालिसी को बदलकर खालिस कौमी पालिसी बनाये और हिन्दुस्तान को आज़ाद कराये। (मिलाप २६ मार्च १९४५)

३. श्री ज्ञानानन्द जी (पूर्व महता जैमिनी बी०ए० आनरेरी वैदिक मिश्नरी) जनवरी १९४४ को लिखते हैं—

मैंने पुस्तक "कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति तथा हिन्दू" का अवलोकन किया। महाशय रामनारायण ने कांग्रेस का इतिहास शुरू से लेकर वर्तमान समय तक हिन्दू अधिकारों के सम्बन्ध में संक्षिप्त तौर पर वर्णन करके सिद्ध किया है कि मुसलमानों को खुश करने के लिये हिन्दुओं के अधिकारों को पादाक्रान्त किया गया है। इस पुस्तक में रचता ने भले प्रकार से अनुसन्धान करके हिन्दुओं को उत्तेजित तथा उत्साहित करने का यत्न किया है। हिन्दू जनता पर आपने इस पुस्तक को लिखकर बहुत उपकार किया है। कांग्रेस को भी चेतावनी दी है कि वह सही

मायनों (अर्थों) में भारत की रक्षक पोषक तथा नेता बने न कि किसी जाति या सम्प्रदाय का पक्षपात करे। सब हिन्दुओं के लिये यह पुस्तक पढ़ने योग्य है। रचता की शैली निर्पक्षता तथा सत्य को प्रकट करने वाली है। वह देशभक्त और हिन्दू जाति का सच्चा हितैषी है और उसने असलियत को खोलकर इस पुस्तक में वाकयात और सच्ची घटनाओं को पेश किया है। मैं तमाम हिन्दू भाइयों को बलपूर्वक प्रार्थना करता हूं कि इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें ताकि उनको अपनी असली पोजिशन मालूम हो और अपने तई सुधारने और संगठित होने का यत्न करें।

४. देहली के हिन्दी समाचार पत्र 'लोकमान्य' ने १६ दिसम्बर सन् १९४४ को लिखा—

"कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति तथा हिन्दू" इस पुस्तक में हिन्दू संगठन के समर्थक की दृष्टि में कांग्रेस की साम्प्रदायिक एकता सम्बन्धी नीति की जो युक्तियुक्त आलोचना हो सकती है, वह की गई है। श्री रामनारायण जी अपने जीवनकाल में कट्टर संगठनवादी हैं और जीवन भर सार्वजनिक कार्यकर्ता रहे हैं। उनकी सम्मति एक महत्त्व रखती है।

कांग्रेस इस समय कम से कम साम्प्रदायिक नीति में तो प्रत्यक्ष ही असफल रही है न उसकी नीति से मुस्लिम लीग को सन्तोष है न हिन्दू सभावादियों को। असफलता स्वयं उसकी इस नीति की आलोचना है। प्रश्न अब यह है कि हिन्दुओं को सही राजनीतिक मार्ग कौन बताये? निस्सन्देह, हिन्दू महासभा।

प्रत्येक हिन्दू को अपनी राजनीतिक परिस्थिति समझने के लिये श्री रामनारायण जी की इस पुस्तक का अध्ययन करना चाहिये।

५. श्री ठाकुर अमरसिंह जी आर्य पथिक १३-३-१९४४ ई० को लिखते हैं—

"कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति और हिन्दू" नामक पुस्तक देखने का अवसर प्राप्त हुआ। इसमें भिन्न-भिन्न दृष्टियों से भिन्न-भिन्न विषयों पर युक्तियुक्त और सप्रमाण आलोचना करके यह सिद्ध किया गया है कि कांग्रेस ने अनुचित रीत्या हिन्दुओं के उचित आवश्यक और सर्वथा न्यायानुकूल ही नहीं प्रत्युत सारे देश के लिये उनकी अनुचित

मांगों को पूर्ण करते हुए बलिवेदी पर चढ़ाया है। इस पुस्तक की यह विशेषता है कि इसमें कोई भी बात बिना प्रमाण नहीं लिखी गई है और कहीं भी खींच-तान से काम नहीं लिया गया है। सीधे-सीधे ढंग से जो कुछ भाव निकलता है उसे इसमें प्रकट किया गया है।

इस पुस्तक के लेखक श्री लाला रामनारायण जी बी०ए० अवैतनिक आर्योपदेशक हैं। लाला जी दृढ़ आर्य गम्भीर प्रकृति के विचारशील और उत्साही कार्यकर्ता तथा देश की स्वतन्त्रता एवं सर्व प्रकार के संगठन के पक्षपाती हैं। आर्य पुरुष स्वाभाविक रूपेण स्वतंत्रता प्रेमी होता ही है फिर कांग्रेस के साथ उनका कुछ भी द्वेष नहीं। ऐसे निश्चय और विचारशील व्यक्ति की सम्मति विशेष ध्यान देने योग्य है।

प्रत्येक विचारशील न्यायप्रेमी और देशहितैषी व्यक्ति और विशेषकर हिन्दू हितों के रक्षकों को तो यह पुस्तक अवश्य ही पढ़नी चाहिए। मैं आशा करता हूं कि हिन्दू सभा के कार्यकर्ता, आर्यसमाजी, सनातनी, बौद्ध, जैन और सिक्ख उसको पढ़कर लाभ उठायेंगे।

६. अरुणोदय (इटावा) १९ अप्रैल सन् १९४४

"कांग्रेस की मुस्लिम पोषक नीति तथा हिन्दू" प्रस्तुत पुस्तक लेखक के अत्यन्त परिश्रम का जीवित प्रतिबिम्ब हैं। लेखक ने कांग्रेस की मुसलमानों को सन्तुष्ट करने वाली नीति पर प्रकाश डाला है और उसे उदाहरण देकर पुष्ट किया है। कांग्रेस हिन्दू बलिदानों की नींव पर आरम्भ से खड़ी हुई है और हिन्दुओं ने अपने खून और हड्डियों से कांग्रेस के मार्ग को प्रशस्त एवं दृढ किया लेकिन किस प्रकार कांग्रेस स्वराज्य के मार्ग से विचलित होकर मुसलमानों की अराष्ट्रीय अप्रजातन्त्रीय एवं विनाशकारी मांगों को पूरा करने के मार्ग पर चल पड़ी और वह भी उन हिन्दुओं के सिर पर पैर रखकर जिन्होंने कांग्रेस के लिये हंसते-हंसते छातियों पर गोलियां खाई थीं। आरम्भ से आज तक प्रत्येक प्रश्न पर कांग्रेस मुसलमानों से दबती रही। मोपला विद्रोह में जहां हजारों की संख्या में मुसलमानों ने हिन्दुओं को मारा था, कोहाट में हिन्दू हत्याकाण्ड आदि प्रश्नों पर कांग्रेस ने मुसलमानों की अप्रसन्नता के डर से हिन्दुओं के साथ सहानुभूति तक दिखलाने में आनाकानी की थी। किस प्रकार कांग्रेस अपने राजनैतिक पथ से हटकर मस्जिद के आगे बाजे बजने तथा

गौकशी की स्वतन्त्रता देने में हिन्दू अधिकारों के साथ खेल करने लगी और किस तरह गांधी के उपवास इत्तहाद कांफ्रेंस तथा नेहरू रिपोर्ट में मुसलमानों को उनके अधिकारों से अधिक अधिकार दिये गये। कम्यूनल अवार्ड और गांधी का कोरा चेक, सिन्ध पृथक् किया जाना, कांग्रेस झण्डा, वन्दे मातरम् काट-छांट, हिन्दी की छीछालेथन, वर्धा योजना में हिन्दू बालकों पर मुस्लिम सभ्यता लादनां तथा आत्म निर्णय के नाम पर पाकिस्तान मान लेना आदि बातों को अच्छी तरह समझाया गया है। हिन्दू सभाइयों को तो यह पुस्तक घर-घर जाकर बेचना चाहिये।

७. पूना के अंग्रेजी समाचार पत्र मरहटा ने दूसरे संस्करण पर २७ जुलाई सन् १९४५ को लिखा—

It depicts the antinational surrenders to communal fanatics effected so far by the congress. Facts and figures have been quoted lavishly to substantiate the arguments. The author is not a political partisan but a silent Arya missionory. His assertive regard for the Congress, however has not blinded him to the irreparable harm, generally put into oblivion by the do-nothing cosmopolitans. Incidentally the fluent stylish Hindi examplifies what Sanghatanists term as our national language, easily understood by any Maratha, Gujrati, Bengali or Sindhi. That the Congress having grown up on the blood and toil of the Hindus, should indulge in bartering away the Hindu rights must be a matter of regret for every Hindu.

८. देवता स्वरूप भाई परमानन्द जी सितम्बर १९४५ में लिखते हैं—

"मास्टर रामनारायण पुराने आर्यसमाजी हैं। हिन्दू जाति के लिये उनमें दर्द है। उन्होंने कांग्रेस की नीति के सम्बन्ध में अपने विचार इस पुस्तक में प्रकट किये हैं। लेखक ने जो बातें लिखी हैं उनके लिये हवाले भी प्रस्तुत किये हैं। दलीलें बहुत जबरदस्त हैं। पाठक के मन में कोई सन्देह नहीं रहता कि कांग्रेस की नीति से हिन्दुओं को बेहद नुकसान पहुंचा है। हिन्दी में यह अद्वितीय पुस्तक है। हिन्दी जानने वालों को इसके अध्ययन से बहुत लाभ होगा।"

सत्यधर्म प्रकाशन

द्वारा प्रकाशित नयी पुस्तकें

१.	सत्यार्थप्रकाश	महर्षि दयानन्द सरस्वती	६०/-
२.	संस्कारविधि	महर्षि दयानन्द सरस्वती	५०/-
३.	भारतीय देशभक्तों की कारावास और बलिदान की कहानी	आचार्य सत्यानन्द	४००/-
४.	भजन संगीत सागर (भाग-२)	आचार्य सत्यानन्द	१००/-
५.	यज्ञ-चिकित्सा	डॉ० फुन्दनलाल अग्निहोत्री	१००/-
६.	सांख्यदर्शन	स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक	२२५/-
७.	वेदान्तदर्शन	स्वामी ब्रह्ममुनिजी परिव्राजक	२५०/-
८.	मीमांसादर्शन	गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८५/-
९.	न्याय दर्शन	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	१००/-
१०.	वैशेषिक दर्शन	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	१००/-
११.	उपनिषद् भाष्य (भाग-१) (ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डूक्य, प्रश्नो०)	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती	२००/-
१२.	उपनिषद् (भाग-२) (ऐतरेय, तैत्तिरीय, श्वेताश्वतर)	दामोदर सातवलेकर, पं० भीमसेन	१००/-
१३.	वैराग्य शतक	बाबू हरिदास वैद्य	१००/-
१४.	मनु स्मृति	डॉ० सुरेन्द्रकुमार	१२५/-
१५.	महर्षि मनु बनाम डॉ० अम्बेडकर	डॉ० सुरेन्द्रकुमार	११०/-
१६.	दयानन्द लघुग्रन्थ संग्रह	महर्षि दयानन्द सरस्वती	२५/-
१७.	दयानन्द दर्शन	डॉ० वेदप्रकाश गुप्त	२७५/-
१८.	नेताजी और आजाद हिन्द फौज	मे०जनरल शाहनवाज खां	२००/-
१९.	आग और पानी	रघुवीर शरण मित्र	१८०/-
२०.	मूर्तिपूजा-खण्डन	पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय	२५/-
२१.	आर्यपथिक लेखराम	महात्मा मुंशीराम जिज्ञासु	४५/-
२२.	जिन्होनें ऋषि दयानन्द को देखा	डॉ० भवानीलाल भारतीय	४०/-
२३.	महर्षि दयानन्द और महात्मा गांधी	पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति	४०/-
२४.	सन्ध्या और ब्रह्म-साक्षात्कार	पं० जगन्नाथ पथिक	२००/-
२५.	वैदिक इतिहासार्थ निर्णय	शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ	प्रेस में

श्रीमहालक्ष्मी; ०११-६५८४५५११, ९३१३७८४२७२